॥ श्रीः ॥

चौखम्भा प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१३

आचार्यभास्कर

(भास्कराचार्य एक अध्ययन)

सम्पादक

आचार्य रामजन्म मिश्र

ज्योतिषशास्त्राचार्य (गणित-फलित), एम. ए. (हिन्दी),

प्रवक्ता, ज्योतिष विभाग, प्राच्य विद्या धर्म विज्ञान संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

...म्भा ओरियन्टालिया

... दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं विक्रेता

दिल्ली

समर्पण

जिनके जीवन का प्रतिक्षण सादगी, सदाचार, सत्य और
धर्म तथा विद्याचिन्तन में व्यतीत हुआ, जिन्हें महामना
श्री पं० मदन मोहन मालवीय जी 'अजातशत्रु' के नाम
से पुकारते थे, जिनके सानिध्य में रहकर विद्या
विनय और विवेक प्राप्त किया उन ज्ञान-
तपस्वी, ज्योतिषमहारथी, आचार्यप्रवर
गुरुदेव
स्वर्गीय श्री पण्डित
विन्ध्येश्वरी प्रसाद पाण्डेय
जी के चरणकमलों में प्रथम पुष्पाञ्जलि
सादर समर्पित है।

श्रद्धावनत—

रामजन्म मिश्र

कृतज्ञता

'बिन गुरु मिले न ज्ञान, ज्ञान बिन हटे न दुर्जन (अज्ञान)' गुरु की महिमा अपार है। गुरुगरिमा की गीत अनेकविध शास्त्रों ने गाया है और इसमें सन्देह नहीं कि जैसे गुरु की गाथा अब तक गाई गई है उसकी शृङ्खला सतत अटूट रहेगी, किन्तु मेरे सन्मुख जो एक नया भाव उत्पन्न हुआ है उसका बोध करा देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। सम्भवतः यह भी एक शोध की मनोवृत्ति हो।

हिन्दी के भक्त कवियों में कबीरदास जी ने गुरु की महिमा के विषय में अपनी भावना को—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो जनाय॥

इस रूप में व्यक्त करते हुए शास्त्र-परम्परा का परिपोषण किया है किन्तु सम्भवतः आज के इस युग में क्या स्थिति उत्पन्न होगी इसका अनुमान नहीं किया था अतः मैंने अपने अनुभवों के द्वारा प्राप्त अपनी भावना को अपने वाक्यों में कबीरदास की शैली में ही उपस्थित कर रहा हूँ :—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े मैं पुनि मध्य गवाँर।
बाहिर ला चेतन किया गुरु सम परम उदार॥

गुरु के द्वारा प्रदत्त विद्या में वासना कराने वाले की भूमिका अत्यावश्यक है और उसका स्थान गुरु के ही समान है। यह मेरा अपना अनुभव है। अतएव इसके अनुसार—

जिन्होंने निरन्तर अध्ययन एवं लेखन की प्रेरणा प्रदानकर मुझे इस पथ का पाथेय प्रदान किया, गुरुजनों के द्वारा प्राप्त विद्या की वासना में अभिरुचि कराई, तथा इस पुस्तक की भूमिका स्वयं लिखकर मार्ग प्रशस्त किया, इस विद्यावारिधि, अखण्ड विद्याव्यसनानुरक्त, सतत नूतन चिन्तन परायण, परमादरणीयाग्रज आचार्यप्रवर पं० श्रीचन्द्र पाण्डेय जी का मैं परम कृतज्ञ हूँ।

विनयावनत—

रामजन्म मिश्र

प्राक्कथन

ज्योतिष शास्त्र का सम्बन्ध समाज के प्रायः सभी वर्गों से है। इसका कारण यह है कि अपने भविष्य को जानने की उत्कण्ठा मानव मात्र में समान भाव से है। आज के इस वैज्ञानिक जगत में भी इसके प्रति आस्था का होना स्वयं इसकी वैज्ञानिकता को सिद्ध कर देता है। ज्योतिष का विषय कठिन से कठिन है और सरल से सरल भी है जैसे भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम राम 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' हैं उसी प्रकार भगवान् के स्वरभूत वेदों का अंग यह ज्योतिषशास्त्र भी है। "वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम्" इत्यादि पुराणों का कथनोपकथन इसे पुष्ट कर चुका है।

आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह प्रत्यक्ष शास्त्र है जो आपके सामने है।

इसमें कोइ सन्देह नहीं कि ज्योतिषशास्त्र का फलितांश नवनीत के सदृश जनमानस के आकर्षण का केन्द्र विन्दु है। किन्तु वह नवनीत किस पयस्विनी के पय से प्रादुर्भूत हुआ इस दिशा में भी दृष्टि आवश्यक है, लेकिन ऐसा नहीं हो पाता। फलित की भविष्यवाणियों पर मुग्ध होनेवाले, उसके मूल पर कदाचित ध्यान इसलिए नहीं देते कि 'आम खाने हैं या पेड़ गिनने'। यह नीति भी ठीक है किन्तु यह स्वार्थ भावना का विजृम्भित रूप है। सिद्धान्त के ज्ञान के विना मात्र फलादेश करनेवाले ज्योतिषी को नक्षत्र सूची कहा गया है और लिखा है कि—

दर्शाद्दिनकृतपापं हन्ति सिद्धान्तवेत्ता त्रिदिनजनितदोषं तन्त्रविज्ञः स एव।
करणभगणवेत्ता हन्त्यहोरात्रदोषं जनयति बहुपापं तत्र नक्षत्रसूची॥

तथा इस नक्षत्रसूची के सम्बन्ध में आचार्य वाराह मिहिर ने अपनी संहिता में—

अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते। स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः॥

लिखा है। स्वयं सिद्धान्त की प्रशंसा में भास्कराचार्य ने लिखा है कि—

जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि............इति।

सपूर्ण जातक तथा संहिता को जानते हुए भी जो अनन्त युक्तियों से युक्त सिद्धान्तगणित को नहीं जानता वह चित्र के राजा अथवा लकड़ी से निर्मित सिंह की भाँति मात्र दर्शनीय है।

ज्योतिषशास्त्र का मूल सिद्धान्तज्योतिष ही है और भास्कराचार्य इस सिद्धान्तज्योतिष के मेरुदण्ड हैं। वैसे उनकी मात्र १—सिद्धान्तशिरोमणि २—करण कुतूहल ३-सर्वतोभद्रयन्त्रम् ४—वशिष्ठतुल्यम् ये चार ही कृतियाँ हैं, जिनमें सिद्धान्तशिरोमणि का चार रूप १—लीलावती, २—भास्करीय बीजगणित, ३—सिद्धान्तशिरोमणि गणिताध्याय और ४—सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय के नाम से बहुर्चचित है। ऐसे महान् गणितज्ञ विद्वान् की कृतियों पर समालोचनात्मक अध्ययन उपस्थित करना और आज के इस महर्घयुग में उसका प्रकाशन कराना अतिकष्ट साध्य होने पर भी गुरुजनों के आशिर्वाद ने मुझे इस दिशा में गतिमान किया।

भास्कराचार्य की ग्रन्थावली का प्रकाशन अपने मन में बहुत दिनों से चल रहा था, जिसका यह पूर्वार्द्ध के रूप में सम्प्रति लीलावती और बीजगणित के साथ प्रथम भाग आपके सामने उपस्थित किया जा रहा है। शीघ्र ही भास्कराचार्य की ग्रन्थावली पूर्ण रूप में आपको प्राप्त होगी। अनेकानेक विघ्नों के कारण यह रूप जो आपके सामने है इसमें त्रुटियों का होना सम्भव है किन्तु हम विश्वास दिलाते हैं कि इसका उत्तमोत्तम रूप आपकी सेवा में उपस्थित किया जायगा, साथ ही अपने गुरुजनों विद्याव्यसनियों एवं ज्योतिषियों से इस विषय में सहयोग की अपेक्षा है।

बसन्त पंचमी, सं० २०३५ (१–२–७६) **रामजन्म मिश्र**

ग्रन्थकर्तुः परिचयः

विश्ववन्द्यान् महाप्राज्ञान् ज्योतिर्विद्याविशारदान् ।
आचार्यान् भास्कराद्याँस्तान् भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ १ ॥
विद्यावतां बलवतां पुरुषार्थभृतां सताम् ।
आगारमुत्तरप्रान्ते भाति बलियामण्डलम् ॥ २ ॥
सिकर्यार्कपुरोत्तंसो वंशो गौतमगोत्रभृत् ।
'बिगही' नामके ग्रामे गुणग्रामेऽत्र राजते ॥ ३ ॥
ग्रामेऽस्मिन् विश्रुतो विद्वान् नानाशास्त्रविचक्षणः ।
श्रीमान् गोकुलमिश्रोऽभूत् सर्वपूज्यो द्विजाग्रणीः ॥ ४ ॥
तस्याभवत् सुतो विज्ञः शिवगोविन्दसंज्ञकः ।
शिव-गोविन्दयोर्यस्मिन् सम्यगभ्युदिता गुणाः ॥ ५ ॥
स चोग्रतपसा प्रापत् पुत्रानभ्यर्चितान् जनैः ।
नन्दनश्रीकरान् पञ्च देवद्रुमवरानिव ॥ ६ ॥
क्रमेण श्रीदीनबन्धुं श्रीदेवशरणं ततः ।
प्राज्ञं श्रीगिरिजादत्तं मध्यं मणिमिव स्रजः ॥ ७ ॥
श्रीमत्कुबेरदत्ताख्यं चतुर्थं सम्मतं सताम् ।
पञ्चमं रुद्रदत्तेन नाम्ना ख्यातं महात्मसु ॥ ८ ॥
तत्र श्रीगिरिजादत्तमिश्रस्य पितुरन्तिकात् ।
मातरि श्रीनगेश्वर्यां रामजन्माभवत् सुतः ॥ ९ ॥
पूज्यश्रीमालवीयस्य विश्वविद्यालयेऽतुले ।
प्राज्ञपूजितपादेभ्य आचार्येभ्योऽधिकाशिकम् ॥ १० ॥
विन्ध्येश्वरीप्रसादेभ्यो रामव्यासेभ्य एव च ।
केदारदत्तजोशीभ्यो गुरुभ्योऽधिगतागमः ॥ ११ ॥
प्राध्यापकपदं प्राप्य प्राच्यविद्यालये स्थितः ।
छात्रानध्यापयन् प्रेम्णा तोषयँश्च सुधीश्वरान् ॥ १२ ॥
समालोचनमारच्य विदुषां भुरि प्रस्तुवन् ।
श्रीरामजन्ममिश्रोऽयं तुष्टिमात्मनि विन्दति ॥ १३ ॥
उपाध्यायकुले जातान् अग्रजान् राजमोहनान् ।
कीर्तिप्रीतियुतान् धन्यान् ध्यायामि प्रमुखान् विदाम् ॥ १४ ॥
स्नेहामृतं विना येषां ग्रन्थलेखनवर्त्मनि ।
मरुप्राये गतिर्नस्यात्तान्नुमः प्रेरकान् बुधान् ॥ १५ ॥
प्रीयन्ते यदि सुप्रीता गुणदोषविदो विदः ।
तदेव श्रमसाफल्यं गणयिष्याम्यहं हृदा ॥ १६ ॥

विदुषामाश्रयो

रामजन्ममिश्रः

श्रीः

भूमिका

भारतीय सिद्धान्तज्योतिष में जिन व्यक्तियों ने अपने नवीन आविष्कारों के द्वारा सिद्धान्त-ज्योतिष के इतिहास में अपना नाम उज्वल किया है, उनमें भास्कराचार्य का नाम प्रमुख है। भारतीय सिद्धान्तज्योतिष में भास्कराचार्य ने पाठ्यग्रन्थ के रूप में ऐसे ग्रन्थों को उपस्थित किया जिनका स्थान ज्योतिष के अध्ययनाध्यापन क्रम में आज भी महत्त्वपूर्ण बना हुआ है। प्राचीन गणितज्ञों की उपलब्धियों को भास्कराचार्य ने न केवल पल्लवित किया है अपि च अपने नवीन उपलब्धियों के द्वारा उसे पुष्पित और फलित भी किया है।

सिद्धान्तज्योतिष गणितोपजीवी (Ap, lied Mathematics) विषय है। किन्तु प्राचीन समय में गणित के ही एक अंग के रूप में इसको भी माना गया था। इसलिए भास्कराचार्य ने सिद्धान्तज्योतिष का लक्षण करते हुए यह दिखलाया है, कि सिद्धान्तज्योतिष में अंकगणित, बीजगणित तथा यन्त्र भी अवयव के रूप में गृहीत होना चाहिए, जिसका लक्षण इस प्रकार है :—

त्रुट्यादि प्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥

यहाँ तक की सिद्धान्तज्योतिष के अध्ययन का अधिकारी बनने के लिए भी वे द्विविध गणित को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं, तथा उतना ही आवश्यक शब्दशास्त्र को भी मानते हैं :—

द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तं तदवगमनिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः।
यदि भवति तदेदं ज्योतिषं भूरिभेदं प्रपठितुमधिकारी सोऽन्यथा नामधारी॥

जीवन और कृतियाँ—भारतीय ग्रन्थकारों की यह विशेषता रही है कि वे अपने काम और यश के प्रति उदासीन रहते हैं और इसी प्रसंग में वे अपने जन्मस्थान और जन्मसमय को भी उपेक्षित दृष्टि से देखते रहे हैं, किन्तु ज्योतिषी इस बात के अपवाद रहे हैं। भास्कराचार्य ने अपना जन्मस्थान जन्म-समय तथा ग्रन्थनिर्माणकाल और अपने वंश का स्वल्प परिचय उपस्थित किया है तथा सौभाग्य से उनके वंशजों ने उनकी कृतियों के प्रचार के लिए अथक परिश्रम किया था और वे कृतियाँ अपने गुणों के कारण उज्ज्वल तारे की भाँति ज्योतिषाकाश में देदीप्यमान हैं। भास्कराचार्य ने अपने जन्म के विषय में लिखा है कि—'रसगुणपूर्णमहीशं शकनृपसमये भवन्ममोत्पत्तिः। रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः' अर्थात् शक १०३६ में मेरा जन्म हुआ और ३६ वर्ष की अवस्था में मैंने 'सिद्धान्तशिरोमणि' की रचना की, अर्थात् इनका जन्मकाल ई० १११४ और ग्रन्थरचनाकाल सन् ११५० होता है। अपने वंश का परिचय देते हुए भास्कराचार्य लिखते हैं :—

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने
नाना सज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः।

श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः
साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः ॥
तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलं प्राप्तः प्रसादः सुधी-
मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदं प्रस्फुटम् ।
एतद्व्यक्तसदुक्तियुक्तिबहुलं हेलावगम्यं विदां
सिद्धान्तग्रथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः ॥

भास्कराचार्य के ग्रन्थों के प्रचार के लिए उनके वंशजों ने क्या प्रयत्न किया था तथा उसके पूर्वजों का इतिवृत्त क्या है, इसके लिए श्री भाउदाजी नामक वैद्यराज के द्वारा प्राप्त ताम्रपत्र के श्लोक इसप्रकार हैं:—

शाण्डिल्यवंशे कविचक्रवर्ती त्रिविक्रमोऽभूत् तनयोऽस्य जातः ।
यो भोजराजेन कृताभिधानो विद्यापतिर्भास्करभट्टनामा ॥
तस्माद्गोविन्दसर्वज्ञो जातो गोविन्दसंनिभः ।
प्रभाकरः सुतस्तस्मात् प्रभाकर इवापरः ॥
तस्मान्मनोरथो जातः सतां पूर्णमनोरथः ।
श्रीमान् महेश्वराचार्यस्ततोऽजनि कवीश्वर. ॥
तत्सूनुः कविवृन्दवन्दितपदः सद्वेदविद्यालता-
कन्दः कंसरिपुप्रसादितपदः सर्वज्ञविद्यासदः ।
यच्छिष्यैः सहकोऽपिनो विवदितुं दक्षो विवादी क्वचि-
च्छ्रीमान् भास्करकोविदः समभवत् सत्कीर्तिपुण्यान्वितः ।
लक्ष्मीधराख्योऽखिलसूरिमुख्यो वेदार्थवित् तार्किकचक्रवर्ती ।
क्रतुक्रियाकाण्डविचारसारो विशारदो भास्करनन्दनोऽभूत् ॥
सर्वशास्त्रार्थदक्षोऽयमिति मत्वा पुरादतः ।
जैत्रपालेन यो नीतः कृतश्च विबुधाग्रणीः ॥
तस्मात् सुतः सिंघणचक्रवर्ती दैवज्ञवर्योऽजनि चङ्गदेवः ।
श्रीभास्कराचार्यनिबद्धशास्त्रविस्तारहेतोः कुरुते मठं यः॥
भास्कररचितग्रन्थाः सिद्धान्तशिरोमणिप्रमुखाः ।
तद्वंश्यकृताश्चान्ये व्याख्येया मन्मठे नियतम् ॥

भास्कराचार्य से पहले ब्रह्म, श्रीपति, पद्मनाभ, श्रीधराचार्य, महावीर आदि गणितज्ञों की कृतियाँ उपलब्ध थीं। इनमें श्रीधराचार्य की त्रिशतिका और पाटीगणित, महावीराचार्य का गणितसारसंग्रह ये अङ्कगणित के उत्कृष्ट प्रश्नों से संवलित ग्रन्थ थे। इन ग्रन्थों में संख्याओं का दशगुणोत्तर प्रणाली से स्थान-मान-सिद्धान्त, अंकों के संकलन-व्यवकलन, वर्ग-वर्गमूल, घन-घनमूल, भिन्नों के जोड़-घटाना, गुणा-भाग, की प्रक्रिया दी गई थी, किन्तु शून्य के इन आठों परिकर्मों में शून्य के भागफल के लिए महावीराचार्य और श्रीधराचार्य ने शून्य से भक्तराशि को शून्य के तुल्य माना है। केवल भास्कराचार्य ने ही शून्य से भक्तराशि को खहर लिखा है और इसे अनन्त के तुल्य माना है। उनका कहना है कि इस खहर राशि में किसी राशि के जोड़ने और घटाने से कोई विकार नहीं होता जैसे सृष्टि के विलयकाल में अनन्तब्रह्म में भूतगणों के प्रविष्ट होने पर तथा उत्पत्तिकाल में उनके निकल जाने पर भी कोई विकार नहीं होता। इसके लिए उपनिषद् का निम्नाङ्कित वाक्य उपयुक्त सिद्ध हुआ है :—

पूर्णमिदं पूर्णमदः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

अर्थात् यह चेतन सत्ता और जड़ सत्ता पूर्ण है। इस एक पूर्णसत्ता से द्वितीय पूर्णसत्ता के निकल जाने पर भी शेष पूर्ण ही होता है। भास्कराचार्य के निम्नाङ्कित श्लोक की इससे तुलना कीजिये :—

अस्मिन्विकारः खहरेनराशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु ।
बहुष्वपिस्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ।।

इसका उदाहरण इस प्रकार है—

$$\frac{क}{०} + ख = \frac{क + ख \times ०}{०} = \frac{क}{०} = \infty \text{ । } ख \times ० = ०$$

इस प्रकार भास्कराचार्य ने शून्य को अस्तित्व और अनस्तित्व का मध्यवर्ती माना है जो बौद्धों के शून्यवाद के शून्य का समकक्ष है। उसको न तो सत् कह सकते हैं न असत्।

आधुनिक गणित में Limit की परिभाषा भी इसी रूप में की गई है। जैसे—

$$१ + \frac{१}{२} + \frac{१}{२^२} + \frac{१}{२^३} + \frac{१}{२^४} \cdots\cdots \frac{१}{२^\infty} \angle २$$

यह सदा दो से कम रहेगा, किन्तु अनन्तवें पद के जोड़ने के बाद इस अन्तर का अस्तित्व शून्य कल्प होगा।

भास्कराचार्य का सूत्र है :—

योगे खं क्षेपसमं, वर्गादौ खं खभाजितो राशिः ।
खहरः स्यात्, खगुणः खं, खगुणश्चिन्त्यश्च शेषविधौ ।।
शून्ये गुणके जाते खं हारश्चेत् पुनस्तदा राशिः ।
अविकृत एव ज्ञेयस्तथैव खेनोनितश्च च्युतः ।।

यहाँ पर 'खगुणः चिन्त्यः च शेषविधौ' इस उक्ति में शून्य को अत्यन्त छोटी संख्या के रूप में माना गया है। इसीलिए अगले उदाहरण में इस सूत्र का उपयोग दिखलाया गया है। उसमें लुप्तभिन्न (Evolutes) का मान लाने की प्रक्रिया प्रदर्शित की गई है। जैसे—

"कः खगुणो निजार्धयुक्तस्त्रिभिश्च गुणितः खहृतस्त्रिषष्टिः"

अर्थात् किस राशि को शून्य से गुणाकर फल में उसके आधे को जोड़कर उसमें तीन से गुणा कर फिर शून्य से भाग देने पर ६३ होता है। यहाँ राशि = क मानकर आलापानुसार क्रिया करने से $\left(य \times ० + \frac{य \times ०}{२}\right) \frac{३}{०} = ६३$ यह होता है। $\therefore \frac{३य \times ० \times ३}{२ \times ०} = ६३$ । भाज्य और हर में से शून्य हटाने पर राशि का मान १४ आता है। अन्यथा यदि शून्य का अर्थ वास्तविक शून्य होता तो $\frac{३य \times ०}{२} = ०$ $\frac{० \times ०}{०} = ०$ यही भिन्न का मान होता, किन्तु यहाँ शून्य का अर्थ सीमामान से है। इसको एक अन्य उदाहरण द्वारा दिखाते हैं—

$\frac{य^2 - क^2}{य - क}$ इसमें यदि य = क मानें तो,

$\frac{य^2 - क^2}{य - क} = \frac{0}{0}$ होगा, किन्तु इसको खण्ड करने पर

$$\frac{य^2 + क^2}{य - क} = \frac{(य + क)(य - क)}{य - क} = य + क$$

तब यदि य = क तो भिन्न का मान २ क हुआ। इसको गणित की भाषा में कहेंगे कि जब य→क तो (य–क)→० अर्थात् जब य = क के तुल्य होने जा रहा हो तो य–क यह शून्य होने जा रहा है।

$\frac{ता(य^2 - क^2)}{ता(य - क)} = \frac{२ य}{१}$ यह लुप्त भिन्न का मान लाने की विधि अंश हर का तात्कालिक सम्बन्ध (Do) ग्रहण करने पर हुआ तब य = क तो २ य = २ क यह लुप्तभिन्न का मान हुआ। इस प्रकार इस उदाहरण से भास्कराचार्य ने लुप्तभिन्न का मान लाकर गणित शास्त्र में सीमामान (Limit) के प्रथम अनुसन्धाता होने का श्रेय प्राप्त किया है। इस प्रकार के उदाहरण भास्करीय बीजगणित में भी हैं।

इसीप्रकार आधुनिक चलनकलन (Differcntial Colfficient) सम्बन्धी ज्याओं का तात्कालिक सम्बन्ध कोटिज्या के तुल्य लाकर ग्रहों का वास्तविक गतिफल दिखलाया है, जो आधुनिक चलन कलन से भी उसी परिणाम के तुल्य होता है। जैसे––

कोटि फलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिस्त्रिज्योद्धृता कर्किमृगादिकेन्द्रे।
तथा युतोना ग्रहमध्यभुक्तिस्तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात्॥

अन्य प्राचीन आचार्यों की अपेक्षा भास्कराचार्य ने अनेक नवीन विषयों का समावेश किया है। त्रिभुज के क्षेत्रफल के लिए लम्ब का आनयन इनका अपना प्रकार है। समकोणत्रिभुज में भुजकोटि का वर्ग कर्णवर्ग के तुल्य होता है, इसकी उपपत्ति पैथागोरस के विधि से भिन्न विधि के द्वारा की गई है जिसे ग्रन्थ के विवेचन में ग्रन्थकार ने उपस्थापित किया है। अङ्कगणित में वर्गसमीकरण के तोड़ने की रीति भास्कराचार्य की अपनी उपलब्धि है। प्राचीन किसी भी आचार्य ने इस विधि का उल्लेख नहीं किया है। सूचीक्षेत्र की त्रैराशिक के द्वारा विश्लेषण इनका स्वयं का विधान है।

छाया क्षेत्र के प्रकरण में द्वादशाङ्गुलशङ्कु की दो छायों के नाप से दीप की ऊँचाई और शङ्क्वग्र से दीप मूल की दूरी के ज्ञान के प्रकार द्वारा सायन मेषादि के मध्याह्न के समय एक ही याम्योत्तरवृत्त में लगभग दो अंशों तक की दूरीतक के अंक्षांशों की पलभा (द्वादशाङ्गुलशङ्कु की दो छायों को) जानकर सूर्य की दूरी लाने के लिए एक प्रशस्त गणितीय विधि का आविष्कार किया, ऐसा मानना चाहिए।

द्वादशाङ्गुलशङ्कु के दो छायों का अन्तर तथा उन छायाकर्णों का अन्तर जानकर छायों का मान लाना बीजगणितीय विधि का उत्कृष्ट उदाहरण है। सूची क्षेत्र के घनफल के लिए इन्होंने जिस प्रकार का उद्भावन किया है, वह आधुनिक गणित की उपपत्तियों के द्वारा उपलब्ध है। "समखातफलत्र्यंशः सूची-खाते फलं भवति" इस सूत्र की उपपत्ति पाठक ग्रन्थ से देख लें।

अङ्कपाश नाम का एकनवीन प्रकरण भास्कराचार्य ने अपनी प्रतिभा के बल पर निकाला है। आधुनिक गणित में इसका विकसित रूप में देखने में आता है। नारायण पण्डित ने अपनी 'गणितकौमुदी' में इन्हीं अङ्कपास के सूत्रों के सहारे अनेक चमत्कारिक वर्गकोष्ठों की रचना की है। पन्द्रहा यन्त्र अति प्रसिद्ध है, इसी पन्द्रहा यन्त्र के समान २५ कोष्ठों और ४९ कोष्ठों आदि के अङ्कों की स्थापना की प्रक्रिया उस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। लखनऊ विश्वविद्यालय ने अपनी 'मैथमेटिकलइक्जिबीशन, में इन सभी कोष्ठकों को छपवाया है। पाठकगण इस सम्बन्ध की जानकारी विशेषरूप से उस पुस्तक के द्वारा कर सकते हैं। एकवात और छूट गई है वह यह कि भास्कराचार्य ने श्रेढ़ी व्यवहार में जिन प्रकारों को प्रस्तुत किया है यद्यपि ये प्रकार प्राचीन पुस्तकों में भी विद्यमान हैं किन्तु भास्कराचार्य के ग्रन्थ में ये सम्वर्द्धित और संशोधित हुए हैं। भिन्न के गुणोत्तर श्रेढ़ी का उद्भावन श्रीधराचार्य ने किया था। उनकी त्रिशतिका में इसका उदाहरण भी दिया गया है, किन्तु भास्कराचार्य ने उसे छोड़ दिया है और पिङ्गलसूत्र के छन्दोविचिति का सोपपत्तिक प्रस्तुतीकरण किया है वर्ग प्रकृति के उदाहरणों में।

राश्योर्ययोः कृतिवियोगयुतो निरेके मूलप्रदे प्रवद तौ मम मित्र ! यत्र।
क्लिश्यन्ति बीजगणिते पटवोऽपि मूढाः षोढोक्तगूढगणितं परिभावयन्तः॥

इस उदाहरण के समाधान में प्रशस्तगणितज्ञताका परिचय दिया गया है। यद्यपि वर्गप्रकृति का गणित आचार्य ब्रह्मगुप्त का आविष्कार है, परन्तु भास्कराचार्य ने इसे विशेष उत्कृष्ट उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया है। आधुनिक गणित में कुट्टक और वर्गप्रकृति इन दोनों गणितों को अनिर्धारित समीकरण (Ivdeterminate Eguation) कहते है। इसमें कुट्टक का स्वरूप = कय + च = ग × र और वर्ग प्रकृति का स्वरूप क × य^2 + ग=र^2 यह है। ऐसे प्रश्नों में अव्यक्त के मान अनेक आते हैं किन्तु इनमें अनेक चमत्कारिक प्रश्न हल किए जाते हैं। इसके लिए भास्करीय बीजगणित का अवलोकन करना चाहिए। भास्कराचार्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके ग्रन्थ आज भी गणित के पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं।

ग्रन्थावली के रूप में पण्डित रामजन्म मिश्र द्वारा समालोचनात्मक ग्रन्थ 'आचार्यभास्कर' का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। ज्योतिष जगत में विद्वत्तापूर्ण एक नई शृङ्खला का श्री गणेश कर इन्होंने ज्योतिषियों की अगुआई की है। इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को समाज के सामने नवीन रूप में लाना परमावश्यक था, जिसकी पूर्ति इन्होंने की है। आशा है ज्योतिष विज्ञान में अनुराग रखने वाले विद्वान् इससे लाभान्वित होंगे और अन्य ज्योतिर्विद इनका अनुसरण करेंगे। मैं पं० रामजन्म मिश्र के ग्रन्थ के साथ ही साथ ग्रन्थ प्रकाशकों को भी धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने इस मौलिक रचना को समाज के उपकारार्थ प्रकाशित कर सुलभ बना दिया है।

वसन्तपञ्चमी
१-२-१९७९

पं० श्रीचन्द्रपाण्डेय
भू० पू० प्राध्यापक, ज्योतिष विभाग
का० हि० वि० वि०

विषय-सूची

श्री भास्करो विजयते

आचार्य भास्कर

(भास्कराचार्य एक अध्ययन)

जीवन परिचय

सिद्धान्त ज्योतिष के इतिहास में जिन प्रतिभा विभूतियों ने देश और विदेशों में भारतीय कृति को उज्ज्वल किया है, उनमें भास्कराचार्य का विशिष्ट स्थान है। उत्तर भारत में यवनों के आक्रमण के कारण जब भारतीय अध्ययन छिन्न भिन्न हो रहा था तो विद्वानों ने दक्षिण भारत में विद्या प्रसार के अनेक केन्द्र खोले। इसमें विशेष कर सिद्धान्तज्योतिष के अनेक पीठ थे, जो भिन्दमाल, अस्मक कुसुमपुर आदि विद्याधानियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। भारतीय सिद्धान्तज्योतिष का प्रतिनिधित्व इन्हीं प्रतिष्ठानों के आचार्यों ने किया है। कुसुमपुर में आर्यभट्ट, भिन्दमाल में ब्रह्म गुप्त, अस्मक में प्रथम भास्कर और विज्जडविड में भास्कराचार्य के पूर्वजों का सिद्धान्तज्योतिष का संप्रदाय प्रसिद्ध रहा है। उत्तर भारत में उस समय उज्जयिनीनरेशों के आश्रय में ज्योतिषविद्या का संरक्षण होता रहा। इसकी मुख्य-भूमिका में वराहमिहिर सबसे अधिक क्रियाशील दीख पड़ते हैं। हमारे भास्कराचार्य ने वाराहमिहिर का नाम बड़े आदर के साथ लिया है।

उपर्युक्त प्रतिष्ठानों में सिद्धान्तज्योतिष संबन्धी अध्ययनाध्यापन भारतीय प्रतिभा के अतिशय जागरूप उदाहरण के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। हमारे चरितनायक भास्कराचार्य विज्जड़विड् के रहने वाले थे। इसका वर्तमान नाम बीजापुर है। जन्म और कृतियों के विषय में इन्होंने स्वयं लिखा है कि—

रसगुण पूर्णमही १०३६ समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥ ५८ ॥
॥ गो. प्र. ध्या. ॥

इससे प्रतीत होता है कि इनका जन्म शका १०३६ में हुआ और इन्होंने ३६ वें वर्ष की अवस्था में सिद्धान्तशिरोमणि की रचना की। इनके कुल और निवासस्थान का थोड़ा परिचय नीचे लिखे श्लोक से प्राप्त होता है।

आसीत् सह्यकुलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने,
नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः।
श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः
साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः ॥ ६१ ॥
तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलप्राप्तप्रसादः सुधी
मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदं प्रस्फुटम्।

एतद्व्यक्तसदुक्तियुक्तिबहुलं हेलावगम्यं विदां
सिद्धान्तग्रथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः ॥ ६२ ॥

(गो. प्र० ध्या)

इससे प्रतीत होता है कि भास्कराचार्य का गोत्र शाण्डिल्य था और इनका निवासस्थान सह्यपर्वत के पास विज्जड़विड् नामक ग्राम था। इनके पिता का नाम श्री महेश्वर था जो भास्कराचार्य के गुरु भी थे।

भारतीयज्योतिष (स्वर्गीय श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित की मराठी पुस्तक अनुवाद जो हिन्दी ग्रन्थ माला ६) पृष्ठ पैरा ३४३ पैरा ३ के द्वारा भी इनके वंश का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

"खान देश में चालीस गाँव से १० मील नैऋत्य की ओर पाटण नाम का एक ऊजाड़ गाँव है। वहाँ भवानी के मन्दिर में एक शिलालेख है। (कैलाशवासी डा० भाऊदा जी ने इस लेख का पता लगाया और उसे Jour. R.A.S.N.S. vol I, P.41 4 में प्रसिद्ध किया। इसके बाद वह Epigraphia Indica val I P 340 में पुनः अच्छी तरह छपा है। उसमें पाटण गाँव का नाम आया है। उसमें भास्कराचार्य के पौत्र चंगदेव यादववंशीय सिंघण राजा के ज्योतिषी थे। इस सिंघण (सिंह) राजा का राज्य देदगिरि में शके ११३२ से ११५९ तक था। चंगदेव ने भास्कराचार्य और उनके वंश के अन्य विद्वानों के ग्रन्थों का अध्यापन करने के लिए पाटण में एक मठ स्थापित किया। सिंघण के माण्डलिक सामन्त निकुंभ वंशीय सोइदेव ने शके ११२९ में उस मठ के लिए कुछ संपत्ति नियुक्त कर दी। उसके भाई हेमाडी ने भी कुछ नियुक्त किया" इत्यादि बातें लिखी हैं। चंगदेव ने शके ११२८ के कुछ वर्षों बाद यह लेख लिखवाया है। इस समय यह मठ तो नहीं है पर मठ के चिन्ह हैं। इस शिला लेख में भास्कराचार्य के पूर्वापर पुरुषों का वृत्तान्त इस प्रकार है। :--

शाण्डिल्यवंशे कविचक्रवर्ती त्रिविक्रमोऽभूत्तनयोऽस्य जातः।
यो भोजराजेन कृताभिधानो विद्यापतिर्भास्करभट्टनामा ॥ १७ ॥
तस्मात् गोविन्दसर्वज्ञो जातो गोविन्दसन्निभः।
प्रभाकरः सुतस्तस्मात् प्रभाकर इवापरः ॥ १८ ॥
तस्मान्मनोरथो जातः सतां पूर्णमनोरथः।
श्रीमन्महेश्वराचार्यस्ततोऽजनि कवीश्वरः ॥ १९ ॥
तत्सूनुः कविवृन्दवन्दितपदः सद्वेदविद्यालता
कन्दः कंसरिपुप्रसादितपदः सर्वज्ञविद्यासदः।
यच्छिष्यैः सहकोऽपि नोविवदितुं दक्षो विवादी क्वचित्
श्रीमान्भास्करकोविदः समभवत् सत्कीर्तिपुण्यान्वितः ॥ २० ॥
लक्ष्मीधराख्योऽखिलसूरिमुख्यो वेदार्थवित्तार्किकचक्रवर्ती।
क्रतुक्रियाकाण्डविचारसारविशारदो भास्करनन्दनोऽभूत ॥ २१ ॥
सर्वशास्त्रार्थदक्षोऽयमिति मत्वा पुरादत्तः।
जैत्रपालेन यो नीतः कृतश्च विबुधाग्रणी ॥ २२ ॥
तस्मात् सुतः सिंघणचक्रवर्तिदैवज्ञवर्योऽजनि चंगदेवः।
श्री भास्कराचार्यनिबद्धशास्त्रविस्तारहेतोः कुरुते मठं यः ॥ २३ ॥

भास्कर रचित ग्रन्थाः सिद्धान्तशिरोमणि प्रमुखाः।
तद्वंश्य कृताश्चान्ये व्याख्येया मन्मठे नियमात्॥ २४॥

इन श्लोकों द्वारा भास्कराचार्य की यह वंशावली निष्पन्न होती है।

त्रिविक्रम
|
भास्कर भट्ट
|
गोविन्द
|
प्रभाकर
|
मनोरथ
|
महेश्वर
|
भास्कर
|
लक्ष्मीधर
|
चंगदेव

भास्कराचार्य का पाण्डित्य

भास्कराचार्य ने लिखा हैं कि जो व्यक्ति व्याकरण नहीं जानता वह किसी भी अन्यशास्त्र के पढ़ने का अधिकारी नहीं। इस लिए पहले व्याकरण पढ़कर ही अन्य शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए यह उनका स्पष्ठ मत हैं।

यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्
ब्राह्मया सवेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्॥
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान्।
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेधिकारी॥ १॥
(शि० गो० ध्या १-८)

अर्थात् जो वेद के मुख व्याकरण को जानता है वह सरस्वती के सदन वेद को भी जानता है। इसलिए प्रथम व्याकरण का अध्ययन करके ही कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति अन्यशास्त्रों के सुनने का अधिकारी होता है।

भास्कराचार्य के विषय में प्रसिद्ध है कि ८ व्याकरण ६ शास्त्र और वेद तथा ज्योतिष एवं आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

अष्टौ व्याकरणानि षट् च भिषजां तर्कानधीतेस्मजः।
....सोस्या कविर्भास्करः॥

यह श्लोक लीलावतीकार के विषय में कहा गया है। यह लीलावती भास्कराचार्य के सिद्धान्त-शिरोमणि का प्रथम भाग, है जो अंकगणित के विषय पर लिखा गया बालबोध का अपूर्व ग्रन्थ है।

इनके ग्रन्थों में व्याकरण विषयक अशुद्धियाँ भी हैं जैसे :—

भ्रमाभवन्ति काहनि - (कस्य ब्रह्मणः अहः दिनं काहः तस्मिन् काहनि) ।

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार अहनि शब्द के तत्पुरुष समास में 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इस सूत्र से टच् होकर के काहे बनेगा किन्तु समासान्त विधि के अनित्य होने से इस प्रयोग को शुद्ध कहा जा सकता है किन्तु संस्कृत वाङ्मय में ऐसा प्रयोग अन्यत्र देखने में नही आता । इसे अपाणिनीय कहना अधिक उचित होगा । क्यों कि अन्य व्याकरणों में टच् को विकल्प से ही कहा है । छन्दों के सामंजस्य के लिए इन्होंने कहीं-कहीं व्याकरण के नियमों की अवहेलना की है । जैसे :—

कैरविणीवनिताजनभर्तुः पीतचकोरमरिचिचयस्य ।

शि.ग.म. प्रत्यब्द शुद्धिः श्लो. १०

अर्थात् चकोरों के द्वारा पिया गया है किरणों का समूह जिसका । यहाँ ही अर्थ अभीष्ट है । इसके अनुसार पद्य खण्ड का रूप होगा 'चकोरपीत मरिचिचयस्य' । किन्तु छन्दोभङ्गभयात् इन्होंने अर्थ वैषम्य की चिन्ता नहीं किया, क्योंकि उनके पद्य के अनुसार पीतः चकोरैः मरिचिचयो यस्य इस विग्रह में क्त प्रत्ययान्त पीत शब्द से पूर्व पानकर्ता चकोर का होना व्याकरण की दृष्टि से उपयुक्त है ।

साहित्य की दृष्टि से इनके ग्रन्थों में पदलालित्य और श्लेषालंकार बेजोड़ हैं उदाहरण के लिए—

लीलागललुललोलकालव्याल विलासिने ।
गणेशाय नमो नीलकमलामलकान्तये ॥

इसमें लकार की आवृत्ति अत्यन्त माधुर्य जनक हो गई है । ये गणेश और सरस्वतो के अनन्य भक्त हैं । सरस्वती की स्तुति करते हुए ये श्लेष उपमा का शंकर बड़ी ही रोचक सरणि में प्रदर्शित किए हैं ।

सिद्धि साध्यमुपैति यत्स्मरणतः छिप्रं प्रसादात्तथा ।
यस्याश्चित्रपदा स्वलंकृतिरलं लालित्यलीलावती ॥
नृत्यन्ति मुखरङ्गगेव कृतिनां स्याद् भारती भारती ।
तं तां च प्रणिपत्य गोलममलं बालावबोधं ब्रुवे ॥

यहाँ पर गणेश तथा सरस्वती दोनों की बन्दना करते हुए भारती (सरस्वती) की उपमा श्लेषालंकार के द्वारा भारतो (नर्तकी) से दी गई है । इसलिए इसमें श्लेश उपमा का शंकर है । साहित्य के लक्षण ग्रन्थों के अनुसार इसमें भारती शब्द सरस्वती और नर्तकी दोनों का वाचक होने से उपमालंकार का पोषक हो गया है, इसलिए यह शब्द श्लेष है । क्योंकि यदि भारती शब्द के लिए सरस्वती का वाचक अन्य पर्याय रखा जाय तो उपमालंकार नहीं होगा । अतः यह शब्द श्लेष हुआ अन्य भी उदाहरण हैं । जैसे :—

शुक्लस्य द्विजराज एष महसो हान्या कुवृत्तः कुतः
सद्वृत्तत्वगतोऽप्यहो भ्रमभवाद्दोषातिसङ्गादिव ।
संप्राप्याथ पुनस्त्रयीतदुमतस्तस्याऽऽश्रयेणैव किं
शुक्लस्य क्रमशस्तथैव महसो वृद्ध्यैति सद्वृत्तताम् ॥

गोलाध्याय २—१० ।

यमक अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षालंकारों के चयन में तथा अपनी कविता के प्रयोग में इन्होंने बहुत हो चमत्कार दिखलाया है ।

मदनदहनखिन्नामागते ऽप्येत्य काले
परिमलवहलानां मालतीनां नदीनाम्।
अदयदयित सिञ्चस्याऽऽत्म दृग्वारिणा किं
परिमल वहलानां मा लतीनां न दीनाम् ॥

यहाँ पर र, ल को आदि मान कर के परिमल बहलानां का दूसरा अर्थ नदी पक्ष में परिमल हराणां, लतोनां यहाँ पर रतीनां इस अर्थ को सभी पद्य में प्रयुक्त किया गया है। इस पद्य में श्लेष और अनुप्रास का योग है। इस प्रकार भास्कराचार्य की काव्यनिर्माणक्षमता भी अपने ढंग की निराली ही है।

ज्योतिष के विषयों में भी इन्होंने अपनी अनुप्रास प्रियता सर्वत्र दिखाई है। जैसे :—शृँगोन्नति में चन्द्रमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि :—

तरणि किरण संगादेशपीयूषपिण्डः।
दिनकर दिशि चन्द्रस्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति ॥
तदितर दिशि बाला कुन्तलश्यामलश्री-
र्घट इव निजर्मूतिच्छाययैवाऽऽतपस्थः ॥ १ ॥

चन्द्रमा सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है यह बात ज्योतिष में प्रसिद्ध है। उसका आधा भाग जो सूर्य के सामने होता है, उसमें उज्वलता तथा सूर्य से पीछे के भाग में अन्धकार रहता है। इसी का वर्णन उपरोक्त पद्य में अनुप्रास तथा उपमाओं के द्वारा किया गया है।

दर्शन के विषय में उनका अध्ययन विशेषतया सांख्यदर्शन की ओर है। गोलाध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में इन्होंने पूरा सांख्यदर्शन अपनी मनोहर शैली में उद्धृत किया है। सांख्य का सिद्धान्त है कि यह सृष्टि दो नित्यतत्व पुरुष और प्रकृति से हुई है। प्रकृति जड़ है किन्तु उसी का परिणाम यह दृश्यमान जगत है। पुरुष निर्लेप है किन्तु प्रकृति के साथ सदा रहता है। सृष्टि कैसे हुई, प्रकृति का परिणाम कैसे हुआ इसका वर्णन करते हुए भास्कराचार्य जी कहते हैं कि :—

यस्मात्क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भे-
ऽहंकारोऽभूत्खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमही पृष्ठ निष्ठाद्विरञ्चे-
र्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत्तत्वमाद्यम् ॥ १ ॥
गो० ध्या० भुवन कोश प्रश्न

यहाँ तात्पर्य यह है कि क्षुब्ध प्रकृति और पुरुष के संयोग से महान् उत्पन्न हुआ उससे अहंकार और अहंकार से आकाश, आकाश से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की तन्मात्रायें उत्पन्न हुई और उसके संयोग से ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्माण्ड के उदर में निहित पृथ्वी के पृष्ठ पर बैठे हुए ब्रह्मा इस विश्व को उत्पन्न करते हैं। इस लिए उस परब्रह्म रूप आद्य परम तत्व (आदि तत्व) की जय हो।

साख्य शास्त्र के अनुकूल ही भास्करीय बीज गणित में अव्यक्त गणित और अव्यक्त प्रकृति की समता श्लेषालंकार द्वारा की गई है। यथा :—

उत्पादकं यत् प्रवदन्ति बुद्धेरधिष्ठितं सत्पुरुषेण सांख्याः ।
व्यक्तस्य कृत्स्नस्य तदेकबीजमव्यक्तमीशं गणितं च वन्दे ।।

यहाँ सांख्यशब्द सांख्यशास्त्र के ज्ञाता और संख्याशास्त्र के ज्ञाता इन दोनों अर्थों में श्लिष्ट है, और अव्यक्त भी अव्यक्तगणित बीजगणित तथा अव्यक्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति का वाचक है । बुद्धि शब्द सांख्यशास्त्र में प्रसिद्ध महदादि की परिणति के अर्थ में तथा बीजगणित में मानव की प्राकृतिक बुद्धि इन दो अर्थों में प्रयुक्त होने से यह भी श्लिष्ट है । इसलिए यहाँ पर अव्यक्त प्रकृति और बीजगणित का साथ ही साथ वर्णन श्लिष्ट विशेषणों के द्वारा किया गया है ।

गणित पक्ष में इसका अर्थ यों है ।

सत्पुरुष सांख्य (अच्छे ज्योतिषी) जिस बीज गणित को लौकिक बुद्धि का उत्पादक कहते हैं । और जो बीजगणित संपूर्ण अङ्कगणित का मूल-(बीज) भूत है उस अव्यक्तगणित की जो सर्वसमर्थ है उसकी बन्दना करता हूं । सांख्यशास्त्र के पक्ष में सांख्यशास्त्र के जानने वाले, सत्पुरुष सांख्यशास्त्र में प्रसिद्ध-पुरुष से अधिष्ठित जिस अव्यक्त प्रकृति को बुद्धि अर्थात् महदादि षोड्श विकार ।

मूल प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकस्तु 'विकारो' न 'प्रकृतिर्न' 'विकृतिः' पुरुषः ।। ३ ।।

मूल प्रकृतिः, अविकृतिः महदाद्याः (महतत्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) षोडशकः (मन श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसना,) विकारो के जनक मानते हैं, और जो संपूर्ण व्यक्त अर्थात् दृश्यमान प्रपंच का मूल भूत है ऐसे अव्यक्त (प्रकृति) और ईस (पुरुष) या व्यापक ब्रह्म की बन्दना करता हूँ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य सृष्टिनिर्माण के विषय में साँख्यमत के अनुयायी हैं, और साहित्य में भी इनका ज्ञान बहुत उच्चकोटि का है, तथा अपनी विशिष्ट काव्यनिर्माण प्रतिभा के द्वारा इन्होंने ज्योतिष के विषयों में भी उसका सफल समावेश किया है ।

वृद्धत्रयी ले. श्री गुरुपद हालदारः पृष्ठ १९७ (७)

दशाकादश खृष्ट शताब्दौ सम्यस्य भास्कर भट्टस्य स्थिति कालः केचिदेनं भट्टभास्कर इत्याहुः । कौशिक भट्टोप्यस्य नामान्तरम् । एकादशः खृष्ट शताब्द्या तेन सुश्रुतपंजिका प्रणीता ।

सुश्रुत पंजिका नेदानीमुपलभ्यते १६५६ खृष्टाब्दीया कवीन्द्राचार्यस्य ग्रन्थ सूच्यामस्य उल्लेखो-वर्त्तते । पृष्ठ ४६३

१०–११ खृष्टशताब्दीः

भास्कर भट्टो भट्टभास्करोवा-भोजसभ्यः सुश्रुतपंजिका-रसेन्द्रभास्कर प्रणेता च ।

उपरोक्त उपकरणों से इनके आयुर्वेद ज्ञान का पता भली-भाँति लग जाता है ।

गणित और सिद्धान्त ज्योतिष में इनका बहुत ही व्यापक अध्ययन था इन दोनों विषयों में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की भ्रान्त उपलब्धियों का खण्डन बड़ी ही योग्यता के साथ किया है एवं तथ्य वस्तुओं का उत्पादन भी बढ़ी प्रौढ़ता के साथ किया है । अंकगणित के विषय में इनकी उपलब्धि ब्रह्मगुप्त के द्वारा प्रतिपादित खहर राशिको एक नवीन रूप देना है । यद्यपि वह आज के गणितज्ञों की दृष्टि में समुचित नहीं प्रतीत होता किन्तु उतने पुरातन काल में शून्य को विशिष्ट संख्या का रूप देना अत्यन्त बुद्धिमता का कार्य है । भारतीय अंकगणित में शून्य का परिकमष्टिक सभी आचार्यो ने दिया है

उसमें शून्य से भक्त राशि को ब्रह्मगुप्त खहर राशि कहकर छोड़ दिए। ब्रह्मगुप्त के बाद महावीर ने अपने गणित सारसंग्रह में खहर को शून्य के तुल्य कहा है। जो सुतरां अशुद्ध है। भास्कराचार्य ने भारतीय आचार्यों में सर्व प्रथम इसे अनन्त नाम दिया और शेष विधि में खगुण की उपेक्षा की यथा :—

योगे खं क्षेप समं वर्गादौ खं खभाजितो राशिः।
खहरः स्यात् खगुणः खं खगुणश्चिन्त्यश्चशेषविधौ॥

इसमें शेश विधि में खगुण की उपेक्षा का उदाहरण दिखलाते हैं।

खेनोधृतादशच्च कः खगुणो निजार्द्ध युक्तस्त्रिभिश्च गुणितः खहृतस्त्रिषष्टिः॥

$$\left(\text{या} \times ० + \frac{\text{या} \times ०}{२} \times ३ \right) \div ० = ६३$$

यहाँ यदि ० को अत्यन्त छोटी संख्या न माना जाय तो अव्यक्त राशि का मान लाना असंभव हो जायेगा क्योंकि शून्य से गुणित राशि शून्य ही होगी।

$$\frac{\left(\text{या} \times ० + \frac{\text{या} \times ०}{२} \right) \times ३}{०} = ६३$$

$$= \frac{० \left(\text{या} + \frac{\text{या}}{२} \right) \times ३}{०} = ६३$$

$$= \left(\text{या} + \frac{\text{या}}{२} \right) \times ३ = ६३$$

$$= \frac{६ \text{ या}}{२} = ६३$$

$$= \text{या} = \frac{२ \times ६३}{६} = १४$$

इसी प्रकार का उदाहरण वीजगणित में भी है जो शून्य को अत्यन्त छोटी संख्या के रूप में मानकर हल किया जा सकता है। वर्ग सभीकरणों को तोड़ने के लिए वीजगणित में जो नियम बतलाये गये हैं उन्हीं की क्रिया द्वारा अंकगणित में भी अव्यक्त राशियों का मान लाया गया है। ऐसे ही वृत का पृष्ठफल और धनफल लाने के लिए जो रीति भास्कराचार्य ने दी हैं उसको आर्यभट्ट और लल्ल आदि किसी ने नहीं दिया है। उनके दिए हुए गोल के पृष्ठ फल और धनफल लाने के जो नियम हैं। वे अशुद्ध हैं।

२ - ज्योतिष में भास्कराचार्य की पृष्ठ भूमि :—

भारतीय ज्योतिष का आदिम स्वरूप हमारी संहिताएं हैं किन्तु आज के उपलब्ध संहिता ग्रन्थों में परवर्ती विषयों का बहुत मिश्रण हो चुका है। वास्तव में मूहूर्त और नक्षत्रों में ग्रहों की स्थितिवश सार्वभौम शुभाशुभ परिणामों को बतलाने की व्यवस्था हमारे महाभारत काल तक चली आ रही थी। ग्रहों की वक्रमार्ग तथा १३ दिन के पक्ष से भयानक रक्तपात की घटना महाभारत युद्ध के समय में बतलाई गई है उस समय

तक सातो ग्रह पूर्णतया पहचान लिए गए थे और उनके रूप रङ्ग आकार प्रकार से भी शुभाशुभ फल बतलाने की व्यवस्था की गई थी। इस सन्दर्भ में महाभारत का प्रमाण (भारतीय ज्योतिष के आधार पर) 'महाभारतीय युद्धकालीन और उससे एक दो मास पूर्व या पश्चात् की ग्रहस्थिति का वर्णन महाभारत में है। कार्तिक शुक्ला १२ के लगभग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी कौरवों के यहाँ शिष्टाचार के लिए गए थे। अग्रिम अमावस्या के पूर्व सातवें दिन उधर से लौटते समय कर्ण ने उनसे कहा था :—

प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः।
शनैश्चरः पीडयति पीडयन् प्राणिनोऽधिकम्॥ ८॥

कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन।
अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं संशमयन्निव॥ ९॥

विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः।
सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपैति च॥ १०॥
उद्योग पर्व अ० १४३

कर्ण के कथन का अभिप्राय यह है कि ये सब बहुत बड़े दुश्चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। अतः लोक संहार होने की संभावना है। युद्ध पूर्व व्यास जी धृतराष्ट्र से कहते हैं —

श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति॥ १२॥
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति॥ १३॥

मघास्वंगारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते॥ १४॥

शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते॥ १५॥
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ।
चित्रा स्वात्यन्तरे चैव विष्टितः परुषोग्रह॥ १७॥

वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः।
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहितांगो व्यवस्थितः॥ १८॥

व्यास ने इन चिन्हों को लोक संहार दर्शक बतलाया है। भागवत पुराण में ग्रहों की गतिविधि के विषय में श्लाघ्य बिवेचना प्रस्तुत किया गया है।

'यथा कुलाल चक्रेण भ्रमता सह भ्रमता तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्य मानत्वादेवं नक्षत्र राशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधाव मानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गति रन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्य मानत्वात्' ॥ २॥ ५ स्कन्ध २२ वाँ अ०

जैसे कुंभकार के चाक (चक्र) के साथ बिपरीत दिशा में चलती हुई पिपीलिकादि (चींटी आदि) की गति चक्र की गति से भिन्न होती है वैसे ही नक्षत्र राशियों से उपलक्षित काल चक्र के द्वारा ध्रुव और मेरू की परिक्रमा करते हुए विपरीत दिशा में पलायमान सूर्यादि ग्रहों की गति भिन्न नक्षत्रों एवं राशियों में अन्य ही उपलब्ध होती है। भास्कराचार्य ने इसको अधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त किया है।

यान्तो भचक्रे लघुपूर्वगत्या खेटास्तु तस्यापरशीघ्रगत्या।
कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या यान्तो न कीटाइव भान्ति यान्तः॥
गो. अ. म. ग. वा. ४।

अर्थात् ग्रह नक्षत्रमण्डल में अपनी पश्चिम से पूर्व की ओर लघुतम गति के द्वारा जाते हुए पूर्व से पश्चिम की अपनी बृहत्तम गति के द्वारा चलते हुए ठीक उसी प्रकार से गतिशील नहीं प्रतीत होते जैसे कि कुलाल चक्र के भ्रमण दिशा से विपरीत दिशा में चलते हुए अल्पगति वाले कीटों की गति नहीं प्रतीत होती।

तात्पर्य यह है कि हम आकाशीय प्रकाश पिण्डों को पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए प्रतिदिन देखते हैं। किन्तु उनमें दो प्रकार के पिण्ड हैं। एक तो वे जो आकाश में सदा एक ही स्थिति में दिखाई पड़ते हैं, जिन्हें हम नक्षत्र कहते हैं और दूसरे वे हैं जो प्रतिदिन अपना स्थान बदलते हुए पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते जाते हैं, उन्हें हम ग्रह कहते हैं। ग्रहों की इस द्विविध गति के सामञ्जस्य के लिए हमारे आचार्यों ने प्रतिदिन पूर्व से पश्चिम की ओर ग्रह नक्षत्रों को जाते हुए देखने का कारण, आकाश में प्रवह वायु का अस्तित्व बतलाया है, जो दिन रात में एकवार सभी ग्रह नक्षत्रों को पूर्व से पश्चिम की दिशा में पृथ्वी के चारो ओर घुमा देता है। ग्रह अपनी गति से पश्चिम से पूर्व की ओर मन्दगति से चलते रहते हैं और उनकी यह गति हमको ठीक वैसे ही प्रतीत होती है जैसे कि कुम्हार के चाक पर बैठा हुआ खटमल चाक की गति से विपरीत दिशा में चलते हुए भी हमें चाक के घूमने की दिशा में ही जाता हुआ प्रतीत होता है।

भागवतपुराण में चन्द्रमा और सूर्य के मध्यम चक्रभ्रमण के समय का प्रायः शुद्ध उल्लेख है। बुध और शुक्र को 'अर्कवद्भ्रमति' लिखा गया है। 'गतिभिरर्कवच्चरति' मंगल और शनि के चक्र भ्रमण कालों का भी निर्देश है।

अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो-राशीन्द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽयशंसः॥ १४॥ इत्यादि।
(भागवत स्कंध. ५, अध्याय २२)

भागवत महापुराण में ग्रहगतियों के चक्रभ्रमणकाल की स्थिति का अंकन ही ग्रहों की गतिविधि के अन्वेषण का मूल कारण है। इसी पर विचार करते हुए भारतीय तथा विदेशी आचार्यों ने ग्रहगति के विजेता के विषय में विवेचन प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम पंचसिद्धान्तिका में पाँच सिद्धान्तों में ग्रहगति की विषमता के विवेचन के लिए सामग्री उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में सूर्य सिद्धान्त, पौलिश सिद्धान्त और रोमक सिद्धान्त इन तीनों में प्रत्येक ग्रह के चक्रभ्रमणपूर्तिकाल का निर्देश है। दिनमान तथा राशियों के उदयमान लाने की विधि भी उसमें दी गई है। द्वादशाङ्गुल शंकु की छाया से ग्रह की क्रान्ति लाने का प्रकार भी उसमें है। भास्कराचार्य ने इसी कारण से पंच सिद्धान्तिकाकार आचार्य वाराहमिहिर की बहुत प्रशंसा की है। क्योंकि उसमें न केवल सूर्य चन्द्रमा की विषम गतियों के आनयन के लिए क्षेत्रसंस्था के द्वारा सम्यक् विवेचन किया गया है, प्रत्युत भौमादि पंचतारा ग्रहों के वक्र मार्गादि गतियों की विषमताओं के विश्लेषण के लिए भी प्रकार बतलाया गया है। प्राचीन सूर्यसिद्धान्त का जो रूप हमें पंचसिद्धान्तिका में उपलब्ध है उसका संशोधित रूप हम आर्यभटीय में पाते हैं।

आर्य भट्ट—

आर्य भट्ट ने पंचसिद्धान्तिका में बिखरे हुए भिन्न-भिन्न रूपों में ग्रहों के चक्रपूर्ति दिनों को एक बड़ी संख्या में इस प्रकार पढ़ने का प्रयास किया जिससे कि एक ही अहर्गण से सभी ग्रहों की मध्यम

स्थितियाँ लाई जा सकें। वह समय हमारे स्मृतियों में प्रतिपादित कल्प वर्ण है और उसी कल्प वर्ण में रवि के वर्ग के दिनों की संख्या से गुणा करने पर जो अहर्गण आता है उसका नाम कल्पकुदिन रखा तथा सभी मध्यम ग्रहों की एक रेखा में स्थितिकाल को भी गणित के द्वारा पढ़ा है। इस काल का नाम कलियुगादि रक्खे हैं। आर्य भट्ट के समय से यह काल कितना होता है इसका विवेचन भी आर्य भटीय में है। इस प्रकार कल्पाहर्गण में सभी ग्रहों के पूर्ण भगणों की संख्या आचार्य आर्यभट्ट ने पढ़ी है। आधुनिक सूर्य सिद्धान्त में भी आर्य भट्ट के भगणों को कुछ संशोधन के साथ स्वीकार किया गया है। तथा उसकी गणना कृतयुगान्त से मानी गई है। इसका कारण यह है कि सभी ग्रहों के कल्पभगण कालों में २ का भाग लग जाता है। इसलिए कलियुग के १० × दशगुणित चतुर्युग कालमान मानने पर पंचगुणित कलियुग के तुल्य कलियुगादि से पूर्व कृत युगान्त पड़ेगा। इसलिए सूर्य सिद्धान्तकार ने अपनी गणना तभी से की है यथा—

अस्मिन्कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।
विना तु पातमन्दोच्चानमेषादौ तुल्यतामिताः॥

सू. सि. १–५६।

इस प्रकार आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में भी आर्य भट्ट के बाद जितने भी सिद्धान्त ग्रन्थकार हुए हैं सबने आर्यभटीय प्रणाली का अनुसरण किया है। ग्रह की मध्यम गति और पृथ्वी से दूरियों के संबन्ध के लिए भारतीय आचार्यों ने एक कल्पना प्रस्तुत की है जिसको समगति योजन परिकल्पना कहते हैं, यह परिकल्पना आर्यभट्ट से पहले के पंचसिद्धान्तिकास्थ सूर्य सिद्धान्त में भी है:—

उससे सिद्ध है कि यह परिकल्पना भारतीयों की अपनी निजी है। ग्रहगति का विवेचन करते समय लोगों ने इस कल्पना से ही दूरियों का निर्धारण किया है। यह आगे बतलाया जायेगा। पहले हम ग्रहों के आकाशीय स्थानों की विषमता के समाधान के लिए जो नियम प्रस्तुत किए गए हैं उनको प्रस्तुत करते हैं।

ज्योतिर्निबन्धावलीः—प्रथम हम चन्द्रमा को लेते हैं। ग्रहगणना की इस विषमता ने तारों के मध्य भागते हुए चन्द्रमा की गतिविधि के अन्वेषण की ओर तत्परता से प्रवृत्त किया। चन्द्रमा की दैनिक गति की गणना से ज्ञात हुआ कि वह प्रतिदिन समान नहीं होती। फलतः यह कल्पना प्रस्तुत की गई कि चन्द्रमा का मार्ग तो गोला (वृत्ताकार) है, किन्तु उसकी दैनिक गतियों की विषमता का कारण यह है कि जिस वृत्त में वह घूमता है उसका मध्यबिन्दु, भूकेन्द्र न होकर कोई अन्य बिन्दु है। इसी नियम को सूर्य की गति के अन्वेषण में प्रयुक्त किया गया और पूरी सफलता के बाद इसे स्थिर मान लिया गया। फिर प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या को ग्रहणों के न होने से यह निर्धारित किया गया कि चन्द्रमा और सूर्य के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं, और एक दूसरे के साथ कोण बनाते हुए हैं। इसी प्रकार आकाश में एक ही स्थान पर ग्रहणों के न होने से यह निश्चित हुआ कि चन्द्रमा और सूर्य के मार्ग जहाँ मिलते हैं वह बिन्दु भी चल है। इसी को राहु नाम दिया गया। चन्द्रमा की गतियों की विषमताएं भी सूर्य की भाँति सदा आकाश में नियत स्थानों पर ही नहीं उपलब्ध हुईं। उनकी इस शीघ्र स्थान भिन्नता से यह निष्कर्ष निकाला गया कि चन्द्रमा की गति जहाँ सबसे छोटी होती है वह बिन्दु भी आकाश में थोड़े ही समय में अपना स्थान परिवर्तित करता है। उसका नाम मन्दोच्च रक्खा गया। सूर्य का मन्दोच्च सैकड़ों वर्षों में अपना स्थान बदलता है। इसीलिए उसकी गतियों की विषमताएं नियत स्थानों पर ही देखी जाती हैं। चन्द्रमा और सूर्य की गतिविधि के निर्धारण मे सफल पूर्वोक्त नियम जब अन्य ग्रहों में प्रयुक्त किया गया तो उनमें बहुत बड़ी विषमता उपलब्ध हुई। उनकी गति जहाँ परम अल्प होती थी उस स्थान और उनके मन्दोच्च में कोई सामञ्जस्य नहीं था। किन्तु नक्षत्र चक्र की परिक्रमा (भगण पूर्तिकाल) के समय से उनकी जो दैनिक मध्यम गति लाई गई

उसके अनुसार पृथ्वी से सबसे कम दूर चन्द्रमा, सब से अधिक गति वाला है। उसके बाद क्रमशः छोटी गति वाले बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि उत्तरोत्तर अधिकाधिक हैं। भास्कराचार्य के शब्दों में यह क्रम यों हैः—

भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैर्वृत्तो वृतः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्।
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्यपृष्ठे-
निष्ठं विश्वं च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्॥ २॥
सि. शि. भु. को. २।

ग्रहो की गतियों और दूरियों के इस सम्बन्ध से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सभी ग्रहों की योजनात्मक गति अपने मार्ग में समान काल में समान ही होती है। किन्तु उनका कोणात्मक नाप भू केन्द्र से उनकी दूरी के क्रम के अनुसार छोटा बड़ा होता है। सिद्धान्त शिरोमणि में इसको इस प्रकार व्यक्त किया गया है।

समागतिस्तु योजनैर्नभःसदां सदा भवेत्।
कलादिकल्पनावशान् मृदुर्द्रुता च सा स्मृता॥
सि. शि. म. प्र. शु. २६।

अर्थात् सभी ग्रहों की योजनात्मक गति सदातुल्य होती है, किन्तु कला आदि (कोणात्मक) गति की कल्पना के कारण वे मन्द और शीघ्र कही जाती हैं। गणित की प्रक्रिया से ग्रहों को गतियों और दूरियों का यह क्रम पूर्णतया सत्य था, फिर भी मंगल आदि ग्रहों की आकाशीय स्थितियाँ उसो नियम से नहीं उपलब्ध हो सकीं, जिससे कि चन्द्रमा और सूर्य में सफलता मिली थी। तब इन ग्रहों की इस विषमता को नियमित रूप से उपलब्ध करने के लिए यह स्थिर किया गया कि इनके भ्रमण पथ (कक्षा) का केन्द्र पृथ्वी और सूर्य के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा में है। इसके अनुसार इन ग्रहों के गणित द्वारा लाए गये मध्यम स्थानों का सूर्य से अन्तर करके जब गणित द्वारा उनकी स्थिति निर्धारित की गयी तो आकाश में उनके स्थान और गणितागत ग्रह में स्वरूप ही अन्तर उपलब्ध हुआ। इसलिए इस नवीन विषमता के लिए चन्द्रमा, सूर्य की भाँति ही उनके भी मन्दोच्च की कल्पना की गयी, और फिर दोनों की मिश्रित प्रक्रिया से गणित करने पर इन ग्रहों की आकाशीय स्थितियाँ उनकी गणितागत स्थितियों की पूर्णतया संवादिनी उपलब्ध हुई। भारतीय ग्रह गणित पद्धति में सर्वत्र पहले ग्रह और सूर्य के अन्तर से फल लाने की प्रक्रिया इसकी साची है कि मंगल आदि ग्रहों की कत्ताओं के केन्द्र, पृथ्वी और सूर्य के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा में ही माने गये थे। फलतः सूर्य और ग्रहों के एक योग के बाद दूसरे योग तक का काल, ग्रहों की आकाशीय स्थिति की गणना के लिए महत्वपूर्ण हुआ और इन्हीं रविग्रहसंयुति दिवसों को शीघ्र केन्द्र भगण दिवस के नाम से कहा गया। सूर्य और चन्द्रमा के शीघ्र केन्द्र भगण नहीं होते यह पूर्वोक्त विवेचन से सिद्ध है। नीचे की तालिका में ग्रहों और शीघ्र केन्द्रों के भचक्र पूर्तिदिवस (३६०° चलने के दिवस) दिए जाते हैं। हमारी ग्रहगणना पद्धति उपर्युक्त नियमों और उपलब्ध ग्रहगतियों के अनुसार आज भी चल रही है। आधुनिक उपलब्धियाँ भी ये ही हैं। केवल ग्रहों की संस्था में अन्तर है।

ग्रह	भगरण पूर्ति दिवस	रवि ग्रह संयुति दिवस	
चन्द्रमा	२७,३२२	२९.५३०	
बुध	८७,९६९	११६.८७८	
शुक्र	२२४,६९८	५८३.९२९	
सूर्य	३६५,२५६३६	×	चन्द्रमा और सूर्य का संयुति दिवस एक चान्द्र मास होता है।
मंगल	६८६,९७९	७७९.९३६	
गुरु	४३३२,८	३९८.८८४	
शनि	१०७५९,२२१	३७८.०९२	

इस प्रकार इन रवि ग्रह संयुति दिवसों से ग्रहों की सूक्ष्मतम मध्यम गतियाँ प्राप्त की गईं। यथा—

भौम और रवि का संयुति दिवस काल ७७९·९३६ है इससे एक दिन की जो गति आयेगी वह भौम की शीघ्र केन्द्र गति होगी। उसको रविगति में घटा देने पर भौमगति प्राप्त होगी।

भौम संयुति दिवस = स

$$\therefore \text{भौम शी. के. ग.} = \frac{३६०}{स} = \frac{३६०}{७७९\cdot९३६}$$

रवि गति = भौ. शी. के. ग. = भौमगति

५९।८।१०—२६।४१।४०

$$\frac{२७।४१।४०}{३१।२६।३०} = \text{भौम गति}$$

आर्यभट्ट के शिष्यों में आर्यभटीय भाष्य, महाभास्करीय आदि के निर्माता प्रथम भास्कर और लल्लाचार्य ने आर्यभटीय से भिन्न भिन्न प्रकार से सिद्धान्त-ज्योतिष के प्रकरणों का निर्माण किया है। इनमें लल्लाचार्य के निर्मित प्रकरण सर्वाधिक उत्तम माने गए और इनके परवर्ती आचार्यों ने इसी क्रम के प्रकरणों को अपनाया। ज्योतिष के तीन आचार्य प्रायः समकालीन हैं। इनमें उपर्युक्त दो के अतिरिक्त तीसरे ब्रह्मगुप्त हैं। हमारे सिद्धान्तशिरोमणिकार तृतीय भास्कराचार्य ने लल्ल के 'शिष्य धी वृद्धिदम्' को पढ़कर के सिद्धान्त-ज्योतिष की योग्यता प्राप्त की थी तथा उसकी विस्तृत टीका भी लिखी है जो सम्प्रति वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित हो रही है। प्रथम भास्कर और लल्ल दोनों ने वलन, दृक्कर्म, और शृङ्गोन्नति आदि में उत्क्रमज्या प्रकार को स्वीकार किया है। किन्तु आर्यभट्ट के प्रबल आलोचक ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट के द्वारा बताए गए इस उत्क्रमज्या प्रकार का खण्डन किया है। हमारे द्वितीय भास्कराचार्य ने इन्हीं ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ को अपना आधार ग्रन्थ माना है। उन्हीं के ग्रह भगणादि तथा उत्क्रमज्या प्रकार के खण्डन को लेकर उत्क्रमज्या प्रकार से वलन, दृक्कर्म आदि के असंगत होने के लिए अनेक युक्तियाँ उपस्थित की गई हैं। इस प्रकार भास्कराचार्य को ब्रह्मगुप्त और लल्ल के ज्योतिष सम्बन्धी खोजों के साथ ही साथ आचार्य श्रीपति के सिद्धान्तशेखर और मुञ्जाल केलधुमानस के भी अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। जिससे इनके विशेष उपलब्धियों को भी वे अपने सिद्धान्तशिरोमणि में स्थान दे सके। ब्रह्मगुप्त के उत्क्रमज्या निरास सम्बन्धी उपपत्ति के अतिरिक्त भास्कराचार्य ने आचार्य मुञ्जाल के अयनगति तथा जीवा की

तात्कालिक गति और श्रीपति के उदयान्तर को भी अपने सिद्धान्तशिरोमणि में संग्रहीत किया है, किन्तु इन विषयों में इन आचार्यों का नाम नहीं लिया। यहाँ तक कि आचार्य कमलाकरभट्ट ने भी आचार्य श्रीपति के ग्रन्थ को विना देखे ही लिख दिया कि केवल भास्कराचार्य ने ही उदयान्तर का आविष्कार किया है, जो कमलाकर के मत से असंगत है। इस प्रकार भास्कराचार्य ने अपने से पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों की कृतियों का अध्ययन कर उनके सार तत्व को अपनी गणित की कसौटी पर कसा और उपलब्धियों को अपने ग्रन्थ में संग्रहित किया है। उनके अपने भी आविष्कार हैं जो उनके गणित की चमत्कारी बुद्धि के परिचायक हैं। उनकी प्रतिज्ञा है कि :—

कृता यद्यप्याद्यैश्चतुररचना ग्रन्थरचना
तथाऽप्यारब्धेयं तदुदितविशेषान् निगदितुम्।
मया मध्ये मध्ये त इह हि यथास्थाननिहिता
विलोक्याऽतः कृत्स्ना सुजनगणकैर्मत्कृतिरपि ॥ ४ ॥

सि. शि. म. का. मानाध्याय।

३—भास्करीय कृतियाँ—

मानव समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे हो जाते हैं जिनकी कृतियाँ कालजयी होती हैं। हमारे वेद उपनिषद् ऐसे ही ग्रन्थ हैं। कवियों में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, आदि की कृतियाँ भी इसी कोटि की हैं। यद्यपि विज्ञान में ऐसी कृति कोई भी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान सदा परिवर्तनशील है और उसका परिवर्तन अपने को आगे बढ़ाने में ही होता है, तथापि कुछ वैज्ञानिक इस प्रकार की कृतियाँ छोड़ जाते हैं जो बहुत समय तक अध्ययन अध्यापन क्रम में रहती हैं, और उनसे अच्छे ग्रन्थों के निर्माण हो जाने पर भी उनका महत्व बहुत काल तक बना रहता है। हमारे सिद्धान्तज्योतिष के इतिहास में भास्कराचार्य का भी वही स्थान है। इनकी सिद्धान्तशिरोमणि आज १००० वर्षों से भारतवर्ष में अध्ययन अध्यापन क्रम में विद्यमान है। यद्यपि आज सिद्धान्तज्योतिष अपने उच्चतम स्थिति को प्राप्त हो चुका है फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से भास्कराचार्य के ग्रन्थ उन आदर्शों की कोटि में आते हैं, जो ज्योतिषविज्ञान को स्थायी उपलब्धियाँ प्रदान कर गए हैं। भास्कराचार्य से पहले जो सिद्धान्तग्रन्थ अध्ययनाध्यापन क्रम में थे उनमें से अनेक आज लुप्तप्राय हो चुके हैं। उसका कारण सिद्धान्त शिरोमणि के सामने उनका अध्ययन-अध्यापन में न होना ही है।

भास्कराचार्य ने दो ग्रन्थों की रचना मुख्य रूप से की है (१) **सिद्धान्तशिरोमणि** जिसके पाटीगणित (लीलावती) बीजगणित, गणिताध्याय और गोलाध्याय ये चार भाग हैं। (२) **करण कुतूहल** है जो पञ्चाङ्ग निर्माण के लिए बनाया गया है।

लीलावती—

लीलावती—यह सुललित एवं सरल पदों में लिखा गया पाटीगणित का ग्रन्थ है। ग्रन्थकार की स्वयं प्रतिज्ञा है कि:—

पाटीं सद्गणितस्य वच्मि चतुरप्रीतिप्रदां प्रस्फुटां
संक्षिप्ताक्षरकोमलामलपदैर्लालित्य लीलावतीम् ॥

लीलावती १।

अर्थात् संक्षिप्त अक्षरों में कोमल पदों द्वारा युक्त सौन्दर्यशाली पाटीगणित की प्रक्रिया को जो कि चतुरों को प्रसन्न करने वाली है लिख रहा हूँ। ग्रन्थकार ने अपनी इस प्रतिज्ञा का निर्वाह बड़ी ही योग्यता के साथ किया है। इनके पहले श्रीधराचार्य का पाटीगणित और त्रिशतिका ये दो ग्रन्थ अध्ययन अध्यापन में थे, जिनके विषयों को लेकर उन्हें परिष्कृत एवं विस्तृत रूप देकर भास्कराचार्य ने लीलावती का निर्माण किया है। ललित पदों के लिए:—

लीलागललुलल्लोलकालव्यालविलासिने।
गणेशाय नमो नील-कमलामल कान्तये।। यह पद है।

अर्थात्—लीला (क्रीड़ा) से गले में धारण किए हुए कृष्ण सर्प की शोभा से युक्त नील कमल के सदृश कान्तिवाले श्री गणेश जी को प्रणाम करता हूँ।

इसमें अनुप्रास की छटा दर्शनीय है तथा गणित जैसे नीरस विषय को भी सरस पदों में वर्णन करने की इनकी शैली अद्‌भुत है। उदाहरण के लिए—

अये बाले लीलावति मतिमति ब्रूहि सहितान्-
द्विपञ्च द्वात्रिंशस्त्रिनवतिशताष्टादश दश।
शतोपेतानेतानयुतवियुतांश्चापि वद मे
यदि व्यक्ते युक्ति व्यवकलनमार्गेऽसि कुशला।।
लीलावती अभिन्नपरिकर्माष्टक।

अर्थात्—अये मतिमति वाले लीलावती! यदि तुम योग और अन्तर की क्रिया में दक्ष हो तो २, ५, ३२, १९३, १८, १०, १०० का योग बताओ। और उसे दश हजार में घटा कर शेष संख्या भी बताओ।

इसमें केवल योग वियोग के प्रश्न को मधुर कोमल कान्त पदावली में प्रस्तुत करने की लालित्यकला का परिचय दिया गया है। इसी प्रकार:—

अलिकुलदलमूलं मालतीं यातमष्टौ
निखिलनवमभागाश्चालिनी भृङ्गमेकम्।
निशि परिमललुब्धं पद्ममध्ये निरुद्धं
प्रतिरणति रणन्तं ब्रूहि कान्तेऽलिसंख्याम्।।
लीलावती व्य. वि. ५।

अर्थात् हे कान्ते! किसी भ्रमर समूह से उसके आधे के मूल और समस्त भ्रमर संख्या का $\frac{8}{9}$ भाग मालती पुष्प पर चला गया, उसमें से बचा हुआ १ भ्रमर सुगन्ध के लोभ वश रात्रि में बन्द होकर गूँज रहा था और दूसरी १ भ्रमरी गूँज रही थी तो भ्रमर संख्या कितनी थी!

पञ्चांशोऽलिकुलात् कदम्बमगमत् त्र्यंशः शिलीन्ध्रं तयो-
र्विश्लेषस्त्रिगुणो मृगाक्षि! कुटजं दोलायमानोऽपरः।
कान्ते! केतकमालतीपरिमलप्राप्तैककालप्रिया-
दूताहूत इतस्ततो भ्रमति खे भृङ्गोऽलिसंख्यां वद।।
लीलावती इष्टकर्म ४।

अर्थात्—भ्रमर समुदाय का पञ्चमांश $\frac{1}{5}$ कदम्ब को, तथा तृतीयांश $\frac{1}{3}$ शिलीन्ध पुष्प पर, दोनों भागों का त्रिगुणित अन्तर तुल्य कुटज पर चला गया। केवल १ भ्रमर केतकी और मालती के गन्ध से परस्पर मोहित होकर घूमता रहा तो भ्रमरों की कुल संख्या कहो।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण इस ग्रन्थ में हैं। जिनमें गणित की विशेषता के साथ साहित्यिक छटा भी दर्शनीय है।

इस ग्रन्थ में संख्याओं का स्थान मान, संकलन, व्यवकलन, गुणन-भजन, वर्ग-वर्गमूल, घन-घनमूल ये आठ परिकर्म दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त शून्य परिकर्माष्टक, व्यस्त विधि, इष्टकर्म, संक्रमण, वर्गकर्म, गुणकर्म, त्रैराशिक, व्यस्त त्रैराशिक, पञ्चराशिक, मिश्रव्यवहार, श्रेढीव्यवहार, क्षेत्रव्यवहार, खात—व्यवहार, क्रकच व्यवहार, राशि व्यवहार, छाया व्यवहार, कुट्टक और अंकपाश इतने प्रकरण हैं।

बीजगणित—

बीजगणित का अर्थ है मूल गणित। इसमें अक्षरों के गणित द्वारा पाटी गणित के सिद्धान्तों की विवेचना होती है। इसीलिए यह पाटीगणित का मूल या बीज कहा जाता है। भास्कराचार्य ने अपने बीजगणित के प्रथम श्लोक में ही इसकी प्रशंसा सांख्यशास्त्र की उपमा देते हुए की है जिसकी व्याख्या पीछे की जा चुकी है।

इस बीजगणित में धनर्णषड्विधम्, खषड्विधम्, अव्यक्त षड्विधम्, अनेकवर्ण षड्विधम्, करणी-षड्विधम्, कुट्टक, वर्ग प्रकृति, चक्रवाल, एकवर्णसमीकरण, अनेकवर्णसमीकरण, अनेक वर्णमध्यमाहरण, और भावितम्। ये १३ प्रकरण हैं।

इस बीजगणित में लीलावती के ही उदाहरणों को देकर उसका गणित बीजगणित के अनुसार किया है।

सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय—

यह सिद्धान्त ज्योतिष का ग्रन्थ है, इसमें भास्कराचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुकरण किया है और मूल स्वरूप में ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त को माना है। जिसके भगणादिकों का स्थान अपने ग्रन्थ में दिया है यथा—

कृती जयति जिष्णजो गणकचक्रचूड़ामणि-
र्जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः।
वराहमिहिरादयः समवलोक्य येषां कृतीः
कृती भवति माहृशोऽप्यतनुतन्त्रबन्धेऽल्पधीः॥ २॥

सि. शि. म. का. मानाध्याय।

सिद्धान्त किसे कहते हैं इसमें किन किन बातों का समावेश होता है इसका वर्णन करते हुए भास्कराचार्य कहते हैंः—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥ ६॥

सि. शि. मध्यमाधिकार

इसके बाद सिद्धान्त और सिद्धान्तज्ञों की प्रसंशा करते हुए कहते हैं कि :—

जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिःशास्त्रविचारसारचातुरप्रश्नेष्वकिंचित्करः ।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोऽथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः ॥ ७ ॥

गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूरप्यूर्जिताऽश्वादिकै-
रुद्यानं च्युतचूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः ।
योषित् प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्नभात्युच्चकै-
र्ज्योतिः शास्त्रमिदं तथैव विबुधाः सिद्धान्तहीनं जगः ॥ ८ ॥

सि. शि. म. १ ।

इस गणिताध्याय में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार पर्वसंभवाधिकार, चन्द्र ग्रहणाधिकार, सूर्य ग्रहणाधिकार, ग्रहच्छायाधिकार, ग्रहोदयास्ताधिकार, शृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार तथा पाताधिकार है ।

इनका विस्तृन वर्णन इस प्रकार है ।

१—मध्यमाधिकार—इस मध्यमाधिकार को कालमानाध्याय, भगणाध्याय, ग्रहानयनाध्याय, कक्षाध्याय, प्रत्यब्दशुद्धिः तथा अधिमासादिनिर्णय आदि ६ भागों में विभक्त किया है । आरम्भ में भगवान सूर्य की प्रार्थना करते हुए, पूर्वाचार्यो की प्रशंसा, ग्रन्थ रचना का कारण, सुजन गणकों की प्रार्थना, सिद्धान्त ग्रन्थ लक्षण तथा प्रशंसा, ज्योतिशास्त्र की प्रशस्ति तथा उसका वेदाङ्गत्वनिरूपण, अनाद्यनन्त काल की प्रवृत्ति, कालमानादिविभाग, अर्कमान, दैवमान, चान्द्रमान, पैत्र्यमान, सावन और नाक्षत्रमान कथन । ब्राह्ममान कथन । कलियुगादि चतुर्युग का मान । वार्हस्पत्य-मानुष मान । ग्रहों का मन्दोच्च, चलोच्च भगणादि कथन । अहर्गणादि साधन पूर्वक ग्रहों का आनयन । कक्षा प्रकार से ग्रहों का आनयन । प्रत्यब्द शुद्धि तथा अधिमासादि का निर्णय आदि विषय अपने १२० श्लोकों में बड़े ही रोचक शैली में दर्शाया है ।

२—स्पष्टाधिकार—

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम् ।
स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या ॥ १ ॥

इसके द्वारा प्रयोजन दिखलाते हुए, अर्धज्या, ज्या, धनुःकरण, परमक्रान्तिज्या, भोग्य खण्ड, मन्दपरिधि, भौमादीनां चलपरिधि, कर्णानयन, गति स्पष्टीकरण, शीघ्रफलानयन, ग्रह स्पष्टीकरण, गति का शीघ्रफल, उदयास्तसंभव, पलभाज्ञान, पञ्चज्यासाधन, चरानयन, चरकर्म, लङ्कोदयसाधन, भुजान्तर, उदयान्तर, औदयिककर्म, नतकर्म, स्फुट ग्रहस्य तात्कालिकीकरण, सूक्ष्मनक्षत्रानयन आदि विषयों का वर्णन किया है । इसमें कुल ७७ श्लोक हैं ।

३—त्रिप्रश्नाधिकार—

जगुर्विदोऽदः किलकालतन्त्रं दिग्देशकालावगमोऽत्र यस्मिन् ।
त्रिप्रश्ननाम्नि प्रचुरोक्तिधाम्नि ब्रुवेऽधिकारं तमशेषसारम् ॥ १ ॥

उक्त श्लोक द्वारा प्रयोजन प्रदर्शनपुरस्सर लग्नसाधन, लग्न से कालानयन, विलोमलग्नदिग्ज्ञान, छाया से कर्ण और कर्ण से छाया ज्ञान, अक्षक्षेत्र तथा उनका साधन, छायानयन तथा कोण शंकु का

आनयन, दृग्ज्या, हृति, अन्त्या, दिनार्द्धशंकु, दिनार्द्ध दृग्ज्या, छायाकर्ण, दिनार्धकर्ण, समवृत्तकर्ण, उन्मण्डलकर्ण से मध्य कर्ण, इच्छादिक्छायादि, छाया से काल ज्ञान, छाया से अर्कसाधन, छाया से भुजज्ञानादि का समावेश कुल १०९ श्लोकों में किया है।

४—पर्वसम्भवाधिकार—इसमें ५ श्लोकों के द्वारा ग्रहण संभवासंभव ज्ञान प्रकार दिया गया है।

५—चन्द्रग्रहणाधिकार—

> बहुफलं जपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि।
> सदुपयोगि जने सचमत्कृति ग्रहणमिन्द्विनयोः कथयाम्यतः॥

इस श्लोक के द्वारा चन्द्र ग्रहणाधिकार की महत्ता और उसका प्रयोजन कहते हुए, इस अधिकार में सूर्य चन्द्र कक्षा व्यासार्ध, कलाकर्ण, योजनात्मककर्ण साधन, योजन बिम्ब, योजन कला, बिम्बकलानयन, कलाबिम्ब, चन्द्रविक्षेप, ग्रासप्रमाण, स्थितिमर्दार्धानयन, स्फुटीकरण, इष्टकाल का भुजानयन, ग्रास से कालज्ञान, वलनानयन, स्पष्टवलन, परिलेख, इष्टग्रासपरिलेख, सम्मीलनादिज्ञान, इष्टग्रास, कालानयनादि विषयों का वर्णन ३९ श्लोकों में किया है।

६—सूर्य ग्रहणाधिकार—

> दर्शान्तकालेऽपि समौ रवीन्दू द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
> कर्धोच्छ्रितः पश्यति नैकसूत्रे तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि॥ १॥

आरम्भ प्रयोजन इस श्लोक के द्वारा दर्शाते हुए लम्बन परिभाषा, लम्बनानयन, लम्बन प्रयोजन, दृक्क्षेप, दृक्क्षेप से नति, स्फुटनत्यानयन, नति का प्रयोजन, स्पर्श, मोच, सम्मीलनोन्मीलनादि कथन, आदि विषयों का वर्णन १९ श्लोकों में किया है।

७—ग्रहच्छायाधिकार—इसमें ग्रह विक्षेपानयन, आयनदृक्कर्म, अक्षजदृक्कर्म, उदयास्तलग्नस्वरूप तथा प्रयोजन, ग्रह का द्युनत, क्रान्ति स्फुट, छाया साधन, इत्यादि का वर्णन १६ श्लोकों में किया है।

८—उदयास्ताधिकार—नित्योदयास्तका गतगम्यलक्षण, तदन्तर घटिका ज्ञान, कालांश, इष्ट कालांशानयन, इत्यादि विषयों का वर्णन १२ श्लोकों में किया है।

९—शृङ्गोनत्यधिकार—चन्द्रशङ्कुसाधन, शङ्कुतलानयन, भुजज्ञान, दिग्वलन परिलेखादि वर्णन १२ श्लोकों में किया है।

१०—ग्रहयुत्यधिकार—ग्रहों का मध्यमबिम्ब, तथा स्फुटीकरण, युतिकाल ज्ञान, दक्षिणोत्तरान्तर ज्ञान, भेद योग लम्बन ज्ञानादि विषयों का वर्णन कुल ९ श्लोकों में दिया है।

११—भग्रहयुत्यधिकार—इसमें नक्षत्रों की ध्रुवा, शरांश, अगस्त्य, लुब्धक, इष्टघटिका, युतिकालज्ञान, भानामुदयास्तकालादि विषयों का वर्णन २? श्लोकों में किया है।

१२—पाताधिकार—इस अधिकार (अध्याय) में चन्द्रमा की विशेषता, क्रांतिसाम्य सम्भवा सम्भवज्ञान, व्यतिपात, वैधृति लक्षण, क्रांतिसाम्य काल ज्ञान, पाताद्यन्तकालपरिज्ञान, स्थित्यर्द्धोपपत्तिः तथा पात प्रयोजनादि विषयों का वर्णन २१ श्लोकों में किया है।

सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय :—

सिद्धान्त शिरोमणि का गोलाध्याय गणिताध्याय की उपपत्ति के रूप में लिखा गया है। आचार्य लल्ल ने अपने ग्रन्थ शिष्यधीवृद्धिदम् में ऐसे ही अध्यायों की कल्पना की है और भास्कराचार्य ने भी उन्हीं का अनुसरण किया है। ज्योतिषी को गोल क्यों पढ़ना चाहिए इसके लिए भास्कराचार्य कहते हैं कि:—

मध्याद्यंद्युसदां यदत्र गणितं तस्योपपत्तिं विना
प्रौढिं प्रौढसभासु नैति गणको निःसंशयो न स्वयम् ।
गोले सा विमला करामलकवत् प्रत्यक्षतो दृश्यते
तस्मादस्म्युपपत्तिबोधविधये गोलप्रबन्धोद्यतः ।। २ ।।

ग्रहों का मध्यम आदि जो भी गणित है उसकी उपपत्ति जाने विना ज्योतिषी प्रौढ़ (विद्वानों) की सभा में प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं होता, साथ ही वह स्वयं भी संशय रहित नहीं होता । वह उपपत्ति गोलज्ञान के द्वारा हाथ में रक्खे आमले की भाँति प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ती है । अतः मैं उपपत्तिज्ञान के लिए गोल प्रबन्ध की रचना करने के लिए उद्यत हूँ ।

इस समय गोल प्रशंसा एवं गोल के अनभिज्ञ गाणितिकों का उपहास करते हुए कहते हैं—

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथाराजविवर्जितं च ।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र ।। ३ ।।

यहाँ पर भास्कराचार्य ने सिद्धान्त ज्योतिष अथवा गोल को राजा और ज्योतिष के अन्य विषयों को राज्य माना है । तात्पर्य यह है कि ज्योतिष के अन्य सभी विषय गोलोपजीवी हैं ।

संस्कृत साहित्य में प्रवेश के लिए व्याकरण भी उतना ही आवश्यक है जितना कि स्वयं संस्कृत भाषा । व्याकरण किसी भी भाषा ज्ञान के लिए आधार होता है । संस्कृत भाषा जब हमारे दैनिक व्यवहार में नहीं है तो उसके ज्ञान का एकमात्र साधन व्याकरण ही है । संस्कृत व्याकरण अपने में स्वयं एक भाषा विज्ञान है । उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । भास्कराचार्य ने प्रथम इसको योग्यता प्राप्त करके ही सिद्धान्त ज्योतिष पढ़ा था । इसलिए वे व्याकरण की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि :—

यो वेदवेदवदनं सदनं हि सम्यग् ब्राह्म्याः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम् ।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान् शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी ।।
गोलाध्याय ।

अर्थात् यो वेद के मुख व्याकरण को सम्यक् प्रकार से जानता है वह सरस्वती के सदन वेद को भी जानता है । अन्य शास्त्रों का कहना ही क्या है । इसलिए प्रथम इस व्याकरण का अध्ययन करके ही कोई भी व्यक्ति अन्य शास्त्रों के सुनने का अधिकारी होता है ।

आचार्य श्रीपति ने इस श्लोक को ज्योतिष के विषय में लिखा है जो इस प्रकार है :—

यो वेद वेद नयनं सदनं ही सम्यग् ब्राह्म्याः स वेदमपि वेदकिमन्यशास्त्रम् ।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान् शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी ।।
सिद्धान्त शेखर ।

यहाँ पर आचार्य श्रीपति के श्लोक का ही परिवर्तन करके व्याकरण की प्रशस्ति में कह दिया गया है । इससे आचार्य श्रीपति का अनुकरण स्पष्ट है । अन्य स्थानों में भी यह बात बतलायी जायगी ।

भास्कराचार्य गोल की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि :—

ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत् स्पष्टखेटाश्रयम् ।
ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति ।।

पुनः गोलस्वरूप को बतलाते हुए कहते हैं । :—

दृष्टान्त एवावनिभग्रहाणां संस्थानमानप्रतिपादनार्थम् ।
गोलः स्मृतः क्षेत्रविशेष एव प्राज्ञैरतः स्याद्गणितेन गम्यः ॥ ५ ॥

ज्योतिष शास्त्र को पढ़ने का अधिकार किसको है इसका वर्णन करते हुए भास्कराचार्य कहते हैं कि:-

द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्त युक्तं
तदवगमनिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः ।
यदि भवति तदेदं ज्योतिषं भूरिभेदं
प्रपठितुमधिकारी सोऽन्यथानामधारी ॥

स्वयं अपने गणित गोल को प्रशंसा करते हुए आचार्य भास्कर ने लिखा है कि :—

गोलं श्रोतुं यदि तव मतिर्भास्करीयं शृण त्वं
नो संक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तरः शास्त्रतत्वम् ।
लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्यः स यस्माद्
विद्वन् विद्वत्सदसि पठतां पण्डितोक्तिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥

अर्थात् यदि आप की इच्छा गोल सुनने की हो तो भास्कराचार्य के गोल को सुनिए। क्योंकि यह न तो संक्षिप्त ही है और न तो व्यर्थ के बहुत विस्तार वाला ही है। अपि च यह शास्त्र का सारतत्व है। खेल-खेल में समझने के योग्य तथा सुन्दर पदों वाला एवं रमणीय प्रश्नों वाला है, और विद्वानों की सभा में इसके अध्ययन से पाण्डित्व पूर्ण उक्ति व्यक्त होती है। यह भास्कराचार्य अपने ही गोल की प्रशंसा ऐसे कर रहे हैं मानों कोई अन्य व्यक्ति कर रहा हो।

इस गोलाध्याय में गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय, भुवन कोश, मध्य गतिवासना, छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, त्रिप्रश्न वासना, ग्रहण वासना, दृक्कर्मवासना, यन्त्राध्याय, प्रश्नाध्याय, ज्योत्पत्ति, कुल एकादश प्रकरणों का विवेचन है।

सिद्धान्त शिरोमणि (लीलावती, बीजगणित, गणिताध्याय, गोलाध्या) के अतिरिक्त करण कुतूहल, सर्वतोभद्रयन्त्रम्, वशिष्ठतुल्यम् का निर्माण भी भास्कराचार्य ने किया है इनका विस्तृत विवरण चतुर्थ प्रकरण में दिया जायेगा।

४-भास्करीय ग्रन्थों का वैशिष्ट्यः —

भास्कराचार्य के ग्रन्थों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सिद्धान्त ज्योतिष के अध्ययनाध्यापन क्रम में इन ग्रन्थों के आ जाने पर उनसे परवर्ती सभी ग्रन्थों का अध्ययनाध्यापन शिथिल पड़ गया। दूसरी बात ज्योतिष के विषयों को इस क्रम से रक्खा गया है कि पढ़ने वालों को अति सुगमता से बोधगम्य हो जाय। प्राचीन समय में अध्ययन की प्रणाली रही है कि पहले ग्रन्थ कण्ठस्थ कराये जाते थे और बाद में ग्रन्थ के सूत्रों के अनुसार छात्रों को उदाहरण समझाये जाते थे। इस प्रकार अध्ययन पूरा होने के पश्चात् छात्र सूत्रों की उपपत्ति समझता था। किन्तु भास्कराचार्य के ग्रन्थों में यह विशेषता है कि सूत्रों का स्वरूप स्वयं ही उपपत्ति बताने में समर्थ है। जो कुछ उपपत्तियाँ शेष रह जाती हैं उसको गुरु पूर्ण कर देता है। पहले हम हिन्दी अंक साधना की विशेषताओं को बतला कर के तब भास्करीय सूत्रों की सुगमता को बतलायेंगे। क्योंकि गणित के वर्ग धन आदि सूत्रों की उपलब्धियाँ भारतीय अंको के स्थान मान सिद्धान्त के ऊपर अवलम्बित है।

स्थानमानसिद्धान्त—संसार में पहले सर्वत्र संख्याओं को व्यक्त करने के लिए अक्षर संकेतों से काम लिया जाता था। उसका उपयोग आज भी हम घड़ी के अंकों में और इंगलिश अक्षरों के अंकसंकेतों में पाते हैं। जैसे उन्नीस लिखने के लिए ।xx तथा २१ लिखने के लिए xx। तथा २५ के लिए xxv का प्रयोग करते हैं ऐसे ही ५०, १००, २००, आदि अंकों के लिए भी सांकेतिक चिन्ह निर्धारित किए गये थे, जिनसे व्यवहार प्रवर्तन होता था। स्पष्ट है कि इन सांकेतिक चिन्हों के द्वारा संख्याओं की जोड़, घटाना, गुणाभजन वर्ग वर्गमूल धन धनमूल आदि क्रियायें नहीं की जा सकतीं। रेखा गणित का प्रसिद्ध विद्वान युक्लिड पैथागोरस आदि भी संख्याओं के वर्ग वर्गमूल आदि क्रियाओं से अनभिज्ञ थे। भले ही रेखा गणित की युक्तियों से वे दो रेखाओं के योग अन्तर के वर्ग तथा वर्गान्तर आदि को सही-सही उपलब्धियाँ वे कर चुके थे। जैसा उनके रेखा गणित से सिद्ध किया गया है। यह भारतीय मनीषा की विशेषता है कि संख्याओं के ९ चिन्ह और शून्य (०) के द्वारा दशगुणोत्तर पद्धति का आविष्कार कर स्थान मान के सिद्धान्त का अनुसन्धान किया। दशगुणोत्तर पद्धति हमारे यजुर्वेद के ही **'एका च मे दश च मे, शतञ्च मे'** इत्यादि मन्त्र में वर्णित है। इस प्रणाली से प्राचीन अंक लेखन को भारभूत प्रणाली हट गई और संसार ने इसे शीघ्रातिशीघ्र अपना लिया। प्रणाली का स्वरूप निम्न लिखित है :—

$१, १ \times १० = १०$। $१ \times १० \times १० = १००$। $१ \times १० \times १० \times १० = १०००$। $१ \times १० \times १० \times १० \times १० = १००००$, अर्थात् १, १०, १००, १०००, १०००० इत्यादि। इसमें प्रथम में १ इकाई के स्थान पर दूसरे में दशगुणित तथा तीसरे में शत गुणित चौथे में सहस्र गुणित इत्यादि है। ऐसे ही २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, आदि के भी दश गुणित २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८० आदि होंगे। इनको भी हम उपर्युक्त संख्याओं में दशगुणोत्तर या दशगुणोन स्थानों में रख करके २००, २०००, २०००० अथवा ·२ ·०२, ·००२ आदि रूपों में रख सकते हैं। इस प्रकार यदि हमें १२५ लिखना हो तो शतस्थान में १, दश स्थान में २ तथा इकाई स्थान में ५ रखकर १२५ लिखेंगे। इसको ही यदि हम इंगलिश संकेतों में लिखें तो xxxxxxxxxxxxv ये होगा, अथवा १०० के लिए L मानकर Lxxv ऐसे लिखेंगे। सिद्ध है कि इस भारभूत प्रणाली से छुटकारा दिलाने वाली हमारी दशगुणोत्तर स्थान मान वाली पद्धति संसार को भारत का ऋणी बनाने के लिए सक्षम है।

इसी स्थानमान सिद्धान्त के आधार पर संख्याओं के योग वियोग गुणन भजन वर्ग वर्गमूल घन घनमूल आदि क्रियायें की जाती हैं। इनमें वर्ग वर्गमूल तथा घन घनमूल वीजगणितीय नियमों और दश गुणोत्तर स्थानमान प्रणाली के नियम से सूत्र रूप में व्यक्त किए गये हैं। जैसे :—

$$(य + क)^२ = य^२ + २यक + क^२$$
$$(१० + २)^२ = १०^२ + २ \times १० \times २ + २^२$$
$$= १०० + ४० + ४ = १४४$$

इसलिए :—

स्थाप्योन्तवर्गः द्विगुणान्त्य निध्ना इत्यादि के अनुसार $१२^२ = \frac{१^२ + १ \times २ \times २ + २^२}{१२} = १४४$

$(१० + २)^२ = १^२ (२ \times २) २^२ = १४४$

$१०^२ \qquad = १००$

$१ \times २ \times २ \times १० \qquad = ४०$

$२^२ \qquad = ४$

$= १४४$

एवम्—

स्थाप्यो घनोऽन्त्यस्य ततोऽन्त्यवर्गः....... इत्यादि, इसमें

$(य + क)^३ = य^३ + ३य^२ + क + ३ य क^२ + क^३$

१२ का घन

$(१० + २)^३ = १०^३ + (३ \times १०^२ \times २ + ३ \times १० \times २^२ + २^३$

$= १००० + ६०० + १२० + ८ \quad = \quad १०००$

६००

$= १७२८ \qquad १२०$

$= \frac{८}{१७२८}$

इत्यादि

$$१२^३ = \frac{१^३ + १^२ \times २ \times ३ + २^२ \times ३ \times १ + २^३}{१२} = १७२८$$

$$१२^३ \quad = १६००$$
$$१२०$$
$$\frac{८}{१७२८}$$

इस प्रकार अंकों के (संकलन व्यवकलनादि) आठ परिकर्मों की क्रियायें भी संख्याओं के स्थानमान सिद्धान्त से ही सम्बद्ध हैं। भास्कराचार्य तथा उनके पूर्ववर्ती आचार्य श्रीधर, श्रीपति, महावीर आदि ने भी इन परिकर्मों का इसी रूप में वर्णन किया है। भास्कराचार्य की विशेषता शून्य परिकर्माष्टक में व्यक्त देखी जाती है। इनके परवर्ती आचार्यों ने भी शून्य के आठ परिकर्मों का वर्णन किया है किन्तु शून्य से किसी संख्या में भाग देने की प्रक्रिया में गणित संग्रहकार महावीर तक ने अशुद्धि की है और शून्य भक्तराशि को शून्य के ही तुल्य माना है। किन्तु भास्कराचार्य के आदर्श आर्यभट्ट थे जिन्होंने शून्य व्यक्त राशि को खहर की संज्ञा दी है, और उसे अनन्त के तुल्य माना है। भास्कराचार्य ने उनकी पुष्टि करते हुए खहर राशि के विषय में लिखा है कि इस खहर राशि में किसी संख्या के योग वियोग से कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। जैसे सृष्टि और प्रलय काल में अनन्त अच्युत भगवान के विग्रह से अनेक आत्माओं के निकल जाने पर तथा प्रलय काल में फिर अनन्त आत्माओं के समाविष्ट हो जाने पर भी कोई विकार पैदा नहीं होता है।

शून्य को संख्यारूप में कल्पित करना भास्कराचार्य की ही उपलब्धि है इसे पहले बतलाया जा चुका है कि 'खगुणश्चिन्त्यश्च शेष विधौ' अर्थात् किसी संख्या में ० से गुणाकर उसमें उसी का कोई भाग जोड़कर किसी अन्य संख्या से गुणाकर फल में पुनः ० का भाग देने पर जो संख्या होगी वह शून्य न होकर उपयुक्त क्रियाओं से विशिष्ट इष्ट राशि होगी। यहाँ पर शून्य से गुणाकर शून्य से भाग देने की प्रक्रिया में शून्य को एक लघुतम संख्या के रूप में कल्पित किया गया है। इसको आधुनिक गणित की परिभाषा में लुप्त भिन्न का मान कहते हैं। जैसे :—

$\frac{य^२ - क^२}{य - क}$ इस भिन्न में यदि हम य का मान क के तुल्य मानें तो भिन्न का मान शून्य हो जायेगा।

किन्तु वास्तव में $\frac{य^२ - क^२}{य - क} = य + क$ तब यदि य = क तो भिन्न का मान २ क होगा। यहां परः—

$\frac{य^2 - क^2}{य - क}$ = य + क इस भिन्न में अंश और हर दोनों का तात्कालिक सम्बन्ध लेने पर $\frac{२ य}{१}$ अब यदि य = क तो भिन्न का मान = २ क हुआ।

भास्कराचार्य के पूर्व उदाहरण में भी

$$\frac{\left(य \times ० + \frac{य \times ०}{२}\right) \times ३}{०} = \frac{०}{०}\left(\frac{३य}{२} \times ३\right) = ६३$$ भिन्न का मान लुप्त है। किन्तु सीमा गुणक भाजक शून्य कल्प संख्या शून्य हो रही हो तो लुप्तभिन्न का मान उपलब्ध हो जाता है। वस्तुत $\frac{०}{०}$ में यह मान अनिर्णीत है।

क्योंकि $\frac{\frac{अ}{०}}{\frac{क}{०}} = \left(\frac{अ}{०} \div \frac{क}{०}\right) = \left(\frac{अ}{०} \times \frac{०}{क}\right) = \frac{अ \times ०}{क \times ०}$ इसमें $\frac{अ}{०}$ और $\frac{क}{०}$ इन दोनों के मान में समता नहीं हो सकती। किन्तु उतने प्राचीन समय में सीमा मान की कल्पना भास्कराचार्य के गणितविषयक सूक्ष्मदृष्टि का ही परिचायक है। जब कि इस रूप में लेब्निज और न्यूटन से पहले इसके स्वरूप का निर्णय नहीं हो सका था और शून्य भक्तराशि को शून्य ही माना गया था।

'हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास पृष्ठ २२८' पर देखें इसका विस्तृत स्वरूप :—ले० डॉ० विभूतिभूषणदत्त डॉ० अवधेश नारायण सिंह, अनुवादक डा० कृपाशंकर शुक्ल प्रथम संस्करण।

परमाल्पराशि के रूप में शून्य

ध्यान देने योग्य है कि परिकर्म य ÷ ० और परिकर्म ० ÷ य के फलों को ब्रह्मगुप्त क्रमानुसार $\frac{य}{०}$ और $\frac{०}{य}$ की भाँति लिखने को कहते हैं। निश्चित रूप से कहना कठिन है कि इन स्वरूपों से उनका क्या तात्पर्य था। संभव है कि चल राशि 'य' का मान न ज्ञात होने से उन्होंने इन स्वरूपों का निश्चित मान निर्धारित नहीं किया। फिर भी प्रतीत होता है कि उन्होंने शून्य को ऐसी परमाल्प संख्या के रूप में माना जो कि अन्ततोगत्वा शून्य में विलीन हो जाती है। यदि यह अनुमान सत्य हो तो ब्रह्मगुप्त ने उक्त कथन करके उचित ही किया।

परमाल्प संख्या के रूप में शून्य की कल्पना भास्कर द्वितीय के ग्रन्थों में अधिक स्पष्ट है। वे कहते हैं "किसी संख्या को शून्य से गुणा करने पर गुणन फल शून्य होता है परन्तु बाद में यदि और परिकर्म करने हैं तो (गुणन फल को शून्य न लेकर) शून्य को गुणक की तरह रखना चाहिए" उन्होंने आगे कहा है कि यह परिकर्म ज्योतिष की गणना में अत्यन्त महत्व का है। कलन के अध्याय में दिखाया जायगा कि भास्कर द्वितीय ने ऐसी राशियों को वस्तुतः किया है जो अन्ततोगत्वा शून्य हो जाती हैं; कुछ फलनों के अवकल गुणकों का मान निकालने में भी वे सफल हुए हैं। उन्होंने फलन फ (य) के अवकल-गुणक फ (य) δ (य) का भी प्रयोग किया है। जो कि 'य' में δ (य) के तुल्य क्षय वृद्धि होने से होता है।

टीकाकार कृष्ण ने

$$० \times अ = ० = अ \times ०$$

को इस प्रकार से सिद्ध किया है :—

"जैसे जैसे गुण्य कम किया जायगा, वैसे वैसे गुणन फल भी कम होता जायगा ...। यदि गुण्य को परमाल्प कर दिया जाय, तो गुणन फल भी परमाल्प हो जायगा। परन्तु परमाल्प होने का अर्थ शून्य होता है, अतएव यदि गुण्य शून्य हो, तो गुणन फल भी शून्य होगा । इसी प्रकार जैसे जैसे गुणक कम किया जायेगा, वैसे वैसे गुणन फल भी कम होता जायगा; और गुणक के शून्य हो जाने पर गुणन फल भी शून्य हो जायगा।"

उपर्युक्त अवतरण में शून्य को अवरोही राशि की सीमा के रूप में कल्पित किया गया है।

अनन्त

किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर जो लब्धि मिलती है, उसे भास्कर द्वितीय ने 'ख हर' कहा है, जो कि ब्रह्मगुप्त के' 'खच्छेद' ('वह राशि जिसका हर शून्य है') का पर्यायवाचक है। ख हर के मान के विषय में भास्कर द्वितीय कहते हैं।

"जिस प्रकार अनन्त और अच्युत ईश्वर में, प्रलय के समय बहुत से भूतगणों का प्रवेश होने से अथवा सृष्टि के समय उनके निकल जाने से कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार इस शून्य हर वाली (ख-हर) राशि में बहुत (बड़ी संख्या को) भी जोड़ने अथवा घटाने पर कोई परिवर्तन नहीं होता"।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि भास्कर द्वितीय को ज्ञात था कि—

$$\frac{\text{अ}}{0} = \infty \text{ और } \infty + \text{क} = \infty$$

गणेश दैवज्ञ के अनुसार ख-हर राशि $\frac{\text{अ}}{0}$ अनिर्णीत और निःसीम अर्थात् अनन्त है; क्योंकि "यह नहीं कहा जा सकता कि यह कितनी बड़ी है। यदि इस राशि में कोई परिमित संख्या जोड़ या घटा दी जाय तो इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। कारण यह है कि (जोड़ने या घटाने में) उनका समच्छेद करने के लिए एक दूसरे के हर से गुणा करने पर नियत राशि शून्य हो जाती है, और उस शून्य को ख-हर में जोड़ने या घटाने पर उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता।"

कृष्णदैवज्ञ लिखते हैं—

"जैसे—जैसे भाजक घटता जाता है, वैसे-वैसे लब्धि बढ़ती जाती है यदि भाजक परमाल्प हो जाय तो लब्धि परमाधिक हो जायगी। परन्तु यदि यह कहा जा सके कि लब्धि इतनी है तो वह परमाधिक नहीं है, क्योंकि उससे भी बड़ी संख्या होना सम्भव है। लब्धि का इयत्ताभाव (इतनी होने का अभाव) ही उसका परमत्व है। अतएव सिद्ध हुआ कि शून्य हर वाली राशि अनन्त है।"

$\frac{\text{अ}}{0} + \text{क} = \frac{\text{अ}}{0}$ की उपपत्ति के सम्बन्ध में कृष्ण दैवज्ञ का यही कथन है जो गणेश दैवज्ञ ने किया है। परन्तु उनसे एक पग आगे बढ़ गये हैं, क्योंकि वे लिखते हैं कि

$$\frac{\text{अ}}{0} = \frac{\text{ब}}{0}$$

इस कथन की पुष्टि में उन्होंने सूर्योदय और सूर्यास्त काल की अनन्त छाया का दृष्टांत दिया है, जो कि सदैव अनन्त रहती है चाहे शंकु की ऊँचाई और त्रिज्या की लम्बाई का मान कितना ही बड़ा क्यों न

लिया जाय। "..... उदहरणार्थ, यदि त्रिज्या = १२० ली जाय और शंकु की ऊँचाई = १, २, ३, या ४ ली जाय तो त्रैराशिक करने पर कि 'यदि महाशंकु में महाच्छाया मिलती है तो शंकु में क्या मिलेगा छाया का मान क्रमशः $\frac{१२०}{०}$, $\frac{२४०}{०}$, $\frac{३६०}{०}$ अथवा $\frac{४८०}{०}$ मिलता है। अथवा यदि शंकु का प्रचलित मान अर्थात् १२ अंगुल, लिया जाय और त्रिज्या को ३४३८, १२०, १०० अथवा ९० के तुल्य माना जाय तो छाया के मान क्रमशः $\frac{४१२५६}{०}$, $\frac{१४४०}{०}$, $\frac{१२००}{०}$ अथवा $\frac{१०८०}{०}$ प्राप्त होंगे, जो सभी अनन्त हैं।"

अनिर्णीत स्वरूप—

ब्रह्मगुप्त का यह कथन अशुद्ध है कि

$$\frac{०}{०} = ०$$

भास्कर द्वितीय ने ब्रह्मगुप्त को इस अशुद्धि को शुद्ध करने का प्रयत्न किया है। यथा: —

$$\lim_{त \to ०} \frac{अ \times त}{त} = अ।$$

तथापि इसे व्यक्त करने में उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह दोष पूर्ण है, क्योंकि उपयुक्त पारिभाषिक शब्द के अभाव के कारण उन्होंने परमाल्प राशि को शून्य कहा है फिर भी ज्योतिष में इस निष्कर्ष का उन्होंने जो प्रयोग किया है उससे बिल्कुल स्पष्ट है कि शून्य से उनका तात्पर्य उस छोटी राशि से है जिसका सीमान्तिक मान शून्य है। टेलर और बापूदेव शास्त्री का भी यही मत है।

भास्कर द्वितीय ने इस सम्बन्ध में तीन उदाहरण उपस्थित किये हैं :—

मान निकालो—

$$(१) — \frac{३\left(य \times ० + \frac{य \times ०}{२}\right)}{०} = ६३$$

इस समीकरण का हल य = १४ दिया गया है, जो कि उस परिस्थिति में शुद्ध होगा, जब कि हम ० को ऐसी छोटी संख्या कल्पना करें जिसकी सीमा ० हो।

$$(२) — \left\{\left(\frac{य}{०} + य - ९\right)^२ + \left(\frac{य}{०} + य - ९\right)\right\} \times ० = ९०$$

जिसका हल य = ९ दिया गया है।

$$(३) — \left[\left\{\left(य + \frac{य}{२}\right) \times ०\right\}^२ + २\left\{\left(य + \frac{य}{२}\right) \times ०\right\}\right] \div ० = १५$$

जिसका हल य = २ दिया गया है।

भास्कर द्वितीय का कथन है कि

$$\frac{अ}{०} \times ० = अ$$

बिल्कुल शुद्ध नहीं है, क्योंकि यह स्वरूप वस्तुतः अनिर्णीत है और इसका मान सदैव अ नहीं होगा। परन्तु तो भी इतने प्राचीन काल में ० को एक अर्थ देने का उनका प्रयत्न तथा इस प्रश्न का उनका आंशिक हल अत्यन्त सराहनीय है जबकि हम देखते हैं कि यूरोप के गणितज्ञों ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल तक इस प्रकार की अशुद्धियाँ की हैं।

आचार्य श्री पं० श्री चन्द्र पाण्डेय जी की **'स्वगुणश्चिन्त्यश्चशेषविधौ'** पर अपनी उक्ति इस प्रकार है।

डॉ० अवधेश नारायण सिंह तथा डॉ० विभूति भूषण दत्त ने भास्कराचार्य के $\frac{०}{०}$ सम्बन्धि तीन उदाहरणों को देकर यह लिखा है कि $\frac{०}{०}$ का मान अनिर्णीत होने से $\frac{अ}{०} \times ० = अ$ बिल्कुल शुद्ध नहीं है। किन्तु भास्कराचार्य ने इसको शेष विधिनाम दिया है। जिसका तात्पर्य है, कि राशि का कोइ भाग उसमें जुटा या घटा हुआ हो तव ऐसे उदाहरणों में $\frac{अ}{०} \times ० = अ$ ऐसी स्थिति नहीं रह जाती। किन्तु भास्कराचार्य के ये उदाहरण भारतीय गणित शास्त्र के इतिहास में उज्वल पृष्ठ के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। क्योंकि यहाँ $\frac{०}{०}$ का मान सीमा मान के रूप में गृहीत होने पर लुप्त भिन्न के मान के रूप में भास्करीय उदाहरण परिणत हो जाते हैं। जैसे– $\dfrac{\frac{०}{०}\left(य+\frac{य}{२}\right) \times ३}{०} = ६३ = \frac{९य}{२} \times \frac{०}{०} = ६३$ इस समीकरण में हम देखते हैं कि अंश और हर में शून्य का गुणक होने से भिन्न का मान शून्य हो जाता है, किन्तु यदि हम शून्य के वदले य—१४ गृहीत करें (अंश हर दोनों में) तो भिन्न का स्वरूप यह होगा। $\frac{९य^२ - १२६य}{२य—२८}$ इसमें यदि य = १४ तो भिन्न का मान ० शून्य होगा। य चल राशि है। इसका कोई भी मान माना जा सकता है इसलिए यदि :—

$$य = १४ \text{ तो}$$
$$(य—१४) = \infty$$

इसलिए भिन्न के अंश हर में (य—१४ का) का भाग देकर $\frac{९य}{२}$ इस लब्धि में य को १४ तुल्य मानें तो आचार्य के इस उदाहरण का मान ६३ आ जायेगा। अतएव हम लुप्तभिन्न का मान लाने के प्रकार से चलन कलन के प्रकार से इसका मान लाते हैं :—

$\frac{९य^२—१२६ य}{२य—२८}$ इस समीकरण में अंश हर दोनों का तात्कालिक सम्वन्ध लेने पर $\frac{१८ य - १२६}{२}$ होता है $= ९ य—६३$ इसमें य = १४ मानने पर भिन्न का मान् १२६–६३ हुआ है। इसी प्रकार उनके शेष दोनों उदाहरणों को भी किया जा सकता है जो विस्तार भय से यहाँ नहीं किया जा रहा है।

इससे सिद्ध है कि भास्कराचार्य 'ख गुणश्चिन्त्यश्च शेषविधौ' इसमें शून्य का अर्थ उस छोटी संख्या से लेते हैं जो शून्य के निकट हो।

आचार्य ब्रह्मगुप्त ने अनिर्णीत समीकरण के सम्बन्ध में वर्ग प्रकृति नाम के एक अन्य अनिर्धारित समीकरण का आविष्कार किया। इसके पहले कुट्टक नामक अनिर्धारित समीकरण आर्यभट्ट से पहले से चला

आया था, जिसका उन्होंने विशदवर्णन किया है। तथा ग्रहगति के विषय में भी इसका उपयोग किया है। भास्कराचार्य ने आचार्य ब्रह्मगुप्त की वर्गप्रकृति को अपने अंक तथा बीजगणित दोनों में व्यवहृत किया है। अंकगणित में उनका प्रश्न इस प्रकार है; कि जिन दो राशियों का वर्गयोग और वर्गान्तर से, एक घटा देने पर वर्गमूल प्रद हो जाता है उन दोनों राशियों को बतलाओ। इसका समाधान करते हुए इन्होंने दो नियमों को बतलाया है। यथा :—

इष्टकृतिरष्टगुणिता व्येका दलिता विभाजितेष्टेन।
एकः स्यादस्य कृतिर्दलिता सैकाऽपरो राशिः॥ २॥
रूपं द्विगुणेष्टहृतं सेष्टं प्रथमोऽथवाऽपरो रूपम्।
कृतियुतिवियुतीव्येके वर्गौस्यातां ययोः राश्योः॥ ३॥

अर्थात्—इष्ट के वर्ग को ८ से गुणा करके उसमें १ घटाकर उसे आधाकर फल में इष्ट का भाग देने पर एक राशि होती है, और इस राशि के वर्ग को आधा करके उसमें एक जोड़ने पर द्वितीय राशि होती है। तथा रूप को द्विगुणित इष्ट से भाग दें, एवं उसमें इष्ट को जोड़ दें तो प्रथम राशि होती है। और दूसरी राशि १ होती है। जिन दो राशियों के वर्गान्तर और वर्ग योग में एक घटा देने पर फल मूल-प्रद हो जाता है। उदाहरण :—

राश्योर्ययो कृतिवियोगयुतीनिरेके मूलप्रदे प्रवदतौ ममभित्र? यत्र।
क्लिश्यन्ति बीजगणिते पटवोऽपि मूढाः षोढोक्तबीजगणितं परिभावयन्तः॥ १॥

अत्रोपपत्तिः—कल्पित राशि = या, का द्वितीय आलाप से या^{2} − का^{2} − १ इसके मूल प्रद होने से 'स रूप के वर्ण कृती तु यत्र तत्रच्छयैकां प्रकृतिं प्रकल्प्येत्यादि, से तथा 'इष्ट भक्तोद्विधा क्षेप इत्यादि से—१ इष्ट कल्पना कर कनिष्ठ मान = $\frac{\text{का}^2 + २}{२}$ यहाँ पर प्रकृति वर्ण का यावत्तावत् मान = $\frac{\text{का}^2 + २}{२}$ उत्थापन देने पर $\frac{\text{का}^2 + २}{२}$ का पुनः प्रथम आलाप से $\frac{\text{का}^4}{४} + २\,\text{का}^2$ यह किसी भी वर्ग के समान होगा। अतः इसका 'द्वितीय पक्षे सति सम्भवे इत्यादि' से कालक वर्ग द्वारा अपवर्तित कर 'इष्ट भक्तोद्विधाक्षेप इत्यादि से मूल लाते हैं।

इष्ट = ४ इ अतः कनिष्ठ मान = $४\text{इ} - \frac{२}{४\text{इ}} = ४\,\text{इ} - \frac{१}{२\text{इ}} = \frac{८\,\text{इ}^2 - १}{२\,\text{इ}}$ यही कालक मान $= \frac{८\,\text{इ}^2 - १}{२\,\text{इ}}$ प्रथम राशि होगी। द्वितीय $= \frac{\text{का}^2}{२} + १$ इस प्रकार प्रथम रीति उपपन्न होगी। पुनः—

राशि या, १ इसमें प्रथम आलाप स्वयं घटित होता है। द्वितीय आलाप द्वारा या^{2} − २ इसके मूल द्वारा उपपन्न होगा। यहाँ भी 'इष्ट भक्तो द्विधाक्षेप = कनिष्ठमान $= \frac{२\,\text{इ}^2 + १}{२\,\text{इ}} = \frac{१}{२\text{इ}} + \text{इ}$ यही यावत् तावत का मान होगा। उत्थापना द्वारा $\frac{१}{२\text{इ}} + \text{इ}$, १ इस प्रकार आचार्य भास्कर की उपपत्ति सिद्ध होती है।

यहाँ पर इ = −इ मान लें तो कनिष्ठ $= \frac{१}{२}\left\{ \frac{२}{\text{इ}} + \text{इ} \right\}$ यह यावत् तावत् मान होगा।

भास्कराचार्य का पाटीगणित में दूसरा विनियोग बीज गणित के वर्ग समीकरण सम्बन्धी प्रश्नों का समाधान है। इनके पहले किसी भी आचार्य ने अंकगणित में इन विधियों का उपयोग नहीं किया है। सूत्र यह है—

गुणघ्नमूलोन युतस्यराशेर्द्दष्टस्य युक्तस्य गुणार्धकृत्या।
मूलं गुणार्धेनयुतं विहीनं वर्गीकृतं प्रष्टुरभीष्टराशिः॥ ५॥
यदालवंश्चोन युतः स राशिरेकेन भागोन युतेन भक्ता।
दृश्यं तथा मूलगुणं च ताभ्यां साध्यस्ततः प्रोक्तवदेवराशिः॥ ६॥

अर्थात्—ऐसी वर्ग राशि में जिसमें उसका वर्गमूल किसी गुण से गुणित होकर घटा या जुटा हो वर्ग राशि प्राप्त करने का नियम लिखते हैं। गुणघ्नमूलोन-इत्यादि इसमें वर्गमूल के गुणक को मूलगुणक, तथा वर्गराशि में मूलगुणक से गुणित मूल को घटाने या जोड़ने पर जो राशि उपलब्ध होती है उसको दृश्य कहा गया है। अर्थात्-गुण से गुणित वर्गमूल से युत अथवा ऊन वर्गराशि के दृश्य को गुणार्ध के वर्ग से युक्त करके उसका वर्गमूल लेकर उसमें गुणार्ध को जोड़ अथवा घटाकर वर्ग करने से पूछने वाले की अभीष्ठ राशि प्राप्त होती है॥ ५॥

यदि वह वर्गराशि अपने किसी अंश से ऊन अथवा युत हो तो उस अंश को १ में घटा अथवा जोड़कर उससे दृश्य और मूल गुणक दोनों में भाग देकर पूर्ववत क्रिया करने से राशि उपलब्ध होती है॥६॥

उदाहरणः—

वाले ? मरालकुलमूलदलानि सप्त तीरे विलासभरमन्थरगाण्यपश्यम्।
कुर्वच्च केलिकलहंकलहंसयुग्मं शेषं जले वद मरालकुलप्रमाणम्॥

अर्थात् हे वाले हंस समूहों के मूल का $\frac{७}{२}$ भाग किनारे पर विलास के श्रम से धीरे धीरे चलते हुए देखा गया। तथा केलि क्रीड़ा में मग्न दो हंस जल में रह गये तो कुल हंसों की संख्या क्या होगी बतलाओ।

यहाँ मूलगुणक $\frac{७}{२}$। दृश्य = २

मूल गुणक $\frac{७}{२}$ का आधा $\frac{७}{४}$ इसका वर्ग हुआ $\frac{४६}{१६}$ इसको दृश्य २ में जोड़ दिया तो $२ + \frac{४९}{१६} = \frac{८१}{१६}$ इसका वर्ग मूल हुआ $\frac{९}{४}$ इसमें गुणार्द्ध $\frac{७}{४}$ को जोड़ा तो $\frac{१६}{४} = ४$ हुआ। वर्ग किया $= ४ \times ४ = १६$ यही हंसों की कुल संख्या हुई।

द्वितीय उदाहरण :—

अलिकुलदलमूलं मालतीं यातमष्टौ
निखिलनवमभागाश्चालिनी मृङ्गमेकम्।
निशि परिमललुब्धं पद्ममध्ये निरुद्धं
प्रतिरणति रणन्तं ब्रूहि कान्तेऽलिसंख्याम्॥ ५॥

यहाँ भाग $\frac{८}{९}$। मूल गुणक $= \frac{१}{२}$। दृश्य = १ हुआ

यहाँ पर राशि अपने $\frac{८}{९}$ भाग से युत है इसलिए $१ - \frac{८}{९} = \frac{१}{९}$। $\frac{१}{२} \div \frac{१}{९} = \frac{९}{२}$। $१ \div ९ = ९$

$\frac{९}{२}$ का आधा $\frac{९}{४}$ इसका वर्ग किया $\frac{८१}{१६}$ इसमें ९ जोड़ दिया तो $९ + \frac{८१}{१६} = \frac{२२५}{१६}$ इसका वर्गमूल $= \frac{१५}{४}$ इसमें $\frac{९}{४}$ जोड़ने पर $\frac{१५}{४} + \frac{९}{४} = \frac{२४}{४} = ६$ इसका वर्ग = ३६ दूना किया ७२॥

इसकी उपपत्ति नीचे लिखे अनुसार समझने में सुगम है :—

$या^2 \pm गु. या = दृ$ यहाँ वर्ग पूर्ति से

$$या^2 \pm गु.\ या + \left(\frac{गु}{२}\right)^२ = दृ + \left(\frac{गु.}{२}\right)^२$$

मूल ग्रहण करने पर $या \pm \frac{गु.}{२} = \sqrt{दृ + \left(\frac{गु.}{२}\right)^२} =$ मूल

$\therefore या = मूल \pm \frac{गु.}{२}$ इसका वर्ग पूर्वराशि होगी।

$$यदि\ च\ दृ = या^2 \pm \frac{अ}{क} या^2 \pm गु.\ या$$

$$अथवा\ दृ = या^2 \left\{ १ \pm \frac{अ}{क} \right\} \pm गु.\ या$$

$$\therefore \frac{दृ}{१ \pm \frac{अ}{क}} = या^2 \pm \frac{गु.}{१ \pm \frac{अ}{क}} .\ या$$

$$\therefore \frac{दृ}{१ \pm \frac{अ}{क}} = दृ' \quad \frac{गु.}{१ \pm \frac{अ}{क}} = गु'$$

$\therefore दृ' = या^2 \pm गु'.\ या.$ इससे पूर्वोक्त राशि मान सुगम होगा।

२— कल्पना किया $\frac{रा}{अ} = या^२$

$$अ.\ या^२ \pm अ.\ या^2 \frac{१}{भा} \pm गु.\ या = दृ$$

$$\therefore या^2 \left\{ १ \pm \frac{१}{भा} \right\} \pm \frac{गु.}{अ} या = \frac{दृ}{अ}$$

$$\therefore या^2 \left\{ १ \pm \frac{१}{भा} \right\} \pm गु'.\ या = दृ'$$

इससे भास्करोक्त यावत् तावत का मान लाकर अ इससे गुणा कर राशि मान होगा।

इस प्रकार जो प्रश्न अव्यक्त कल्पना द्वारा हल किए जा सकते हैं उन्हें अंक गणित की सुगमरीति से भास्कराचार्य ने कर दिखाया।

भास्कराचार्य ने बीजगणित में वर्ग समीकरण के जो उदाहरण दिये हैं प्रायः उन सभो को लीलावती के इस गुण कर्म प्रकरण में देकर अंक गणित के द्वारा उसका समाधान किया है। पढ़ने वाले छात्रों को

विना उपपत्ति ज्ञान के ये उदाहरण पहले दुरूह प्रतीत होते हैं किन्तु जब ये वीजगणित में पढ़ते हैं और उपपत्ति समझ लेते हैं तो उन्हें अपार आनन्द होता है। भारतीय परम्परा ऐसी ही रही है कि पहले विना उपपत्ति समझे सूत्र याद कराया करते थे और उनके उदाहरण समझा दिए जाते थे, जिससे ये सूत्र जीवन पर्यन्त भूलते नहीं थे। इसलिए भास्कराचार्य के मूल गुणक सम्बन्धी सूत्र भी इसो परम्परा में आते हैं।

त्रैराशिक :—

भारतीय गणितज्ञों ने त्रैराशिक अंकगणित के द्वारा गणित के सभी विधाओं के लिए प्रशस्तमार्ग किया है। भास्कराचार्य इस त्रैराशिक की प्रशंसा करते हुए थकते नहीं। उनका कहना है, कि जिस प्रकार से भगवान् के अनन्तरूपों के द्वारा यह संसार व्याप्त है, उसी प्रकार त्रैराशिक से ही यह सभी गणित व्याप्त है, और गुणन भजन इत्यादि क्रियाओं के द्वारा बीजगणित अथवा अंकगणित में कहा गया है :—कि सब त्रैराशिक है निर्बल बुद्धि वाले भी इसको समझ सकते हैं :—

यत् किंजिद्गुण भाग हार विधिना

बीजोऽत्र वा कथ्यते.................... ॥

दूसरा : प्रश्नाध्याय (सि० शि० गोलाध्याय)

वर्गं वर्गपदं घनं घनपदं संत्यज्य यद्गण्यते
तत् त्रैराशिकमेव भेदबहुलं नान्यत् ततोविद्यते।
एतद्यद्बहुधा स्मदादि जड़धी धीवृद्धिबुद्धया बुधै-
र्विद्वच्चक्रचकोरचारुमतिभिः पाटीति तन्निर्मितम् ॥ ४ ॥

वर्ग वर्गमूल घन घनमूल इसको छोड़कर जो भी गणना की जाती है सब त्रैराशिक ही है जिसके अनेक भेद हैं। इससे भिन्न कोई चीज नहीं है। ये अनेक प्रकार के भेद हम जैसे मन्दबुद्धि वालों की बुद्धि वर्धन के लिए बुद्धिमानों ने किया है वह सब पाटीगणित ही है।

त्रैराशिक विधि में भास्कराचार्य ने उन्हीं प्रकारों को अपनाया है जो आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त श्रीपति आदि ने प्रस्तुत किया है। नियम यह है।

प्रमाणमिच्छा च समान जातो.......इत्यादि।

यदि प्र = प्रमाण
'ई' = इच्छा
'फ' = फल

यदि 'प्र' में 'फ' मिलता है।
तो 'इ' में क्या मिलेगा ?

हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास प्र० सं० पृ० १९३ में लिखते हैं कि त्रैराशिक शब्द ईसवीय सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों से देखने में आता है। इसका प्रयोग बक्षाली हस्त लिपि (स्थानांग सूत्र 'ल ३०० ई० पृ० ९ में विषयों की गणना करने में राशि शब्द का प्रयोग आया है।) आर्यभटीय तथा गणित के अन्य सभी ग्रन्थों में मिलता है। त्रैराशिक शब्द का अर्थ है 'तीन राशियाँ' अर्थात् तीन राशियों से सम्बन्ध रखने वाला नियम'। इस शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भास्कर प्रथम ने कहा है (अपने आर्यभटीय भाष्य में) "क्योंकि इसमें (न्यास और करण के लिए) तीन राशियों की आवश्यकता पड़ती है, अत एव यह नियम त्रैराशिक ('तीन राशियों का नियम') कहलाता है।

व्यस्तत्रैराशिकः—में भास्कराचार्य ने कुछ इसके विषयों को गिनाया है। वे लिखते हैं।

> **इच्छा वृद्धौ फले ह्रासो ह्रासे वृद्धि फलस्य तु।**
> **व्यतं त्रैराशिकं तत्र ज्ञेयं गणित कोविदैः॥ २॥**
> **जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हैमने।**
> **भागहारे च राशीनां व्यस्तं त्रैराशिकं भवेत्॥ ३॥**

अर्थात् जीवों के वय के मूल्य में तथा उत्तम के साथ अधम मूल्य वाले-सोने के तौल में तथा राशियों के भागहार में व्यस्त त्रैराशिक होता है। इसमें जीवों के वय के मूल्य में व्यस्तत्रैराशिक का नियम सर्वथा लागू नहीं होता और कार्य के प्रश्नों में सर्वथा लागू है जिसको भास्कराचार्य ने छोड़ दिया है। जैसेः—

२५ आदमी १ काम को ४ दिन में करते हैं।

तो १ आदमी " २५ × ४=१०० दिन में करेगा।

यदि भास्कराचार्य के कथनानुसार १६ वर्ष की स्त्री का मूल्य ३२ रू० हो तो १ वर्ष की स्त्री का मूल्य ३२ × १६ = ५१२ रु. होगा जो व्यावहारिक सत्य नहीं है।

श्रीधराचार्य ने भी जीवों के वये के मूल्य में व्यस्तत्रैराशिक माना है और भास्कराचार्य ने उन्हीं का समर्थन किया है। मानवों के व्यवहार में सर्वत्र त्रैराशिक का व्यवहार होता है। इसीलिए भास्कराचार्य ने इसको विष्णु के समान व्यापक माना है। ('त्रैराशिकेनैव समस्तमेतद् व्याप्तं यथैतद् हरिणेव विश्वम्) ऐसे ही पंचराशिक में दो त्रैराशिक, सप्तराशिक में ३ त्रैराशिक नवराशिक में चार त्रैराशिक आदि होते हैं। इस बात का उल्लेख पूर्वाचार्यों ने किया है, किन्तु भास्कराचार्य ने इसका उल्लेख न करते हुए भी इन गणितों को प्रदर्शित किया है।

मिश्र व्यवहार—के अन्दर स्वर्ण व्यवहार प्रकरण में कुट्टक के उपयोग द्वारा दो भाव के सुवर्णों को मिलाकर नियत भाव को करने का नियम दिया है। पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में यह नियम उपलब्ध नहीं होता।

> **साध्येनोनोऽनल्पवर्णो विधेयः साध्यो वर्णः स्वल्पवर्णोनितश्च।**
> **इष्टक्षुण्णे शेषके वर्णमाने स्यातां स्वल्पानल्पयोर्वर्णयोस्ते॥ १०॥**

(यदि सुवर्ण की वर्ण संख्या और युति जात वर्ण संख्या ज्ञात हो तथा सुवर्णों के मान अज्ञात हों तो) अधिकवर्ण संख्या में साध्यवर्ण को घटाना और साध्यवर्ण में अल्पवर्ण को घटाना दोनों शेष को किसी तुल्य इष्ट संख्या से गुणाकर देने से क्रम से अल्प और अधिक वर्ण की सुवर्ण संख्या होती है। अर्थात् प्रथम शेष स्वल्पवर्ण का सुवर्ण, और द्वितीय शेष अधिक वर्ण का सुवर्ण समझना। अनेक प्रकार के इष्ट से दोनों शेष को गुणा करने से अनेक प्रकार के सुवर्ण मान हो सकते हैं।

उदाहरणः—

> **हाटकगुटिके षोडश दशवर्णेतद्युतौ सखे जातम्।**
> **द्वादशवर्णसुवर्णं ब्रूहि तयोः स्वर्ण माने में ? ॥ १ ॥**

न्यास। १६ १०। साध्यवर्ण १२। कल्पित इष्ट १ तो सुवर्ण मान $^{१}{}_{२}{}^{६}$ $^{१}{}_{४}{}^{०}$ इसो प्रकार भिन्न इष्ट से भिन्न-भिन्न मान आयेगा।

उपपत्तिः—वर्ण अ, क इनका मान = या. का.

सुवर्ण वर्णाहति योग राशि द्वाराः—

$$\text{युतिजातवर्ण} = \frac{\text{अ या} + \text{क का}}{\text{या} + \text{का}}$$

$$\text{युव} = \frac{\text{अ या} + \text{क का}}{\text{या} + \text{का}} = \text{युव (या} + \text{का)} = \frac{\text{अ या} + \text{क का} \times \text{या} + \text{का}}{\text{या} + \text{का}}$$

$= \text{युव} \times \text{या} + \text{का. युव} = \text{अ या} + \text{क का}$

$= \text{युव} \times \text{या} + \text{युव. का} = \text{अ या} + \text{क का}$

$= \text{युव} \times \text{या} - \text{अ या} = \text{क का} - \text{युव} \times \text{का}$

$= \text{या (युव} - \text{अ)} = \text{का (का} - \text{युव)}$

$$\therefore \quad \text{या} = \frac{\text{का. (युव - क)}}{\text{अ} - \text{युव}}$$

अतः $\frac{\text{या}}{\text{का}} = \frac{\text{युव} - \text{क}}{\text{अ} - \text{युव}}$ सिद्ध हुआ।

इसी नियम को मिश्र व्यवहार के प्रकरण में प्रो० यादवचन्द्र चक्रवर्ती ने भी अपने अंकगणित में लिखा है। पृ. ३१९।

उदाहरण—१

१० रु० प्रतिकिलो ग्राम के भाव की और १५ रु० प्रति किलोग्राम के भाव की चायों को पंसारी किस अनुपात से मिलावे कि वह उस मिली हुई चाय को १२ रु० प्रति किलो ग्राम के भाव से बेंच सके जब यह मिली हुई वस्तु बना ली जाती है और १२ रु० प्रति किलो ग्राम के भाव बेंची जाती है। तब इसमें घटियाचाय के प्रत्येक किलोग्राम पर २ रु० लाभ होता है और बढ़ियाचाय के प्रत्येक किलोग्राम पर ३ रु० ही हानि होती है, इसलिए घटियाचाय के ९ किलोग्राम पर १८ रु० का लाभ होता है और बढ़िया चाय के ६ किलोग्राम पर १८रु० की हानि होती है। इसलिए यह सोच कर कि न लाभ हो न हानि, जब हम ९ किलो ग्राम घटिया चाय लें तब हमको ६ किलोग्राम बढ़ियाचाय लेनी चाहिए। इसलिए '९ हिस्से पीछे ६ हिस्से' का अनुपात होना चाहिए। अर्थात् उन दोनों प्रकार की चायों को दोनों मूल्यों और मध्य-मूल्य के अन्तरों के उलटे अनुपात से मिलाना चाहिए। भास्कराचार्य का सूत्र बीजगणित से उत्पन्न किया है। उसको यादव चन्द्र ने सरल भाषा में समझा दिया।

श्रेढी व्यवहार—इसमें समचय वाली श्रेढ़ियों (सीढ़ियों) तथा विषमचयवाली सीढ़ियों के योग विषयक सूत्र हैं। विषम चयों में भी वर्ग धन आदि श्रेढ़ियों के योग में उत्तरोत्तर घटाने पर अन्तिम श्रेढ़ी शून्य के रूप में परिणत हो जाती है। इसलिए वे भी समचय की श्रेढ़ी कही जा सकती हैं! इन श्रेढ़ी सूत्रों की उपपत्ति वीजगणित से होती है। वास्तव में ये वीजगणित के ही विषय हैं किन्तु भारतीय आचार्यो ने इन्हें अंक गणित में हो लिखा है।

$$(\text{प} + १)\ \frac{\text{प}}{२}$$

१—एकाद्युत्तर श्रेढ़ी का योग $= (\text{पद} + १) \times \frac{\text{पद}}{२}$: संकलित

२—संकलितैक्य $= \frac{(\text{प} + २)}{३} \times \frac{(\text{प} + १)\,\text{प}}{२}$

इसी प्रकार वर्गों का योग तथा घनों का योग के भी सूत्र दिए गये हैं जो वीजगणित के नियमों से उपपन्न होते हैं किन्तु उनमें श्रेढ़ियों के आदि पदों से ही प + $\frac{प}{२}(प-१) + \frac{प}{२ \times ३}(प-१)(प-२)$

$$+ \frac{प(प-१)(प-२)(प-३)}{४}$$

जैसे वर्ग योग के उदाहरण में :—उत्तरोत्तर वर्गों को घटाने पर परम्परा के आदि १, ३, २ होते है

१	४	९	१६	२५
	३	५	७	९
		२	२	२
		०	०	

इनके क्रमशः प, $\frac{प(प-१)}{२}$, $\frac{प(प-१)(प-२)}{२ \times ३}$ से गुणने पर गुण का योग करने पर

$$१ \times प + \frac{३(प-१)प}{२} + \frac{२(प-१)(प-२)प}{६}$$

$$= \frac{६प + ९(प-१)प + १(प-१)(प-२)प}{६}$$

$$= \frac{६प + ९प^२ - ९प + २प^३ - ३प^२ \times २ + २ \times प \times २}{६}$$

$$= \frac{६प + ९प^२ - ९प + २प^३ - ६प^२ + ४प}{६}$$

$$= \frac{२प^३ + ३प^२ + प}{६}$$

$$= \frac{प(२प + ३प + १)}{६} = \frac{प(२प+१)(प+१)}{६}$$

$$= \frac{२प+१}{३} \times \frac{प(प+१)}{२}$$ उपपन्न हुआ ।

परम्परा के आदियों को प, $\frac{(प-१)प}{२}$

$\frac{प(प-१)(प-१)}{१-२-३}$ इत्यादि से गुणने की उपपत्ति भास्कराचार्य के छन्दश्चिति के सूत्रः—

एकाद्येकोत्तरा अङ्का व्यस्ता भाज्याः क्रमस्थितैः ।
परः पूर्वेण संगुण्यस्तत्परस्तेन तेन च ॥

इससे सिद्ध होती है । जैसेः—गायत्री के प्रस्तार में जो ६ अक्षरों का पादों वाला है गुरु लघु के कितने भेद होंगे इसके लिए । $\frac{६}{१}$ । $\frac{५}{२}$ । $\frac{४}{३}$ । $\frac{३}{४}$ । $\frac{२}{५}$ । $\frac{१}{६}$ ।

सूत्र के अनुसार :—

$$\frac{६}{१} = ६ । \frac{५}{२} \times ६ = १५ । \frac{४}{३} \times १५ = २० । \frac{३}{४} \times २० = १५ । \frac{२}{५} \times १५ = ६ । \frac{१}{६} \times ६ = १$$

६ अक्षर के गायत्री छन्द के प्रस्तार में एकादि गुरुओं का भेदः—

$$\frac{६}{१} पद = प = ६, \quad \frac{६ \times ५}{१.२}, \quad \frac{६ \times ५ \times ४}{१.२.३}, \quad \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३}{१.२.३.४}, \quad \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २}{१.२.३.४.५},$$

$$\frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २ \times १}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६}$$

$$\frac{प}{१}, \quad \frac{प(प-१)}{१.२} \quad \frac{प(प-१)(प-२)}{१.२.३}, \quad \frac{प(प-१)(प-२)(प-३)}{१.२.३.४}$$

$$\frac{प(प-१)(प-२)(प-३)(प-४)}{१.२.३.४.५}, \quad \frac{प(प-१)(प-२)(प-३)(प-४)(प-५)}{१.२.३.४.५.६}$$

इत्यादि।

भास्कराचार्य ने छन्दश्चिति के इन उदाहरणों को इसी रीति से समाहित किया है जो उच्चगणित की युक्तियों से सिद्ध हैं। ६ अक्षर वाले गायत्री छन्द में कितने एक गुरु, कितने दो गुरु, कितने ३ गुरु, कितने ४ गुरु, कितने ५ गुरु और कितने ६ गुरु वाले पद होंगे, इसके लिए उपर्युक्त सूत्र को लिखा है और सब भेदों को बतलाने के लिए गणित को गुणोत्तर श्रेढ़ी का व्यवहार किया है। ई० सन् से ३०० वर्ष पूर्व लिखे गये पिङ्गल सूत्र में भी इस गणित का वर्णन है। भास्कराचार्य ने उसको पाटीगणित में लाकर गणित के भण्डार को भरा है। सूत्र का स्वरूप यह होगा। भेद $= \frac{२^{६}-१}{२-१} = \frac{६३}{१} = ६३$, इसके अतिरिक्त एक सर्व लघु होगा इसलिये गायत्री के प्रस्तार में कुल ६४ भेद होंगे।

पिङ्गल सूत्र में गुरु लघु की संख्या को २ मानकर किसी भी संख्या वाले छन्द के प्रस्तार भेदों को ऐसे ही लाया गया है। भास्कराचार्य ने इसका विस्तार गुणोत्तर श्रेढ़ी के रूप में किया। अर्थात् किसी भी संख्या के गुणोत्तर गुण वाले पदों का योग कैसे निकाला जाय, इसके लिए सूत्र दिया।

> विषमें गच्छेऽव्येके गुणकः स्थाप्यः समेऽर्धिते वर्गः।
> गच्छक्षयान्तमन्त्याद् व्यस्तं गुणवर्गजं फलं यत् तत् ।। ६ ।।
> व्येकं व्येकगुणोद्धृतमादिगुणं स्याद्गुणोत्तरे गणितम्।

इसमें $आ^{गु}$ इस पद के गु को गच्छ कहा है। और प्राचीन समय में किसी घात को लाने के लिए सम संख्या घात का आधा करके वर्ग और विषम घात में १ घटाकर गुण लिखने की प्रक्रिया से किसी संख्या का अभीष्ट घात लाया जाता था। इसको गुणवर्गज फल कहते थे। जैसेः—२ का ६ घात करना है तो ६ को आधा किया ३ यहाँ लिखा वर्ग और ३ में १ घटाकर ३−१=२ गुण लिखा, २ में २ का भाग देकर वर्ग लिखा, फिर लब्धि १ में १ घटाकर ० लिखा। पिङ्गल सूत्र में यही रीति दी गई है। जैसेः—$२^{६}$ निकालना है इसमें ६ घात है और २ गुण है अतः ६ ÷ २=३ वर्ग। ३−१=२ यह गुण होगा। पुनः २ ÷ २ = १ यह वर्ग होगा। १−१=० गुण होगा। प्राचीन विधि के अनुसार नीचे से क्रिया दिखाई गई।

$२' = २ \quad \therefore २^२ = ४ \quad ४ \times २ = ८ \quad ८^२ = ६४$

६ व. $८ \times ८ = ६४$

३ गु. $४ \times २ = ८$

२ व. $(२ \times १)^२ = ४$

१ गु. २×१

इस उपलब्ध घाताङ्क फल का नाम गुणवर्गजफल है। इसमें गुणवर्गज-फल में १ घटाकर एकान गुणक का भाग देकर आदि से गुणा करने पर श्रेढ़ी का फल होता है। यहाँ आदि को आ और गुण को गु मानें तो सर्वधन का स्वरूप निम्नाङ्कित होगा।

$$\text{सर्व धन} = \frac{\text{आ} (\text{गु}^{\text{प}} - १)}{\text{गु} - १}$$ इसकी उपपत्ति आधुनिक रीति से निम्न प्रकार से की जाती है।

$१ — \text{सर्वधन} = \text{आ} + \text{आ. गु} + \text{आ. गु}^२ + \text{आ. गु.}^३ + \text{आ. गु}^४ + \text{आ} - \text{गु}^{\text{प} - १}$ इत्यादि दोनों पक्षों में गु० से गुणा करने पर।

$२ — \text{स. ध} \times \text{गु} = \text{आ. गु} + \text{आ. गु}^२ + \text{आ. गु}^३ + \text{आ. गु}^४ + \text{आ. गु}^५ \cdots \cdots \text{आ. गु}^{\text{प}}$ । प्रथम पक्ष को द्वितीय पक्ष में शोधन करने पर शेष =

$$\text{स. ध. गु} - \text{स. ध.} = \text{आ. गु.}^{\text{प}} - \text{आ} = \text{आ.} (\text{गु}^{\text{प}} - १)$$

$$\text{स. ध.} (\text{गु} - १) = \text{आ} (\text{ग}^{\text{प}} - १)$$

$$\text{स. ध.} = \frac{\text{आ. गु}^{\text{प}} - १}{\text{गु} - १}$$ उपपन्नम्।

भास्कराचार्य ने पिङ्गल सूत्र के छन्द प्रस्तार के लिए व्यवहृत गुणोत्तरगणित के प्रकार को विकसित कर गणित में गुणोत्तरगणित की नींव डाली। इसके पहले श्रीधराचार्य तथा महावीर आदि ने गुणोत्तर गणित का कोई रूप नहीं दिया है। इसलिए गणित में गुणोत्तर-गणित के प्रचारक के रूप में इनकी विशेष महत्ता माननी होगी।

क्षेत्र व्यवहार—

क्षेत्र व्यवहार का विषय क्षेत्रफल से सम्बन्धित है। उसका विवेचन हमारे शुल्व सूत्रों में ही मिलता है। क्षेत्रफल का अर्थ है किसी क्षेत्र (खेत) को नियत इकाई के वर्ग क्षेत्रों में विभक्त कर उन क्षेत्रों की संख्या का परिकलन। जैसे :—

किसी क्षेत्र की लम्बाई ३ और चौड़ाई ४ हो तो उसमें एक लम्बाई एक चौड़ाई वाले जितने भी वर्ग क्षेत्र होंगे वही इसका क्षेत्रफल होगा। इस प्रकार इसका क्षेत्रफल १२ हुआ। इस क्षेत्रफल गणित के मूल आविष्कारक यूनान और भारत स्वतन्त्र रूप से कहे जा सकते हैं। यज्ञ कुण्डों के क्षेत्रफल ज्ञान के लिए भारत में इस विज्ञान का विकाश हुआ तथा नील नदी की तराई में स्थित उलझे हुए क्षेत्रों के क्षेत्र-फल ज्ञान के लिए मिश्र में इस विद्या का आविष्कार हुआ। कहते हैं कि नील नदी के क्षेत्रों के स्वरूप ने ही यूनानी रेखागणित के विकास में योग दिया और बीजगणित से सम्पन्न होने वाले अनेक समीकरणों

की उपपत्ति यवनों ने रेखागणित से हो कर दिखाई। इसमें एक ही वात ऐसी है जो मूल रूप से भारत वर्ष में आविष्कृत कही जा सकती है। वह है समकोण त्रिभुज में भुज कोटि के वर्ग योग का कर्ण के वर्ग के तुल्य होना। शुल्व सूत्रों में प्रायः वर्ग आयत और वृत्त इन्हीं क्षेत्रों में यज्ञ कुण्डों के निर्माण की विधि दी गई है और वर्ग क्षेत्र के करण को उसकी भुजा के रूप में बढ़ाकर द्विगुण त्रिगुण आदि वर्गों को बनाने की विधि दी गई है तथा करण का मान दो भुजाओं के वर्गों के योग के वर्गमूल के तुल्य गणना द्वारा सिद्ध किया गया है और इसका विस्तृत उपयोग बौधायन शुल्व सूत्र में किया गया है। वहाँ करण को अक्ष्णया करणी नाम दिया गया है। करणी का अर्थ है बनानेवाली (क्रियते अनया इति करणी) है। इससे द्विगुणित त्रिगुणित आदि वर्ग बनाने के लिए अक्ष्णया का प्रयोग होता था और उसे करणी कहते थे। इसीलिए पीछे अवर्ग राशियों के मूल के लिए ही करणी शब्द का प्रयोग होने लगा। क्योंकि द्विगुणवर्ग के भुज में भुज का मान = भुज × $\sqrt{२}$ इसलिए $\sqrt{भु^२ \times २}$ करणी गत राशियों के वर्ग मूल के लिए हस्त, वितस्ति, अंगुल, व्यंगुल, तिल यूका, लिक्षा, आदि नाप के अत्यन्त छोटे अवयवोंका प्रयोग किया गया है। इसप्रकार हम देखते हैं कि त्रिकोण-मिति गणित का मूल भूत समकोण त्रिभुज में $भु^२ + को^२ = कर्ण^२$ यह सिद्धान्त भी भारतीय आविष्कार है। इस सम्बन्ध में ज्योतिर्निबन्धावली का यह तर्क पर्याप्त सबल प्रतीत होता है (पृष्ठ ७८) इतिहास साक्षी है कि ईस्वी सन् पूर्व तीसरी शताब्दी में विद्यमान रेखागणित का प्रसिद्ध विद्वान् यूक्लिड संख्याओं के जोड़, घटाना, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल आदि की विधियों से एकान्त अनभिज्ञ था। ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में जन्मान्तर के दार्शनिकसिद्धान्तों के लिए भारत का पर्यटन करनेवाले पैथागोरस ने अपने से ८०० वर्ष पूर्व के बौधायनशुल्वसूत्र में वर्णित 'समकोण त्रिभुज में कर्ण वर्ग = भुज वर्ग + कोटि वर्ग, को भारत से ही जानकर इसकी उपपत्ति अपनी समुन्नत रेखागणित की युक्ति से की।

भास्कराचार्य और ब्रह्मगुप्त ने इसकी उपपत्ति बीजगणित के नियमों के अनुसार क्षेत्र रचना करके की है। जो बीजगणित के प्रकरण में दिखलाया जायेगा। क्षेत्र का स्वरूप निम्नांकित है।
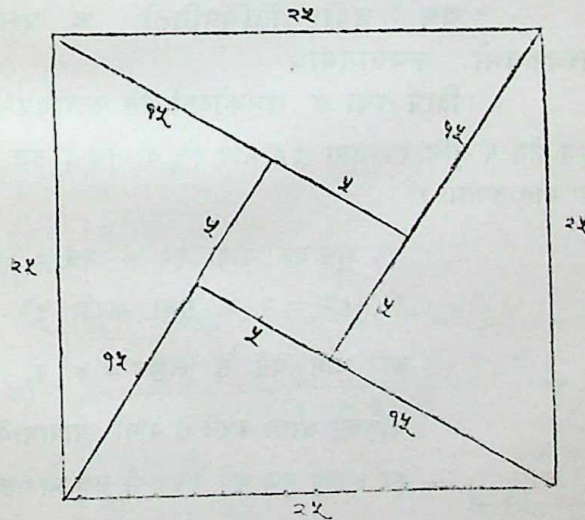
भास्कराचार्य ने इष्टकर्ण अथवा इष्टभुज मानकर अकरणी गत अर्थात् वर्गमूल मिलने वाले कर्ण के लिए अनेक प्रकार दिये हैं, जो अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि यह उनकी अपनी विशेषता है।

यथाः—

इष्टयोराहतिर्द्विघ्नी कोटिवर्गान्तरं भुजः ।
कृतियोगस्तयोरेवं कर्णश्चाकरणी गतः ॥ ६ ॥

अर्थात् दो अंको को इष्ट कल्पना कर उन दोनों के घात को दूना करने से कोटि होती है, तथा उन्हीं दोनों इष्टों का वर्गान्तर भुज तथा दोनों इष्टों का वर्ग योग कर्ण होता है ।

इष्ट २, १ इन दोनों के गुणन फल का दूना = ४ कोटि, २ का वर्ग − १ = ३ = भुज और २ का वर्ग + १ वर्ग = ५ = कर्ण इसी प्रकार अनेक प्रकार से इष्टों की कल्पना द्वारा अनेक रूप सिद्ध हो सकते हैं ।

भास्कराचार्य ने त्रिभुज के क्षेत्र फलानयन के लिए अपनी आविष्कृत लम्बानयन की नई विधि का उपयोग किया है । इनका सूत्र यह है किः—

त्रिभुजे भुजयोर्योगस्तदन्तरगुणो भुवा हृतो लब्ध्या ।
द्विष्ठाभूरूनयुता दलिताऽऽबाधे तयोः स्याताम् ॥ १८ ॥
स्वाबाधाभुजकृत्योरन्तरमूलं प्रजायते लम्बः ।
लम्बगुणं भूम्यर्धं स्पष्टं त्रिभुजे फलं भवति ॥ १९ ॥

अर्थात् त्रिभुज के दो भुजों के योग को उन्हीं दोनों भुजों के अन्तर से गुणा करके भूमिस्वरूप तृतीय भुज से भाग देने पर जो लब्धि हो उसको भूमि (तृतीय भुज) में एक स्थान पर अन्तर तथा दूसरे स्थान पर जोड़कर आधा करने से क्रमशः लघुभुज और वृहद्भुज को आबाधा होती है । भुज वर्ग में अपनी आबाधा के वर्ग को घटाकर शेष का मूल लम्ब होता है । लम्ब से भूमि को गुणा करके आधा करने से त्रिभुज का फल होता है ।

उदाहरणः—

क्षेत्रे मही मनुमिता त्रिभुजे भुजौ तु
यत्र त्रयोदशतिथिप्रमितौ च यस्य
तत्रावलम्बकमथो कथयाबबाधे
क्षिप्रं तथा च समकोष्ठमिति फलाख्यम् ॥

अर्थात् जिस त्रिभुज क्षेत्र में भूमि १४ तथा १३ और १५ दो भुज हैं उस त्रिभुज का लम्ब, आबाधा और समकोष्ठ रूप फल का मान बताओ ।
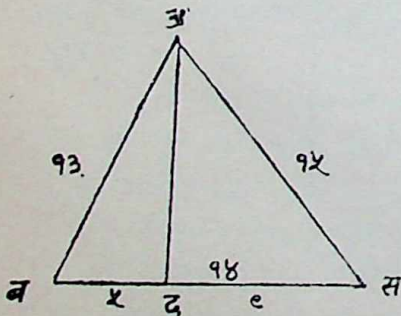
भुज का योग १३ + १५ = २८ को दोनों के अन्तर १५−१३ = २ से गुणा करके ५६ इसमें भूमि मान १४ का भाग देने से लब्धि = ४ को भूमि में घटाकर तथा जोड़कर आधा करने से दोनों आबाधायें क्रमशः ५, ९ के बराबर हुईं । लघु भुज वर्ग १६९ में लघु आबाधा के वर्ग २५ घटाकर शेष १४४ का मूल = १२ लम्ब हुआ । लम्ब से भूमि को गुणाकर आधा करने से $\frac{१४ \times १२}{२} = ८४$ यह क्षेत्र फल हुआ ।

इस सूत्र की उत्पत्ति भास्कराचार्य ने भुजाओं का वर्गान्तर = आवाधाओं के वर्गान्तर के बराबर होता है, इस नियम से की है। लम्ब के मूल से आधार के दोनों पार्श्वों तक की दूरी को आवाधा कहते हैं जो दो होती हैं। भास्कराचार्य के इस सूत्र से एक बात और सिद्ध होती है कि:—त्रिभुज में कोणों की ज्याओं और उनके सामने की भुजाओं में निस्पत्ति समान होती है।

उत्पत्ति इस प्रकार होगी :—

त्रिभुज में आधार रूप भुज भूमि। शेष दो भुजायें भुज तथा दोनों भुजाओं के योग विन्दु से आधार पर जो लम्ब है उसके दोनों पार्श्व का भूमि खण्ड आवाधा है।
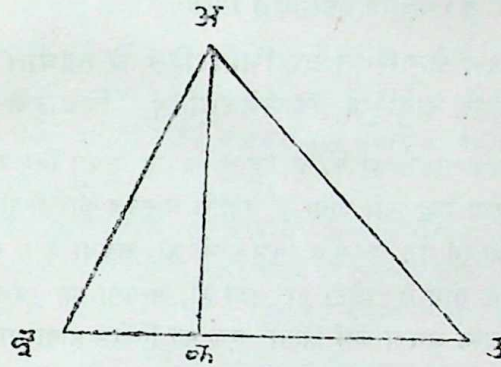
अ ई = भुज$_1$ । अ उ = भुज$_2$ । इ उ = भूमि। इ क = आवाधा$_1$ । क उ = आवाधा$_2$
अ क = लम्ब = ल

$$भु_1^2 - आ_1^2 = ल^2$$

$$भु_2^2 = आ_2^2 = ल^2$$

$$\therefore भु_1^2 - आ_1^2 = भु_2^2 - आ_2^2$$

$$\therefore भु_1^2 - भु_2^2 = आ_1^2 - आ_2^2$$

$$= (आ १ + आ २) \times (आ १ - आ २)$$

$$\therefore (आ १ - आ २) = \frac{(भु १ + भु २)(भु १ - भु २)}{आ. १ + आ २}$$

$$\therefore आवाधान्तर = \frac{भु. गो \times भु. अं.}{भू.}$$

इसलिए आवाधायोग रूप भूमि उन, युत अर्धित करने पर क्रमशः आवाधायें संक्रमण गणित से सिद्ध होती है। इसके वाद अपने-अपने भुज और आवाधों का वर्गान्तर लम्ब तुल्य हो जाता है।

त्रिभुज के और चतुर्भुज के क्षेत्रफल के लिए ब्रह्मगुप्त और श्रीपति ने एक ही प्रकार लिखा है।

भुज समासदलं हि चतुः स्थितम्
निजभुजैः क्रमशः पृथगूनितम् ।
अथ परस्परमेव समाहतं
कृतपदं त्रिचतुर्भुजयोः फलम् ।।
सि. शेखर

अर्थात् त्रिभुज और चतुर्भुज में भुजाओं के योग के आधे को चार स्थानों में रखकर भुजाओं को क्रमशः उनमें से घटाकर शेष फलों के गुणनफल का वर्गमूल त्रिभुज और चतुर्भुज में क्षेत्रफल होता है। भास्कराचार्य ने त्रिभुज के विषय में तो इसे ठीक माना है किन्तु चतुर्भुज में उसकी अनियत स्थिति दिखा कर क्षेत्रफल की एक रूपता को असंगत ठहराया है। जैसे—

सर्वदोर्युतिदलं चतुःस्थितं बाहुभिर्विरहितं च तद्वधात् ।
मूलमस्फुटफलं चतुर्भुजे स्पष्टमेवमुदितं त्रिबाहुके ।। २० ।।

इस सूत्र के अनुसार भास्कराचार्य का कहना यह है कि यह नियम त्रिभुज में तो ठीक ही लागू होगा किन्तु चतुर्भुज में इससे फल सर्वथा शुद्ध नहीं होगा। क्योंकि चतुर्भुज की स्थिति अनियत होती है। सामने के कोणों के दोनों विन्दुओं को खींचने पर चतुर्भुज त्रिभुज भी हो सकता है। जब कि आसन्न दो भुजाओं का योग दूसरी आसन्न भुजाओं के योग से छोटा या बड़ा हो, अन्यथा यह रेखा रूप हो जायेगा। इसलिए चतुर्भुज के क्षेत्रफल के लिए लम्ब अथवा कर्ण किसी एक का निर्दिष्ट होना आवश्यक है। तभी उसमें एक नियत क्षेत्रफल आयेगा।

चतुर्भुज के लिए उपर्युक्त नियम तभी सही होगा, जब कि चतुर्भुज के आमने सामने के कोणों का योग १८०° के तुल्य हो। और यह स्थिति वृत्तान्तर्गत चतुर्भुज में ही होती है। तथा वही क्षेत्रफल सभी नियत चार भुजाओं से बने हुए चतुर्भुज के क्षेत्रफल में सबसे बड़ा होता है। इसीलिए भास्कराचार्य का कथन शुद्ध होते हुए भी व्यवहार में उपर्युक्त नियम ही प्रचलित रहा है। अब तक देहातों में (पटवारी) लेखपालवर्ग इसी प्रकार से क्षेत्रफल निकालता है।

भास्कराचार्य की दूसरी उपलब्धि गोल पृष्ट के क्षेत्रफल और घनफल की है। भारतीय आचार्यों में आर्य भट्ट और उनके शिष्य परम्परा में गोल के पृष्ठ और घनफल के विषय में अशुद्ध रीति प्रचलित रही। इस बात का दिग्दर्शन गोलाध्याय के प्रकरण में विस्तृत किया जायेगा। भास्कराचार्य का सूत्र इस प्रकार है।

वृत्तक्षेत्रे परिधिगुणितव्यासपादः फलं तत्
क्षुण्णं वेदैरुपरि परितः कन्दुकस्येव जालम् ।
गोलस्यैवं तदपि च फलं पृष्ठजं व्यासनिघ्नं
षड्भिर्भक्तं भवति नियतं गोलगर्भे घनाख्यम् ।। ४३ ।।

अर्थात् वृत्त क्षेत्र में परिधि को व्यास के चतुर्थांश से गुणा करने पर क्षेत्रफल होता है। और उस क्षेत्रफल में चार से गुणा करने पर गोल का पृष्ठफल होता है। तथा इस गोल के पृष्ठफल में व्यास से गुणाकर ६ का भाग देने पर गोल का घनफल होता है। यवन गणितज्ञ आर्कमिडिज ने ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी में ही गोल का पृष्ठफल तथा घनफल शुद्ध रूप में ज्ञात किया था। किन्तु भारतीय आचार्यों में

कवल भास्कराचार्य ने इसको उपपत्ति कर शुद्ध पृष्ठफल लाने में समर्थ हुए हें। इससे एक बात और सिद्ध हो जाती है कि भारतीय आचार्यों ने सिद्धान्तज्योतिष और रेखागणित के विषय में यूनानियों का अनुकरण न करके स्वतन्त्र रूप से उनका विकास किया है।

खातव्यवहार —

खातव्यवहार का तात्पर्य घनफल से है। वापी, कूप आदि के घनफल आनयन के लिए इसमें प्रकार दिये गये हैं। किसी आयताकार ठोस पिण्ड का घनफल इसकी लम्बाई चौड़ाई ऊँचाई या गहराई के गुणनफल के तुल्य होता है। इस व्यावहारिक सत्य को शुल्बसूत्रों के समय ही जाना गया था। भास्कराचार्य ने इसमें दो वस्तुओं (पिण्डों) के घनफल में विशेषता की है उनमें प्रथम मुख और तल में भिन्न भिन्न लम्बाई और चौड़ाई वाले पिण्ड का घनफल और दूसरा है, सूचीपिण्ड का घनफल।

सूची पिण्ड का घनफल समखात का तृतीयांश होता है। इस बात को भास्कराचार्य ने स्वतः अपनी बुद्धि से उपलब्ध किया था। यद्यपि यवनों ने भी सूचीपिण्ड के घनफल की भी वही विधि लिखी है जो भास्कराचार्य की है। किन्तु लगता हैं कि भास्कराचार्य यवनों के प्रकार को देखे नहीं थे। भास्कराचार्य का दिया हुआ सूत्र नीचे लिखा है :—

समखातफलत्र्यंशः सूचीखाते फलं भवति ॥ ३ ॥

अर्थात् समखात घनफल का तृतीयांश सूची खात का घनफल होता है। यथा :—

सूची घनफल साधन में अ क ग सूची में अल वेध का न विभाग करने पर प्रथम खण्ड के वेध मान $= \frac{\text{वे}}{\text{न}}$ तथा द्वितीय खण्ड के वेध मान $= \frac{\text{२वे}}{\text{न}}$ इस प्रकार सर्वत्र होगा।

इसी प्रकार सभी खण्डित क्षेत्रों का दीर्घ विस्तार साधन कर क्रमशः क्षेत्रफल—
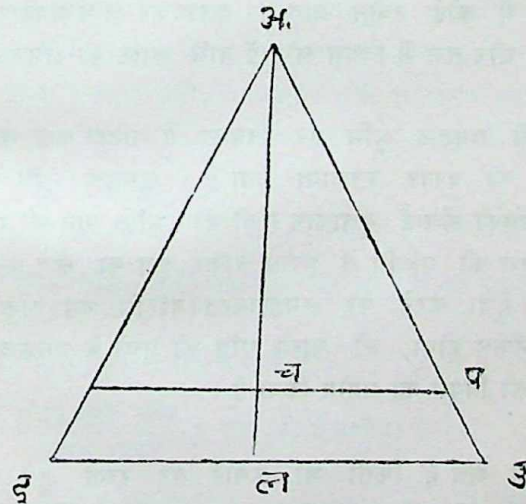
प्र० क्षे० फ० $= \frac{\text{मुफ}}{\text{न}^2}$, द्विक्षेफ $= \frac{\text{मुफ} \times ४}{\text{न}}$, तृक्षेफ $= \frac{\text{मुफ} \times ९}{\text{न}^2}$ इत्यादि।

ततो $\frac{\text{वे}}{\text{न}}$ इस वेध में घनफल—

प्र.घ.फ $= \frac{\text{मुफ० वे}}{\text{न}^3}$, वेद्विघफ $= \frac{\text{मुफ० ४वे}}{\text{न}^3}$, तृघफ $= \frac{\text{मफ} \times ९}{\text{न ३}}$

इस प्रकार सबका घन फल लाने के बाद योग—

$$= \frac{\text{मुफ वे}}{\text{न}^3}(१+४+९+\cdots\cdots+\text{न}^२)$$

$$= \frac{\text{मुफ वे}}{\text{न}^३} \frac{(२\text{न}+१)(\text{न}+१)\text{न}}{६}$$ द्विघ्न पदं कुयुतं त्रिविभक्तमित्यादिसे ।

$$= \frac{\text{मुफ वे}}{\text{न}^३} \frac{(२\text{न}^३+३\text{न}^२+\text{न})}{६}$$

$$= \text{मु. फ वे}\left(\frac{१}{३}+\frac{१}{२\text{न}}+\frac{१}{६\text{न}^२}\right)\cdots\cdots(१)$$

यहाँ पर न का मान जैसे जैसे बढ़ेगा वैसे वैसे ग च प क्षेत्र का ह्रास तथा (१) समीकरण का फल वास्तव सूची घनफल के आसन्न होगा । इस प्रकार न का मान परमाधिक अनन्त समान मानने पर वास्तव सूचीघनफल ही होगा । अतः

$$\frac{१}{२\text{न}}+\frac{१}{६\text{न}^२}=०$$

$$\therefore \text{सू. घ. फ.} = \frac{\text{मु फ० वे}}{३}$$ सिद्ध हुआ ।

क्रकच व्यवहार—

इसका अर्थ है काष्ठ की चिराई का क्षेत्र फल । क्रकच नाम आरे का है । इसलिए आरे के द्वारा काष्ठ का जितना क्षेत्रफल चीरने में उपलब्ध होगा, उसी के अनुसार चीरने वालों को पारिश्रमिक दिया जायेगा । भास्कराचार्य ने इस विषय में कोई नवीन बात न बतलाकर क्षेत्रव्यवहार के समलम्ब चतुर्भुज के क्षेत्र फलानयन की रीति से मुख और तल में विषम चौड़ाई वाले काष्ठ का क्षेत्रफल लाया है ।

राशि व्यवहार—

राशि व्यवहार में समतल भूमि पर दिवाल से सटा कर तथा कोण में रखे गये धान्य राशि का घनफल लाने का प्रकार बतलाया गया है। समतल भूमि पर रखी गई धान्यराशि वृत्त के रूप में फैलती है और उसकी ऊँचाई वृत्ताधार सूची की भाँति मान ली गई है । यद्यपि यह सर्वथा सत्य नहीं होगा, फलतः पहले वृत्त की परिधि से व्यास लाकर वृत्त का क्षेत्र फल लाया गया फिर उस पर से धान्य राशि की ऊँचाई से गुणा करने पर समतलमस्तकपरिधि रूप शंकु का क्षेत्रफल होगा । उसका तृतीयांश वृत्ताधार सूची घनफल होगा, जो धान्य राशि की सूची के घनफल के तुल्य होगा। भास्कराचार्य ने इस व्यवहार में सर्वत्र इसी नियम का प्रयोग किया है ।

छाया व्यवहार—

छाया व्यवहार का अर्थ है किसी भी ऊंचाई पर रक्खे हुए दीपक के प्रकाश से समतल भूमि पर द्वादशाङ्गुल शंकु की छाया की लम्बाई का आनयन । इसमें भास्कराचार्य ने दो स्थान में शङ्कु मूल से निकली हुई एक सीधी रेखा में रक्खे हुए दो शङ्कुओं के मूल की दूरी तथा दोनों छायों को जानकर दीप की ऊँचाई का आनयन किया है । इसी प्रकार से भूमिपृष्ठ पर के दो पलभाओं का ज्ञान होने पर दोनों के अक्षांशान्तरों से सूर्य की दूरो का आनयन किया जा सकता है । किन्तु यह पलभा एक अंश के लगभग अन्तर को होनी चाहिए । यदि भू परिधि का वास्तविक परिमाण ज्ञात होगा तो सूर्य की दूरी वास्तविक आएगी । इसके नियम ये हैं:—

भास्कराचार्य का सूत्रः—

छायाग्रयोरन्तरसंगुणाभा छायाप्रमाणान्तरहृद्भवेद्भूः ॥ ३ ॥
भूशङ्कुघातः प्रभया विभक्तः प्रजायते दीपशिखौच्यमेवम् ।
त्रैराशिकेनैव यदेतदुक्तं व्याप्तं स्वभेदैर्हरिणेव विश्वम् ॥ ४ ॥

अर्थात् छाया को छायाग्र के अन्तर भूमिमान से गुणा कर गुणनफल में छायाप्रमाण के अन्तर से भाग द्वारा लब्धि भूमि (छायाग्र से दीप तल पर्यन्त भूमि) होती है। फिर भूमि और शङ्कु का घात कर उसमें छाया से भाग देने पर दीपशिखा की ऊँचाई होती है। पहले जो गणित कहा गया है, सब त्रैराशिक द्वारा वैसे ही व्याप्त है; जैसे भगवान् विष्णु अपने भेद से विश्व में व्याप्त हैं।
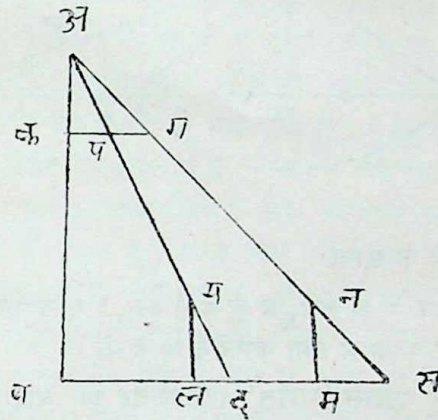
उपपत्तिः—अ व = दीप की ऊँचाई। य ल = न म=शङ्कु। ल द=प्रथम छाया। म स = द्वितीय छाया। द स = छायाग्रान्तर। अ व रेखा के अ विन्दु से अ क रेखा = य ल के बराबर बनाया। क बिन्दु से व स के समानान्तर क ग रेखा किया। अतः क्षेत्रों के सजातीय होने के कारण क्षेत्रमिति (अ. १ प्र. २६) के द्वारा म स = क ग और क प = ल द। ∴ प ग = छायान्तर। क्षेत्रमिति षष्ठाध्याय की विधि से

$$\frac{\text{क प}}{\text{प ग}} = \frac{\text{व द}}{\text{द म}} \text{।} \therefore \frac{\text{क प} \times \text{द स}}{\text{प ग}} = \text{त द} \text{।}$$

$$\frac{\text{प्रथम छाया} \times \text{छायाग्रान्तर}}{\text{छायान्तर}}$$ = प्रथम भूमि। इसी प्रकार से द्वितीय भूमि का मान भी लाया जा सकता है।

तथा अ क प, अ व द त्रिभुजों के सजातीय होने से

$$\text{अ ब} = \frac{\text{य ल} \times \text{व द}}{\text{ल द}} = \frac{\text{शं} \times \text{प्रथम भूमि}}{\text{प्रथम छाया}} = \text{दीप की ऊँचाई।}$$

दूसरा उदाहरण पूर्वोक्त शङ्कुओं के छायों तथा छायाकर्णों के अन्तरों को जानकर छायों और कर्णों के आनयन से सन्बन्धित है। वस्तुतः भास्कराचार्य ने इस सूत्र के निर्माण में अपने बीजगणितीय ज्ञान का अद्भुत परिचय दिया है। सूत्र की उत्पत्ति के द्वारा यह स्पष्ट हो जायेगा। सूत्र इस प्रकार हैः—

छाययोः कर्णयोरन्तरे ये तयोर्वर्गविश्लेषभक्ता रसाद्रीषवः।
सैकलब्धेः पदघ्नं तु कर्णान्तरं भान्तरेणोनयुक्तंदले स्तः प्रभे ॥ १ ॥

अर्थात् अभीष्ट शङ्कु के दो छायों और दो कर्णों के जो अन्तर हैं उनके वर्गान्तर से ५७६ अर्थात् चतुर्गुणित शङ्कु वर्ग ४× (१२)² में भाग देने पर जो लब्धि हो उसमें १ जोड़कर मूल लें। उसके मूल से कर्णान्तर में गुणाकर उसे दो स्थानों पर रक्खें उनमें छायान्तर को जोड़ घटाकर आधा करने पर दोनों छाया होती हैं।
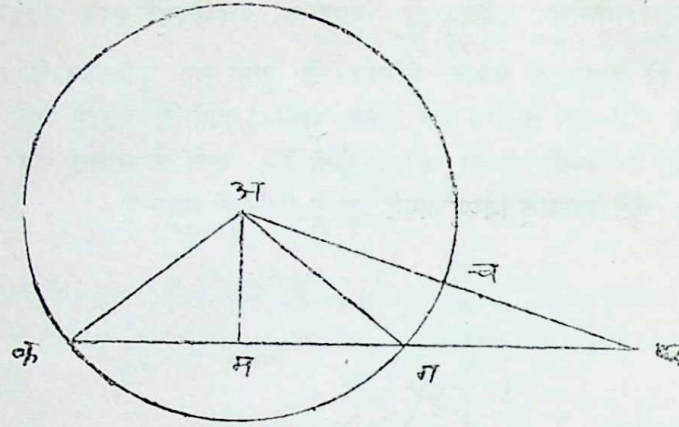
उपपत्तिः—

कल्पना किया क म = ल छाया

घ म=वृ. छाया। अ क = ल कर्ण, अ घ = वृ कर्ण,। ग घ=छायान्तर=छा अं। क घ = छा यो = छायायोग। घ च = कर्णान्तर = क अं तथा कर्णयोग = क यो।

'वर्गान्तरं योगान्तर घातसमंस्यात्' भुजवर्गान्तर की आवाधा वर्गान्तर होने से:—
क अं क यो = छा अं. छा यो = या।

$$\therefore \text{क यो} = \frac{\text{छा अं. या}}{\text{क अं}} \quad \text{अतः ल क} = \frac{\text{छा अं. या} - \text{क अं}^2}{\text{२ क अं}}$$

$$\text{इस प्रकार संक्रमण गणित से ल छा} = \frac{\text{या}-\text{छा. अं}}{\text{२}}$$

$$\text{यहाँ ल क}^2 - \text{ल छा}^2 = १२ \times १२ = १४४$$

$$\therefore १४४ = \frac{\text{छा अ}^2.\text{या}^2 - \text{२ छा अं. या. क अ}^2 + \text{क अ}^2}{\text{४ क अ}^2}$$

$$= \frac{(\text{छा अ}^2 - \text{क अ}^2)\ (\text{या}^2 - \text{क अ}^2)}{\text{४ क अ}^2}$$

$$\therefore \text{या}^2 = \frac{\text{५७६ क अ}^2}{\text{छा अ}^2 - \text{क अ}^2} + \text{क अ}^2$$

$$= \text{क अ}^2 \left(\frac{५७६}{\text{छा अ}^2 - \text{क अ}^2} + १ \right)$$

मूल लाने पर

$$\text{या} = \text{क अ} \sqrt{\frac{५७६}{\text{छा अ}^2 - \text{क अ}^2} + १} = \text{छाया योग}$$

कुट्टक व्यवहारः—

कुट्टक का अर्थ है कूटने वाला या तोड़ने वाला। गणित में यह शब्द ऐसे दो अज्ञात राशियों के ज्ञान के लिए प्रयुक्त होता है जो किन्हीं दो निर्दिष्ट राशियों से गुणित हों और उनमें से किसी एक में कोई राशि जुटी हो। वास्तव में यह बीजगणित का विषय है। अंकगणित में इसको इसलिए स्थान दिया गया है कि बहुत से अंकगणित के प्रश्न इससे सरलता से हल हो जाते हैं। इसका स्वरूप निम्नाङ्कित हैः—

क य = ख × र + ग इसमें क ख ग तीन राशियों के ज्ञात होने पर य और र का मान ज्ञात करना ही इस गणित का उद्देश्य है। समीकरण से सिद्ध है कि र और य के अनेक मान आ सकते हैं। इसलिए आधुनिक गणित की भाषा में इसे अनिर्धारित समीकरण (Indeturminate equation)(इण्डिटर्मिनेट एक्वेशन) कहते हैं। पूर्व समीकरण में ख को **भाज्य** क को **हार** और ग को **क्षेप** कहते हैं। भास्कराचार्य ने भाज्य, हार और क्षेप इन तीनों में यदि एक महत्तम राशि का भाग लग जाता हो तो उसे लाने के लिए परस्पर भजन की प्रक्रिया द्वारा अन्तिम शेष के रूप में इसे माना है। आज महत्तमापवर्त्तन के लिए सरलतम विधि का उपयोग होता है। सिद्ध है कि भास्कराचार्य के समय में महत्तमापवर्त्तन के लिए सरल विधि का आविष्कार नहीं हो सका था। इस प्रकार महत्तमावपर्त्तन के द्वारा अपवर्तित भाज्य हार और क्षेप को निर्भाज्य दृढ़ भाज्य हार और क्षेप कहा गया है। इन दृढ़ भाज्य और हारों को परस्पर भाग तब तक देते जायँ जब तक शेष १ न हो जाय। १ शेष होने के पूर्व जितनी लब्धियाँ आईं हैं उन सबको एक सीधी खड़ी पंक्ति में रखकर क्षेप को रखिए। फिर उसके नीचे ० को रखिए। इस प्रकार नीचे के अंक को उपर के अंक से गुणा कर उसमें ० जोड़ने पर लब्ध को उपर के अंक से गुणा कर फिर उसमें ० से उपर की लब्धि को जोड़िए। इस प्रकार उत्तरोत्तर क्रिया करने से दो राशि उपलब्ध होंगी। उसमें उपर की राशि में दृढ़ भाज्य से तथा नीचे की राशि में दृढ़ हार से भाग देने पर दो अभीष्ट राशियाँ प्राप्त होंगी। जिनमें नीचे की राशि भाज्य के अज्ञात गुणक का मान और उपर की राशि हार के अज्ञात गुणकाङ्क्ष य का मान होगी। इस क्रिया में भी यदि पंक्ति सम हो और + क्षेप हो तथा पंक्ति विषम और − क्षेप को तो आगत लब्धि गुणक ही अभीष्ट होंगे। और इससे भिन्न होने पर प्राप्त लब्धि गुणकों को अपने २ भाजकों में से घटा देने पर अभीष्ट लब्धि गुणक होंगे। इसके लिए भास्कराचार्य का सूत्र हैः—

मिथो भजेत् तौ दृढभाज्यहारौ यावद्विभाज्ये भवतीह रूपम्।
फलान्यधोऽधस्तदधो निवेश्यः क्षेपस्तथाऽन्ते खमुपान्तिमेन॥ ३॥
स्वोर्ध्वेहतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम्।
ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण॥ ४॥
एवं तदैवाऽत्र यदा समास्ताः स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम्।
यदागतौ लब्धिगुणौ विशोध्यौ स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौ स्तः॥ ५॥

इसकी उपपत्ति भास्करीय उदाहरण के अनुसार दी जाती हैः—

कल्पना किया $\text{का} = \dfrac{१०० \text{ या} + \text{क्षे}}{६३}$ $\left\{ \begin{array}{l} \text{या} = \text{गुणक} \\ \text{का} = \text{लब्धि} \end{array} \right\}$

$$= \text{या} + \frac{३७ \text{ या} + \text{क्षे}}{६३} = \text{या} + \text{नी}$$

$\therefore$ नी $= \frac{\text{३७ या + क्षे}}{\text{६३}}$ $\therefore$ या $= \frac{\text{६३ नी − क्षे}}{\text{३७}}$

$= \text{नी} + \frac{\text{२६ नी − क्षे}}{\text{३७}} = \text{नी + पी.}$

$\therefore$ पी $= \frac{\text{२६ नी − क्षे}}{\text{३७}}$ $\therefore$ नी $= \frac{\text{३७ पी + क्षे}}{\text{२६}} = \text{पी. + ला}$

$= \text{पी} + \frac{\text{११ पी + क्षे}}{\text{२६}} = \text{पी + लो}$

$\therefore$ लो $= \frac{\text{११ पी + क्षे}}{\text{२६}}$

$\therefore$ पी $= \frac{\text{२६ लो − क्षे}}{\text{११}}$

$= \text{२ लो} + \frac{\text{४ लो − क्षे}}{\text{११}} = \text{२ लो + ह}$

$\therefore$ ह $= \frac{\text{४ लो − क्षे}}{\text{११}}$

$\therefore$ लो $= \frac{\text{११ ह + क्षे}}{\text{४}}$

$= \text{२ ह} + \frac{\text{३ ह + क्षे}}{\text{४}} = \text{२ ह + श्वे}$

$\therefore$ श्वे $= \frac{\text{३ ह + क्षे}}{\text{४}}$

$\therefore$ ह $= \frac{\text{४ श्वे − क्षे}}{\text{३}}$

$= \text{श्वे} + \frac{\text{श्वे − क्षे}}{\text{३}} = \text{श्वे + चि}$

$\therefore$ चि $= \frac{\text{श्वे − क्षे}}{\text{३}}$

यहाँ पर यदि चि = ०

तो यावत् तावत् कालकादि का मान इस प्रकार होगा :—

या = नी + पी $= \frac{\text{६३ नी + क्षे}}{\text{३७}}$

का = या + नी $= \frac{\text{१०० पी + क्षे}}{\text{६३}}$

नी = पी + लो $= \frac{\text{३७ पी + क्षे}}{\text{२६}}$

$$\text{पी} = \text{२ लो} + \text{ह} = \frac{\text{२६ लो} - \text{क्षे}}{\text{११}}$$

$$\text{लो} = \text{२ ह} + \text{श्वे} = \frac{\text{११ ह} + \text{चे}}{\text{४}}$$

$$\text{ह} = \text{श्वे} + \text{चि} = \frac{\text{४ श्वे} - \text{क्षे}}{\text{३}}$$

$$\text{श्वे} = \text{क्षे} = \frac{\text{३ चि} + \text{क्षे}}{\text{१}}$$

$$\text{चि} = \text{०}$$

इससे यह सिद्ध हुआ कि जब अन्तिम शेष १ होगा, उस अवस्था में भाज्य को० की कल्पना करने पर लब्धि क्षेप के तुल्य हो जाएगी। इस लिए वल्ली में अन्त में शेप रखकर के उपरोक्त क्रिया की गई है।

भास्कराचार्य ने कुट्टक में अनेक विशिष्ट वातों का समावेश किया है जो आर्यभटीय तथा व्राह्मस्फुट सिद्धान्त आदि ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। इनमें सश्लिष्टकुट्टक और स्थिर कुट्टक तथा किसी भी ग्रह के विकलात्मक मान के ज्ञात होने पर उसके गतभगणों तथा अहर्गणों का आनयन आदि है। भास्कराचार्य ने कुट्टक से ही अधिमास शेष जानकर गतरविदिवस और गताधिमासों का आनयन किया है। गोलाध्याय में कुट्टक के द्वारा ग्रहगति सम्बन्धी अनेक प्रश्नों का समाधान किया गया है। यथाऽवसर उसकी व्याख्या की जायगी। यहाँ हम कुट्टक सम्बन्धी कुछ उदाहरण देते हैं। यथा :—

१— येन संगुणिताः पञ्च त्रयोविंशतिसंयुताः।
वर्जिता वा त्रिभिर्भक्ता निरग्राः स्युः स को गुणः॥ १॥

$$\text{३ या} = \text{५ र} + \text{२३}$$

$$\therefore \text{या} = \frac{\text{५ र} + \text{२३}}{\text{३}}$$

इस समीकरण में भाज्य ५ और हार ३ है। इन दोनों का परस्पर भाग देने पर १ शेष तक वल्ली १, १ होती है। उसका क्षेप और ० के साथ स्वरूप :—

वल्ली
१ { २३ × १ + ० = २३ } द्वितीय ४६
१
२३
० { २३ × १ + २३ = ४६ } प्रथम २३

यहाँ ४६ में ५ से भाग देने पर लब्धि ९ और शेष १ आता है तथा २३ में ३ से भाग देने पर लब्धि ७ और शेष २ आता है किन्तु ये शेष १ और २ हमारी अभीष्ट राशि नहीं हुई। इसके लिए भास्कराचार्य ने विशेष सूत्र कहा है। यथा—

गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता लक्षणे फलम्॥ ७॥

अर्थात् कुट्टक की वल्ली से उपलब्ध दो राशियों में भाज्य और हार से भाग देने के समय लब्धि तुल्य ही लेना चाहिए। इसलिए पूर्वोक्त उदाहरण में २३ में ३ का भाग देने पर लब्धि ७ होती है। इसलिए ४६ में ५ का ७ वार ही भाग देकर शेष ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार क्रिया करने पर गुण और लब्धि २, ११

हुए। यहाँ पर वल्ली सम है और क्षेप + है इसलिए आगत लब्धि गुणक ये हुए। अर्थात् र = २ और

य = $\frac{२ \times ५ + २३}{३}$ = ११ यदि २३ क्षेप- है तो लब्ध गुणलब्धियों को अपने २ हरों से घटाने पर ३—२

= १ और ५ में—११ = —६ हुआ अर्थात् र = १ और य = $\frac{१ \times ५ — २३}{३}$ = — ६। इसमें हम इष्ट

गुणित अपने २ हरों से युत गुण लब्धियों को करें, तो इष्ट ७ मानने पर $\frac{७ \times ५ - २३}{३} = \frac{१२}{३}$ = ४ लब्धि। और

गुण = ७ भास्कराचार्य ने क्रिया लाघव के लिए क्षेप में हर से भाग देकर शेष को क्षेप मानकर कुट्टक किया है। और इस कुट्टक से लाये गये गुण लब्धि को क्षेप के हार से भाग देने पर आई हुई लब्धि को लब्धि में जोड़कर लब्धि माना है। जैसे पूर्वोक्त उदाहरण में क्षेप २३ में ३ का भाग देने पर शेष २ बचा। इस दो क्षेप भाज्य ५ और ३ हार से गुणक लब्धि २ और ४ हुए 'क्षेपतक्षण लाभाढ्या' अर्थात् ७ जोड़ने

पर $\frac{४ + ७}{२} = \frac{११}{२}$ पूर्ववत आ गया। यदि क्षेप हो तो आगत लब्धि को घटाने पर ही वास्तविक लब्धि

गुण होंगे। जैसे :—१ और-६ हुआ।

भास्कराचार्य ने कुट्टक प्रकरण में एक नवीन आविष्कार संश्लिष्ट कुट्टक के नाम से प्रस्तुत किया है। इसमें भाजक एक हो और गुणक तथा क्षेप भिन्न हों तो ऐसे दो कुट्टकों को एक का रूप दिया जा सकता है। इसमें गुणकों के योग को गुणक तथा क्षेपकों के योग को क्षेप मानकर पूर्वोक्त हर के द्वारा क्रिया करने पर गुणकों का योग प्राप्त होगा। जैसे :—

कः पञ्चनिघ्नो विहृतस्त्रिषष्ट्या सप्ताऽवशेषोऽथ स एव राशिः।
दशाहतः स्याद्विहृतस्त्रिषष्ट्या चतुर्दशाग्रो वद राशिमानम्॥ १॥

अर्थात् किस अङ्क को ५ से गुणाकर ६३ से भाग देने से ७ शेष तथा उसी को १० से गुणाकर ६३ के भाग देने से १४ शेष होता है। उस राशि को बताओ।

यहाँ गुण योग को भाज्य और शेष योग को ऋणक्षेप और ६३ हर कल्पना करके $\frac{\text{भा } १५ - \text{क्षेप } २१}{\text{ह० } ६३}$ इसमें ३ का अपवर्तन देकर दृढ़ भाज्य हार करने से :—

$\frac{\text{भा. } ५ — \text{क्षे.}}{\text{ह. } २१}$ इस पर वल्ली ० ४ ७ ० पूर्ण क्रिया करने पर ल = २। गुणक ७ यह सात गुणक

धन क्षेप में हुआ अतः इसको दृढ़ हर २१ घटाने से १४ यह ऋणक्षेप में गुणक हुआ। सूत्र इस प्रकार है :-

एको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नौ तदा गुणैक्यं परिकल्प्य भाज्यम्।
अग्रैक्यमग्रं कृत उक्तवद्यः संश्लिष्टसंज्ञः स्फुटकुट्टकोऽसौ॥

अङ्कपाशः—(Permutationb and Combinations)

अङ्कपाश शब्द का अर्थ है अंकों का बन्धन। भास्कराचार्य ने इसको नियत स्थानीय अंकों के वनो कितने भेद संख्यात्मक हो सकते हैं इस अर्थ में इसको लिया है। आज इस गणित का बहुत बड़ा विस्तार

हो चुका है और आंकड़ा शास्त्र (स्टैटिटिक्स) जैसे विषयों में इसी के नियमों के द्वारा अनेक प्रश्न सुलझाये जाते हैं। अङ्कपाश भास्कराचार्य की अपनी स्वयं की उपलब्धि प्रतीत होता है। क्योंकि इनसे पहले आर्यभट्ट, श्रीधर, महावीर, ब्रह्म गुप्त आदि आचार्यों के पुस्तकों में इसका कहीं उल्लेख नहीं है। यद्यपि भास्कराचार्य ने इसको अपनी कृति नहीं कहा है किन्तु इनके निम्नाङ्कित वाक्य से यह सिद्ध होता है कि अंकपाश की प्रक्रिया के लिए उन्हे गर्व था। और ऐसा गर्व अपने आविष्कार पर होना स्वाभाविक है। उनका कहना है। कि :—

न गुणो न हरो न कृतिर्नघनः, पृष्ठस्तथापि दुष्टानाम् ।
गर्वितगणकबहूनां स्यात्पातोऽवश्यमङ्कपाशेऽस्मिन् ॥ १ ॥

अर्थात्—इस अङ्क में गुणा नहीं है, भाग नहीं है, वर्ग नहीं है घन नहीं है फिर भी पूछने पर अनेक अभिमानी दुर्मति गणकों का गर्वपात (अभिमाननाश) अवश्य हो जायेगा। इङ्गलिश में अङ्कपाश को (परम्युटेशन और कम्बीनेशन) कहते हैं। हायर अलज्जवरा बाई H. S. हाल एम. ए. नोपारम्युटेशन का यह लक्षण किया है:—

EHCH of the arrangements which can be Mede by taking some ar all of a Numbes of things is called a Permutation. अर्थात् पदार्थों के कुछ अथवा सम्पूर्ण संख्याओं को लेकर जो स्थापना की जाती है उसे परमिटेशन कहते हैं। Each of the groubs ar selections which can be Made by Taking some ar of a Number of things is clled a combination. अर्थात् कतिपय अथवा सम्पूर्ण वस्तुओं के समूह अथवा चयन की एकैकशः स्थापना को कम्बिनेशन या सामुहिक स्थापना कहते हैं। तात्पर्य यह है कि व्यष्टिगत वस्तुओं के एकैकशः स्थापना का नाम परम्यूटेशन है और वस्तु समूह के एकैकशः स्थापना का नाम कम्बिनेशन है। जैसे परम्यूटेशन का उदाहरण:—अ क ग घ ये चार व्यष्टिगत पदार्थ हैं इनमें दो दो के समूह की स्थापना कि संख्या क्या होगी इसका नाम परम्यूटेशन है। यथा:—

अ क	अ ग	अ घ
क अ	क ग	क घ
ग अ	ग क	ग घ
घ अ	घ क	घ ग

इन्हीं अक्षरों के द्वारा समूहगत संख्याओं के भेद निम्न प्रकार के होंगे।

जैसे:—	अ क	अ ग	अ घ	कम्बिनेशन हुआ।
		क ग	क अ	
			घ ग	

भास्कराचार्य ने इनमें प्रथम प्रकार के भेदों को अंकपाश में तथा द्वितीय प्रकार के भेदों को मूषावहन तथा वैद्यक रस भेद प्रकरण में दिया है। इसमें पहले हम अङ्कपाश (परम्यूटेशन) का उदाहरण देते हैं। इसके लिए भास्कराचार्य का सूत्र है:—

स्थानान्तमेकादिचयाङ्कघातः संख्याविभेदा नियतैः स्युरङ्कैः ।
भक्तोङ्कमित्याङ्क समास निघ्नः स्थानेषु युक्तो मितिसंयुतिः स्यात् ॥

अर्थात् संख्या के अङ्क नियत (निदिष्ट) हों तो संख्या में अङ्क के जितने स्थान हों उतने स्थान पर्यन्त एक आदि अङ्कों का घात संख्या के भेद होते हैं। उस भेद को अङ्कों के योग से गुना कर स्थानाङ्क

संख्या के भाग देकर लब्धि का स्थान तुल्य स्थान में एक-एक अङ्क आगे बढ़ा कर रख करके योग करने से समस्त संख्या भेदों का योग होता है। इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है :—

द्विकाष्टकाभ्यां त्रिनवाष्टकैर्वा निरन्तरं द्वयादिनवावसानैः।
संख्याविभेदाः कति सम्भवन्ति तत्संख्यकैक्यानि पृथक्वदाशु ॥ १ ॥

अर्थात् २ और ८ में दो स्थान वाली संख्या के कितने भेद होंगे? तथा ३-९-८ इन तीन अङ्कों से कितने भेद होंगे? एवं २-३-४-५-६-७-८-९ इस आठ अङ्कों से सख्या के भेद क्या होंगे? तथा पृथक् २ भेदों के योग कितने होंगे शीघ्र बतलाओ।

उत्तर—प्रथम प्रश्न में दो स्थानीय अङ्क २ और ८ हैं इस लिए दो स्थान पर्यन्त १ आदि अङ्कों का घात = १ × २ = २ यह संख्या का भेद हुआ। यथा प्रथम भेद = २८ द्वितीय भेद = ८२ इससे भिन्न भेद नहीं हो सकता है। तथा उस भेद संख्या को अङ्कों के योग (२+८) = १० से गुणाकर अङ्क मान से भाग देकर लब्धिको दो स्थान में एकान्तर करके रखकर योग करने से इस प्रकार संख्याओं का योग १० / ११० हुआ। यथा २८ + ८२ = ११०।

इसी प्रकार द्वितीय तृतीय प्रश्न के भी उत्तर ग्रन्थकार के न्यास में नीचे लिखे अनुसार देखिए।

१—२।८ अत्र स्थाने २ स्थानान्तमेकादिचयाङ्कौ १।२ घातः २ एवं जातौ संख्या भेदौ २ अथ स एव घातोऽङ्क समासेन १० निघ्नः २० अङ्कमित्यानया = भक्तः १० स्थानद्वये युक्तो जातंसंख्यैक्यम् ११०।

२— न्यासः ३।९।८ अत्रैकादिचयाङ्काः १।२।३ घातः ६ एवावन्तः संख्या भेदाः। घातः ६ अङ्क समासा २० हतः १२०। अङ्क मित्या ३ भक्तः ४०। स्थान त्रय युक्तो जातं संख्यैक्यम् ४४४०।

३—न्यासः। २। ३। ४। ५। ६। ७। ८। ९ एवमत्र संख्याभेदाश्चत्वारिंशत्सहस्त्राणि शत त्रयं विंशतिश्च ४०३२०। संख्यैक्यश्च चतुर्विंशति निखर्वाणि त्रिषष्टि पद्मानि नव नवतिकोट्यः नव नवति लक्षाः पञ्चसप्ततिसहस्त्राणि शतत्रयं षष्टिश्च = २ ४ ६ ३ ९ ९ ९ ९ ७ ५ ३ ६ ०। इति उपरोक्त प्रक्रिया से सिद्ध हैं कि अ क ग घ इत्यादि वर्णों में यदि प्रत्येक को प्रथम स्थान में रखते हैं तो पूर्व युक्ति से ही उसके स्थापना के प्रकार पद — १ तुल्य होते हैं जैसे :—अक अग अघ; कअ कग कघ, गअ, गक, गघ घअ, घक, घग। ये भेद पहले स्थान में न तुल्य द्वितीय स्थान में प × (प — १) तुल्य होते हैं। इस लिए आगे भी दो संख्याओं के न - २ तुल्य भेद होंगे। जिससे कि कुल भेद न (प — १) × (प—२) तुल्य हो जायँगे। इस प्रकार उत्तरोत्तर एकोन पद से गुणित संख्या भेद होते जायँगे। इस लिए इससे आचार्य का यह सूत्र सिद्ध हुआ कि :-(**स्थानान्तमेकापचिताङ्कघातः संख्या विभेदा नियतास्युरङ्कैः**) जैसेः- आचार्य के उदाहरण में '**त्रिनवाष्टकैर्वा**' यहाँ ३, ८, ९। ३, ९, ८। ८, ३, ९। ८९३। ९३८। ९८३ ये ६ भेद हुए। इसमें ३ स्थान हैं अतः पद ३ हुआ संख्या भेद प × (प — १) × (प — २) = २ × २ × १ = ६ इसी प्रकार र स्थान सम्बन्धी भेद प (प — १) (प — २) प (प—र + १) यदि यहाँ प = र के तो पस्थानीय भेद = प (प — १) (प — २) (प — ३) (प — प — १) ··· हो गया।

इस प्रकार से अ क ग घ इत्यादि वर्णों से प स्थान में जो भेद होते हैं उनमें प्रत्येक भेद में प तुल्य ही अङ्क स्थान के परिवर्त्तन से रहते हैं। इसलिए एक भेद में स्थानक्रम से यदि अ क ग घ इनका योग किया जाय तो सर्वाधिक प स्थानीय संख्या $१०^{प - १}$ तुल्य ही होगी। इसके वाद पदान्त तक १० का

एकोनपदघात ही होगा। इसलिए यदि अ इसका सर्वाधिक स्थान मानकर भेद लगाया जाय तो निम्न भेद उत्पन्न होंगे।

$$१०^{प-१} अ + १०^{प-२}, \quad क + १०^{प-३} + प १०^{प-१} अ + १०^{प-२} + ग + १०^{प-३} \ldots\ldots + प$$

यहाँ भेदों के स्वरूप को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अ को सर्वाधिक स्थान मानने पर उसके साथ भेद साधने से $१०^{प-१} \times$ अ ये संख्या सब भेदों में $\lfloor प-१$ इसके तुल्य होगी। इस प्रकार से क को सर्वाधिक स्थान मानकर उसके साथ भेदों को लाने पर पूर्व युक्ति से ही $१०^{प-१} \times$ क यह भी सब भेदों में $\lfloor प-१$ के तुल्य ही होगी। इसी प्रकार आगे भी ग. घ को सर्वाधिक स्थान मानने पर $१०^{प-१} \times$ ग तथा $१०^{प-१} \times$ घ इत्यादि भी प्रत्येक $\lfloor प-१$ तुल्य होंगे। इन भेदों में उन अङ्कों के स्थान परिवर्तन होने के कारण ही ऐसा होगा। इस प्रकार सर्व स्थानीय अङ्कों का योग

$\lfloor प-१ \times १०^{प-१}$ (अ + क + ग + घ···प) यह होगा।

इससे आचार्य का यह कथन उपपन्न हुआ कि :—

भक्तोऽङ्कमित्याङ्क समास निघ्नः स्थानेसु युक्तो मिति संयुतिः स्यात।

इस प्रकार तुल्य अंक वाली संख्याओं और शून्य से युक्त संख्याओं के भेद को भी भास्कराचार्य ने वीजगणित की युक्ति से उपपन्न सूत्रों द्वारा सिद्ध किया है। विस्तार के भय से यहां उन्हें नहीं दिया जा रहा है।

भास्कराचार्य की लीलावती अपने निर्माण काल से अद्यावधि अध्ययनाध्यापन क्रम में चली आ रही है। उनके बाद के आचार्यों में सिद्धान्ततत्वविवेककार कमलाकर और सिद्धान्तसार्वभौमकार मुनीश्वर को भी भास्कराचार्य की लीलावती ही कण्ठस्थ रही। सिद्धान्ततत्वविवेक में कमलाकर भट्ट ने इसके (लीलावती) के समस्त कुट्टक प्रकरण को ज्यों का त्यों उधृत किया है। और मुनीश्वर ने पाटीगणितसार नाम का एक अलग ग्रन्थ लिखा है, जिसमें लीलावती के श्लोकों का कहीं-कहीं थोड़ा सा परिवर्तन मात्र कर दिया है। इससे सिद्ध है कि परवर्ती आचार्यों को भी भास्कराचार्य की लीलावती कण्ठस्थ रही। भास्कराचार्य की यह उक्ति पूर्णतः सत्य रही कि :—

येषां सुजाति गुणवर्गविभूषिताङ्गी,
शुद्धाऽखिलव्यवहृतिः खलु कण्ठसक्ता।
लीलावतीह सरसोक्तिमुदाहरन्ती,
तेषां सदैव सुखसम्पदुपैति वृद्धिम्॥

इस श्लोक में भास्कराचार्य ने अपनी श्लेष उपमा के संकरालङ्कार प्रियता को पुनः व्यक्त किया है। यहाँ लीलावती का अर्थ लीलावती ग्रन्थ और लीला से युक्त स्त्री दोनों किया गया है। तथा श्लिष्ट विशेषणों से दोनों के पक्ष में पद्यार्थ समर्पित किया गया है। लीलावती (ग्रन्थ) पक्ष में सुजात सुन्दर गणित की विधियाँ गुण (गुणा) वर्ग से विभूषित अंगवाली शुद्ध सम्पूर्ण गणितीय व्यवहार वाली सरस युक्तियों को कहने वाली लीलावती जिनको कण्ठसक्त (कण्ठस्थ) होगी, उनको सदैव ही सुख सम्पत्ति वृद्धि को प्राप्त होगी। स्त्री पक्ष में सुन्दर जाति सुन्दर गुण और सुन्दर वर्ग तथा सुन्दर अंग वाली शुद्ध सम्पूर्ण व्यवहार वाली, सरस वोलने वाली स्त्री जिसको कण्ठसक्त होगी, उसकी सदैव सुख सम्पत्ति वृद्धि को प्राप्त होगी।

॥ शिवम्॥

बीजगणितः—

बीजगणित का अर्थ है मूलगणित या वह गणित जिससे गणित की मौलिक बातों का विश्लेषण हो जाय। ऐसा गणित कल्पित अक्षरों द्वारा ही हो सकता है जिसमें गणित के मूलभूत सिद्धान्त स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। भास्कराचार्य ने इस बीजगणित को बुद्धि का उत्पादक कहा है तथा अपने ग्रन्थ के प्रथम श्लोक में सांख्यशास्त्र से इसकी तुलना की है। इसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है। द्वितीय श्लोक में बीजगणित का प्रयोजन बतलाते हुए कहते हैं कि बिना बीजगणित की युक्तियों के व्यक्त गणित पाटीगणित के प्रश्न समझे नहीं जा सकते। इसलिए बीजगणित की प्रक्रिया को कह रहा हूँ। यथाः—

पूर्वं प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तबीजं प्रायःप्रश्ना नो विनाऽव्यक्तयुक्त्या।
ज्ञातुं शक्या मन्दधीभिर्नितान्तं यस्मात्तस्माद्वच्मि बीजक्रियां च ॥ २ ॥

अर्थात् पहले उस व्यक्त गणित को हमने कहा है, जिसका मूल बीजगणित है। बीजगणित के बिना प्रश्न प्रायः नहीं जाने जा सकते। मन्द बुद्धिवालों के द्वारा जानना तो नितान्त कठिन होगा, अतः बीजगणित की प्रक्रिया को कहता हूँ।

इस बीजगणित के अन्दर १—धनर्णषड्विधम् २—ख षड्विधम् ३—अव्यक्तषड्विधम् ४—अनेक वर्ण षड्विधम् ५—करणी षड्विधम् ६—कुट्टक ७—वर्गप्रकृति ८—चक्रवाल ९—एक वर्ण समीकरण १०—एक वर्ण मध्यमाहरण ११—अनेक वर्ण समीकरण १२—अनेक वर्ण मध्यमाहरण १३—भावित। ये १३ प्रकरण दिए गये हैं।

१—धनर्णषड्विधम्-इसमें बीजगणित के संकेतों का यावत् कालक नीलक पीतक-आदि रंगों के प्रतीक रूप में या. का. नी. पी. आदि वर्णों को कल्पित किया गया है। ये इस बात के परिचायक हैं कि बच्चों को समझाने के लिए हमारे पूर्वज पहले यावक आदि रंगों से रंगी हुई गोटियों का प्रयोग करते थे। आजकल क ख ग घ तथा A B C D आदि अक्षरों के द्वारा ही अव्यक्ताङ्कों को संकेतित किया जाता है।

अव्यक्ताङ्कों को जोड़ने घटाने के लिए भास्कराचार्य ने बताया है किः—

योगोन्तरं तेषु समानजात्योः।
विभिन्नजात्योश्च पृथक्स्थितिश्च ॥

अर्थात् अव्यक्त संकेतों में समान जातीयों का ही योग तथा अन्तर होता है। विभिन्न जातीयों को यथास्थित रहने देते हैं।

अव्यक्त वर्णादि कल्पना इस प्रकार हैः—

यावत्तावत् कालको नीलकोऽन्यो
वर्णः पीतो लोहितश्चैतदाद्याः।
अव्यक्तानां कल्पिता मानसंज्ञा-
स्तत्संख्यानं कर्तुमाचार्यवर्यैः ॥ ५ ॥

अर्थात् प्राचीन आचार्यों ने अज्ञात राशियों के मानों का बोध एवं उनकी गणना के निमित्त यावत्तावत्, कालक, नीलक, पीतक, लोहितक, हरीतक, आदि की संज्ञा कल्पित की है जिसे संक्षेप में या, का, नी, पी, लो, और ह आदि कहते हैं।

यहाँ पर यावत्तावत का अर्थ है जितना तितना। प्रतीत होता है कि यावक् शब्द जो लाल महावर का द्योतक था वह आगे चलकर यावत्तावत हो गया, क्योंकि यावत् के स्थान पर 'या' का प्रयोग करते हैं।

यावत्तावत् का अर्थ हुआ जो कुछ भी । किन्तु यह आगे के कालक, नीलक आदि वर्णों के प्रतीक का. नी. पी. आदि संकेतों से भिन्न अर्थ रखता है । इसलिए यहाँ या वर्ण यावक (महावर) के संकेत रूप में ही लेना उचित है ।

अव्यक्त संकेतों के योग तथा अन्तर के लिए भास्कराचार्य कहते हैं कि दो धन तथा दो ऋणात्मक संख्याओं का योग करना चाहिए, किन्तु धन ऋण का योग करना हो तो दोनों का अन्तर ही योग होता है । यथाः—

योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा धनर्णयोरन्तरमेव योगः ।

इसे लौकिक उदाहरणों द्वारा उपपन्न किया जा सकता है । अन्तर के लिए आचार्य का कहना है कि घटाया जाने वाला धन ऋण हो जाता है, और घटाया जाने वाला ऋण धन होता है । यथा सूत्र—

संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति स्वत्वं क्षयस्तद्युतिरुक्तवच्च ॥ १ ॥

व्यवकलन का यह सूत्र गणित साक्षिक है । क्योंकि यदि हम

७ − (५ − २) = ७ − ३ = ४

= ७ − ५ + २ अथवा ७ − (− २ + ५) = ७ + २ − ५ = ४

∴ या − (का − नी) = या − का + नी

गुणन के तथा भागहार के लिए भास्कराचार्य के द्वारा बताये गये नियम भी गणित साक्षिक ही हैं. सूत्र यह हैः—

स्वयोरस्वयोः स्वं वधः स्वर्णघाते क्षयो भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम् ।

अर्थात् धन धन का तथा ऋण ऋण का गुणनफल धन होता है और धन ऋण का गुणनफल ऋण होता है । यही क्रिया भागहार के लिए भी कही गई है । अर्थात् धन धन का भाग हार धन और ऋण ऋण का भागहार धन होता है । तथा धन ऋण का भागहार ऋण होता है । इसको व्यक्त का उदाहरण लेकर उपपन्न किया जाता है । यथाः—

(१० − ३) × (८ − ५) = ७ × ३ = २१ इस उत्तर को पाने के लिए हमें:—

१० (८ − ५) + { − ३ (८ − ५) }

= १० × ८ − १० × ५ + { − ३ × ८ + (− ३ × − ५) }

= ८० − ५० + − २४ + १५ = २१ उपपन्न हुआ ।

ऐसे ही अव्यक्त कल्पना में भी नीचे लिखे अनुसार होगा ।

(य − क) × (न − प)

= य (न − प) + { − क (न − प) }

= य × न + (य × − प) + { − क × न + (− क × − प) }

= य न − य प − क न + क प

दोनों उदाहरणों में धन धन का गुणनफल और ऋण ऋण का गुणनफल धन तथा धन ऋण का गुणनफल ऋण मानने पर ही शुद्ध उत्तर उपलब्ध हुआ है। इसलिए प्रत्यक्ष गणित क्रिया के आधार पर ही भास्करीय नियम सिद्ध हुआ है। यही क्रिया भागहार में भी घटित होगी, क्योंकि धन धन का गुणनफल यदि धन है तो उसमें धन का भाग देने पर धन लब्धि होगी तथा ऋण ऋण का गुणनफल धन है अतः धन में ऋण का भाग देने पर ऋण लब्धि होगी। ऐसे ही धन ऋण का गुणनफल ऋण है तो उसमें धन का भाग देने पर ऋण लब्धि और ऋण का भाग देने पर धन लब्धि होगी।

अव्यक्त का उदारण यथा :—

(+ या) × (+ का) = + या × का इसमें

$$\frac{+\text{या. का}}{+\text{या.}} = +\text{ का}$$

इसी प्रकार − या × − का = + या. का

$$\therefore \frac{+\text{ या. का}}{-\text{का}} = -\text{ या}$$

इसी प्रकार

− या × (+ का) = − या का

$$\therefore \frac{-\text{या. का}}{+\text{का}} = -\text{ या और } \frac{-\text{ या. का}}{-\text{ का}} = +\text{ या}$$

भास्कराचार्य ने ऋण चिन्ह के लिए विन्दु का उपयोग किया है। जैसे—या = यां हुआ और या × का के लिए या. का. भा,। ऐसे ही या × या = या^{२} के लिए या व और या घन के लिए या ध का प्रयोग किया है। $\frac{\text{या}}{\text{का}}$ के लिए बीच में बड़ी पाई न देकर $\begin{matrix}\text{या}\\\text{का}\end{matrix}$ ऐसे ही प्रयोग किया है।

वर्ग, वर्ग मूल:→भास्कराचार्य ने वर्ग तथा वर्ग मूल के लिए नीचे लिखा सूत्र दिया है। :—

कृतिः स्वर्णयोः स्वं स्वमूले धनर्णे।
न मूलं क्षयस्यास्ति तस्याकृतित्वात्।। २।।

धन और ऋण का वर्ग धन होता है तथा धन का मूल धन ऋण दोनों होता है किन्तु ऋण राशि का वर्गमूल नहीं मिलता क्योंकि वह वर्गात्मक नहीं होता।

+ य × + य = + य^{२} और − य × − य = + य^{२} इसलिए $\sqrt{+\text{य}^{२}}$ = य अथवा − य। किन्तु $\sqrt{-\text{य}^{२}}$ इसका वर्गमूल नहीं होगा। क्योंकि यह वर्ग नहीं होता। आधुनिक गणित में $\sqrt{-\text{य}^{२}}$ इसके अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम निकाले गये हैं।

$$\sqrt{-\text{य}^{२}} = \sqrt{-१ \times \text{य}^{२}} = \text{य}\sqrt{-१}$$

यहाँ $\sqrt{-१}$ इसको असम्भाव्य राशि कहते हैं। डिमाइवर थ्योरी इसी के उपर आधारित है। ज्याओं और कोज्याओं का मान इसी के कोफिसेन्ट Coefficient घाताङ्क के रूप में उपलब्ध किया गया है। (त्रिकोण मिति द्वितीय भाग) ट्रिक्नामेट्री का सेकेण्डपार्ट इसके उदाहरणों से भरा पड़ा है। भास्कराचार्य ने + ३ और − ३ का वर्ग + ९ लिखा है। इसके बाद शून्य का षड्विध प्रकार लिखा गया है।

२—शून्य का षड्विध

खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति ।
वधादौ वियत् खस्य खं खेनघाते खहारो भवेत् खेन भक्तश्च राशिः ॥

भास्कराचार्य के मत में शून्य एक ऐसी संख्या है जिसका मान इतना छोटा है कि उसकी सत्ता व्यक्त नहीं की जा सकती है। इसलिए किसी संख्या में उसे जोड़ने अथवा घटाने पर योग फल संख्या तुल्य ही होता है और उस शून्य में से संख्या को घटाने पर वह ऋणात्मक हो जाती है। शून्य शून्य का गुणन फल शून्य ही होता है। तथा किसी राशि को शून्य से गुणा करने पर वह शून्य हो जाती है। किन्तु किसी राशि में शून्य का भाग देने पर वह राशि खहर हो जाती है। यथा $५ \div ० = \frac{५}{०}$। यहाँ योग वियोग तथा गुणन तक के नियम सभी आचार्यों के एक से हैं। किन्तु शून्य से भाग देने पर राशि खहर होती है और वह अनन्त हो जाती इस बात को सर्व प्रथम आचार्य ब्रह्मगुप्त ने लिखा। भास्कराचार्य ने उसी का अनुवाद किया है और उसके अनन्तत्व के लिए बहुत ही सुन्दर साहित्यिक उपमा उपस्थित की है यथा :—

अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ॥ ४ ॥

अर्थात् इस खहर राशि में किसी राशि के जोड़ने तथा घटाने पर इसमें उसी प्रकार कोई विकार नहीं आता जिस प्रकार प्रलय तथा सृष्टि काल में अनन्त अच्युत भगवान में प्राणि वर्गों के प्रवेश और निर्गम से कोई विकार नहीं आता।

जैसे $\frac{\text{अ}}{०} + \text{क} = \frac{\text{अ} + ० \times \text{क}}{०} = \frac{\text{अ} + ०}{०} = \frac{\text{अ}}{०}$ इत्यादि। इसकी उपपत्ति लीलावती के खहर प्रकरण में दी जा चुकी है अतः पुनः प्रस्तुत नहीं किया जाता।

शून्य में शून्य का भाग देने पर लब्धि शून्य होती है। ब्रह्मगुप्त के इस कथन पर भास्कराचार्य ने प्रतिवाद किया है। भास्कराचार्य के मत में ० अत्यन्त छोटी संख्या के रूप में होने के कारण $\frac{०}{०} = १$ के हो सकता है। यद्यपि यह परिमाण पूर्णतः सत्य नहीं है, परन्तु उतने प्राचीन काल में शून्य को नये रूप में प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण है।

३—अव्यक्त षड्विध

भास्कराचार्य ने अव्यक्त षड्विध में व्यक्त और अव्यक्त राशियों के गुणन आदि के लिए निम्नाङ्कित नियम दिया है :—

स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णो द्वित्र्यादिकानां समजातिकानाम् ॥ ६ ॥
वधे तु तद्वर्गघनादयः स्युस्तदभावितं चासमजातिघाते।
भागादिकं रूपवदेव शेषं व्यक्ते यदुक्तं गणिते तदत्र ॥ ७ ॥

अर्थात् व्यक्ताङ्क और वर्ण का गुणनफल व्यक्ताङ्क × वर्ण होता है। यथा $४ \times \text{य} = ४\text{य}$ और समजाति के अव्यक्ताङ्को के दो या तीन घात वर्ग तथा, घन कहे जाते हैं। यदि विषम जाति के वर्णों का घात हो तो वह भावित होता है। यहाँ पर भाग हार आदि शेष क्रिया भी व्यक्तगणित की भाँति ही होगा, जैसा कि पाटीगणित में कहा गया है। जैसे: $२ \times \text{या} = २\ \text{या}$

$\text{या} \times \text{या} = \text{या}^२$। $\text{या} \times \text{या} \times \text{या} = \text{या}^३$

या. का = या. का भा.। या. का. भा. $\times$ या = $\text{या}^२$ का भा. इत्यादि अव्यक्त राशियों की गुणन क्रिया के लिए भास्कराचार्य ने व्यक्त गणित में कहे गये खण्ड गुणन की रीति को ही लिया है। जैसेः—

गुण्यः पृथग्गुणकखण्डसमोनिवेश्य
स्तैः खण्डकैः क्रमहतः सहितो यथोक्त्या ।
अव्यक्तवर्गकरणीगुणनासु चिन्त्यो
व्यक्तोक्तखण्डगुणनाविधिरेवमत्र ॥ ८ ॥

अर्थात् गुणक के जितने खण्ड किये जायँ उतने स्थानों में अलग-अलग गुण्य को स्थापन करके प्रथम स्थान में स्थापित गुण्य को प्रथम खण्ड से द्वितीय स्थान में स्थापित गुण्य को द्वितीय खण्ड से, तृतीय स्थान में स्थापित गुण्य को तृतीय खण्ड से 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौतुवर्णः' इस पूर्व कथित प्रकार से गुणाकर **'योगे युतिः स्यात्क्षययोः स्वयोर्वाधनर्णयोरन्तरमेवयोगः'** इस तरह सबों का योग करने से गुणनफल हो जायेगा । तथा अव्यक्त वर्ग, करणी, इन सबों के गुणन में पाटीगणितोक्त खण्डगुणन विधि करना चाहिए । यथा कल्पना किया गुण्य = या + का + नी, और गुणक = पी + लो

गुणनफल = (पी + लो) (या + का + नी)
= पी (या + का + नी) + लो (या + का + नी) उपपन्न हुआ ।

अव्यक्त भागहार के लिए भी आचार्य ने व्यक्तगणित की भाँति ही क्रिया दिखा करके लब्धियाँ लायी हैं । यथाः—

भाज्याच्छेदः शुद्धयति प्रच्युतः सन् स्वेषु-स्वेषु स्थानकेषु क्रमेण ।
यैर्यैवर्णैः संगुणैर्यैश्च रूपैर्भागाहारे लब्धयस्ताः स्युरत्र ॥ ९ ॥

अर्थात् यद्यपि पाटीगणित में कथित **'भाज्याद्धरः शुद्धचति'** इत्यादि प्रकार से यहाँ पर भी भजन-विधि चल सकता है, तथापि वर्णों के भजन में कुछ अन्तर होने के कारण फिर उक्त प्रकार से भागहार का प्रकार लिखते हैं । जैसे जिन २ वर्ण और रूपों से गुणित भाजक, भाज्य में घटाने से शुद्ध हो जाय वही भजन विधि में लब्धि होती है ।

(१) $\frac{\text{य}^{2}\text{क} \pm \text{य ग}}{\text{य}} = \text{य क} \pm \text{ग}$

(२) $\frac{\text{य}^{2}\text{क} \pm \text{३ य ग}}{\text{य}} = \text{२ य क} \pm \text{३ ग}$

भास्करीय उदाहरण इस प्रकार है :—

भाजक ३ या + २ और भाज्य १५ या व + ७या − २ तो $\frac{\text{१५ या व} + \text{७ या} - \text{२}}{\text{३ या} + \text{२}} = \text{५ या} - \text{१}$

पूर्ण विधि इस प्रकार ज्ञात करेः—

भाजक   भाज्य   लब्धि

३ या + २) १५ या व + ७ या − या (५ या − १
१५ या व + १० या
− ३ या − या
− ३ या − या
×

वर्ग और वर्गमूल:…अव्यक्ताङ्को का वर्ग भी गुणन की रीति से ही सम्पन्न होता है। इसलिए भास्कराचार्य ने उसके लिए कोई नियम नहीं दिया। क्योंकि ये गुणन से ही स्पष्ट हो जाते हैं। जैसे:—

$$य+क+ग \text{ का वर्ग} = (य+क+ग) \times (य+क+ग)$$

$$= य^2 + क^2 + ग^2 + २ यक + २ यग + २ कग$$

यहाँ पर जितनी वर्ग करने के लिए राशियाँ हैं उनके संकलित तुल्य वर्गराशि में पद होते हैं। जैसे:— य+क+ग में तीन राशियों के योग का वर्ग करना है और उनके योग के वर्ग में ६ राशियाँ हैं। इनमें तीन राशियाँ तो तीनों के वर्ग हैं और शेष तीन राशियाँ दोनों के परस्परगुणन के दूनी हैं। इसलिए वर्गमूल लाने के लिए वर्गराशियों का वर्गमूल लाकर उनके परस्पर के गुणनफलों के दूने को वर्गराशि के शेष पदों में घटा देने पर वर्गराशि निःशेष होगी और वर्गमूल को तीन राशियों का योग होगा। भास्कराचार्य का सूत्र इस प्रकार है।

कृतिभ्य आदाय पदानि तेषां द्वयोर्द्वयोश्चाभिहतिं द्विनिघ्नीम्।
शेषात् त्यजेद्रुपपदं गृहीत्वा चेत् सन्ति रूपाणि तथैव शेषम्॥ १०॥

अर्थात् अव्यक्त राशि के वर्गमूलानयन के लिये वर्ग राशि में जितने अव्यक्त वर्गराशि हैं उन सबों का पहले मूल लेकर अलग रक्खें। उन मूल राशियों में से दो दो राशियों के घात को दूना करके शेष में घटाने से मूल होता है।

इसी प्रकार वर्गराशि में वर्गात्मक रूप हों तो उनका मूल ले करके उक्त प्रकार से क्रिया करनी चाहिए। तथा जिस राशि में रूपात्मक खण्ड का मूल न मिले तो उस राशि को अवर्गात्मक समझना चाहिए।

राशि = (य+क) उसका वर्ग = $य^2 + २ यक + क^2$ इस वर्गराशि में तीन खण्ड विद्यमान हैं। इसमें प्रथम तृतीय का मूल हुआ य, क इनका द्विगुणित घात अन्तरित करने पर मूल मान = (य+क)। यही राशि यदि खण्डत्रयात्मक हो तो (य+क+न) इसका वर्ग = (य+क+न) × (य+क+न) = ($य^2 + २ यक + २ यन + क^2 + २ कन + न^2$) इसमें ६ खण्ड हैं। अतः प्रथम चतुर्थ षष्ठ का मूल = य, क, न तथा इनके दो दो वर्णों का द्विगुण घात अन्तरित करने पर मूल = (य+क+न) सिद्ध हुआ।

४—अनेक वर्ण षड् विध—इसके बाद भास्कराचार्य ने अनेक वर्ण का योग-वियोग गुणन भजन आदि का उदाहरण प्रस्तुत किया है जो पूर्व विधियों से गतार्थ है।

५—करणी षड्विध—जिन व्यक्ताङ्कों का वर्गमूल नहीं मिलता उनका मूल करणी कहलाता है जैसे ३ का वर्गमूल नहीं होता इसलिए इसके वर्गमूल को क ३ लिखेंगे। आधुनिक परिभाषा में ३ का वर्गमूल $\sqrt{३}$ होगा। ऐसी करणी राशियों के योग वियोग, गुणन भजन और वर्ग वर्गमूल को करणी षडविध कहते हैं। उन्हीं करणियों का योग अथवा अन्तर हो सकता है जिनके गुणनफल का वर्गमूल मिल जाय भास्कराचार्य ने ऐसी करणियों के योग ओर अन्तर के लिए सूत्र दिया है यथा :—

योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य वधस्य मूलं द्विगुणं लघुं च।
योगान्तरे रूपवदेतयोः स्तो वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च॥ ११॥
लध्व्याहृतायास्तु पदं महत्याः सैकं निरेकं स्वहतं लघुघ्नम्।
योगान्तरे स्तः क्रमशस्तयोर्वा पृथक् स्थितिःस्यायदिनास्तिमूलम्॥

अर्थात् जिन दो करणियों के योगान्तर करना ही उनका योग करके महती संज्ञा कल्पना करे। फिर उनके घात को द्विगुणित करके लघु संज्ञा कल्पना करे। इस प्रकार आई हुई महती, लघु दोनों करणियों का रूप के समान योग और अन्तर करना। करणियों के गुणन में जो गुण्य, गुणक हों और भजन में जो भाज्य, भाजक हों उनको रूप के वर्ग से गुणन भजन करना चाहिए।

योज्य, योजक और वियोज्य, वियोजक रूप दो करणियों में जो बड़ी हो उसको महती और जो छोटी हो उसको लघु कल्पना करे। फिर महती में लघु का भाग देने से जो लब्धि मिले उसके मूल को दो स्थानों में रक्खें। प्रथम स्थान में १ जोड़कर तथा दूसरे स्थान में एक घटाकर जो फल मिले उनके वर्ग को लघु करणी से गुण देना चाहिए वे ही उन दोनों के योगान्तर होंगे।

अगर महती करणी में लघुकरणी का भाग देने से जो फल सिद्ध हो उसका मूल न मिले तो उनको एक पंक्ति में अलग २ लिख देना चाहिए।

अवर्गात्मक राशियों के मूलानयन के लिए आचार्य ने एक पृथक् करणी संज्ञा दिया है।

यथा—अवर्गात्मक राशि = ५ इसका मूल = क ५ आधुनिक गणितज्ञ इसे $\sqrt{५}$ लिखते हैं।

इनका योगान्तर करने के लिए $\sqrt{य}, \sqrt{क}$ दो करणी कल्पना किया।

$$\therefore \sqrt{य} + \sqrt{क} = \sqrt{(\sqrt{य} + \sqrt{क})^२}$$

$$= \sqrt{य \pm २\sqrt{य} \times \sqrt{क} + क} = \sqrt{य + क + २\sqrt{यक}}$$

यहाँ महती = य + क, और लघु = $२\sqrt{यक}$

$$\therefore (\sqrt{य} - \sqrt{क})^२ = य + क - २\sqrt{य} \times \sqrt{क} > ०।$$

अतः $य + क २ > \sqrt{य} \times \sqrt{क}$

पूर्णाङ्क रूप की तरह क्रिया करने पर

$४\sqrt{य} = \sqrt{१६ य}$, इन वर्गों से वर्ग को गुणा करे।

$\frac{\sqrt{य}}{४} = \frac{\sqrt{य}}{\sqrt{१६}}$ इन वर्गों से वर्ग को भाग दे।

द्वितीय प्रकार यथा :—

$$\sqrt{य} \pm \sqrt{क} = \frac{\sqrt{क}\ (\sqrt{य} \pm \sqrt{क})}{\sqrt{क}}$$

$$= \sqrt{क}\left(\frac{\sqrt{य}}{\sqrt{क}} \pm \frac{\sqrt{क}}{\sqrt{क}}\right)$$

$$= \sqrt{क}\left(\frac{\sqrt{य}}{\sqrt{क}} \pm १\right)$$

$$= \sqrt{क}\left(\frac{|य}{\sqrt{क}} \pm १\right)$$

$$= \sqrt{क\left(\frac{|य}{\sqrt{क}} \pm १\right)^२}$$ उत्पन्न हुआ

आधुनिक समय में भी करणियों का योग अन्तर इन्हीं नियमों के परीष्कृत रूप से किया जाता है। जैसे :—

$$\sqrt{२} + \sqrt{१८} = \sqrt{२}\,(\sqrt{१} + \sqrt{९} = \sqrt{२}\,(१ + ३)$$
$$= \sqrt{२}\,(४) = \sqrt{२ \times १६} = \sqrt{३२} \text{ तथा}$$
$$\sqrt{१८} - \sqrt{२} = \sqrt{२}\,(३ - १) = \sqrt{२ \times २} = \sqrt{८}$$

भास्कराचार्य के सूत्र सामान्य गणित प्रक्रिया के लिए अत्यन्त ही उपयगी हैं। समय को देखते हुए उनके नियम समय से आगे प्रतीत होते हैं।

करणी का गुणन, भजन—करणी का गुणन भजन भी गणितीय खण्डगुणन की प्रक्रिया के अनुसार किया गया है। किन्तु ऋणात्मक करणी का वर्ग ऋणात्मक और धनात्मक करणी का वर्ग धनात्मक तथा ऋणात्मक करणी का मूल ऋणात्मक माना गया है। सूत्र इस प्रकार है :—

> क्षयो भवेच्च क्षयरूपवर्ग श्चेत् साध्यतेऽसौ करणीत्वहेतोः।
> ऋणात्मिकायाश्च तथा करण्या मूलं क्षयो रूपविधानहेतोः॥ १३॥

अर्थात्—ऋण रूप का वर्ग करणी रूप में ऋण होता है और ऋण करणी का मूल रूपात्मक ऋण होता है।

$$(-\sqrt{२५} + \sqrt{३} + \sqrt{१२})\,(\sqrt{२५} + \sqrt{३})$$
$$= (-\sqrt{२५} + \sqrt{२७})\,(\sqrt{२५} + \sqrt{३})\text{। यहाँ } \sqrt{३} + \sqrt{१२} = \sqrt{२७}$$
$$= -\sqrt{६२५} + \sqrt{६७५} - \sqrt{७५} + \sqrt{८१} \text{ इनमें}$$
$$-\sqrt{६२५} \text{ तथा } \sqrt{८१} \text{ का मूल} = -२५ + ९ = -१६$$
$$= \sqrt{६७५} - \sqrt{७५} = \sqrt{३००}$$
$$\text{उत्तर } -१६ + \sqrt{३००}$$

वास्तव में यह करणी $(-५ + \sqrt{२७})\,(५ + \sqrt{३})$ इसी का गुणनफल करणी के रूप में परिणत किया गया है। इसका $-१६ + \sqrt{३००}$ गुणनफल हुआ।

करणी के भागहार के लिए गुणक और भाजक दोनों में ऐसी करणियों के योगान्तर से गुणा किया जाय जिसमें धन ऋण का व्यत्यास हो तो भाजक में एक ही करणी हो जायेगी। जैसे :—

$\sqrt{५} + \sqrt{३}$ में $\sqrt{५} - \sqrt{३}$ से गुणा करने पर फल ५ − ३ होगा = २ इसका वर्ग करने पर एक ही $\sqrt{४}$ हो जायेगा। इसी प्रकार अनेक धन + ऋण − वाले भाजकों में भी धन ऋण के व्यत्यास का गुणा करके एक करणी बना लेना चाहिए। यदि भाज्य में भाजक का भाग देने पर लब्ध करणियाँ योगात्मक हों तो उन्हें विश्लेष सूत्र से पृथक् कर लेना चाहिए, जैसा कि प्रश्न कर्ता को अभीष्ट हो। सूत्र इस प्रकार है :—

> धनर्णताव्यत्ययमीप्सितायाश्छेदे करण्या असकृद्विधाय।
> तादृक्छिदा भाज्यहरौ निहन्यादेकैव यावत् करणी हरे स्यात्॥ १४॥
> भाज्यास्तया भाज्यगताः करण्यो लब्धाः करण्यो यदि योगजाः स्युः।
> विश्लेषसूत्रेण पृथक् त्र कार्यास्तथा यथा प्रस्टुरभीप्सिताः स्युः॥ १५॥

अर्थात्—भाजक स्थित करणियों में से किसी एक करणी के धन ऋण चिन्ह को बदलकर उस हर से भाजक और भाज्य को गुण देना चाहिए। इस गुणन क्रिया को तब तक करते रहना उचित है जब तक हर में एक ही करणी न हो जाय। जब एक करणी आ जाय तब उस करणी का भाज्य में स्थित करणियों में भाग देने से जो लब्धि मिले वही इष्ट करणी होगी।

विश्लेष सूत्र यद्यपि करणी के भाग फल से ही सम्बद्ध नहीं है। अपि च इसका पृथक् ही अस्तित्व है फिर भी भास्कराचार्य ने इसको यहाँ पर लिखा है। यथा :—

> वर्गेण योगकरणी विहृता विशुद्धयेत्
> खण्डानि तत्कृतिपदस्य यथेप्सितानि।
> कृत्वा तदीयकृतयः खलु पूर्वलब्ध्या
> क्षुण्णा भवन्ति पृथगेवमिमाः करण्यः॥ १६॥

योग करणी को किसी महत्तम वर्ग से भाग देकर उसके वर्गमूल का यथेष्ट खण्ड करके फिर उन खण्डों के वर्गों को पूर्व लब्ध करणी से गुणा करने पर योग करणी के अभीष्ट करणी खण्ड होंगे। उपपत्ति इस प्रकार है।

यहाँ पर करणी मान = अ $\sqrt{क}$

यदि अ = य + न + प, तो

अ $\sqrt{क} = (य + न + प)\sqrt{क} = य\sqrt{क} + न\sqrt{क} + प\sqrt{क}$

$= \sqrt{य^२ क} + \sqrt{न^२ क} + \sqrt{प^२ क}$ यह सिद्ध हुआ।

उदाहरणः—योग करणी = ५० महत्तम वर्ग २५ से भाग देने पर

$\sqrt{५०} = \sqrt{२} \times \sqrt{२५}$

$\therefore \sqrt{५०} \div \sqrt{२५} = \sqrt{२} \quad \sqrt{५०} = \sqrt{२}(५)$

अब यहाँ ५ = १ + १ + १ + १

$\therefore \sqrt{२}(५) = \sqrt{२}\sqrt{(\sqrt{१^२} + \sqrt{१^२} + \sqrt{१^२} + \sqrt{१^२} + \sqrt{१^२}}$

$= \sqrt{२} + \sqrt{२} + \sqrt{२} + \sqrt{२} + \sqrt{२}$

अभय $\sqrt{२} \times ५ = \sqrt{२}(२ + ३) = \sqrt{२}\sqrt{\sqrt{२^२} + \sqrt{३^२}} =$

$= \sqrt{२ \times ४} + \sqrt{२ \times ९} = \sqrt{८} + \sqrt{१८}$

करणी वर्ग :—दो या अधिक करणियों के योग अथवा अन्तर का वर्ग सामान्य वर्गप्रक्रिया के अनुसार ही है। इसमें केवल करणी रूप लाने के लिए द्विगुणित करणी के गुणक पदों को ४ गुणित कर दिया जाता है। जैसे :—

$(\sqrt{३} + \sqrt{२})^२ = (\sqrt{३})^२ + (\sqrt{२})^२ + २\sqrt{३} \times \sqrt{२}$

$= ३ + २ + २\sqrt{६} = ५ + \sqrt{४ \times ६} = ५ + \sqrt{२४}$

इसी प्रकार $\sqrt{२} + \sqrt{३} + \sqrt{५}$ का वर्ग =

$= २ + ३ + ५ + २\sqrt{२} \times \sqrt{३} + २\sqrt{२} \times \sqrt{५} + २\sqrt{३} \times \sqrt{५}$

$= १० + \sqrt{२४} + \sqrt{४०} + \sqrt{६०}$

भास्कराचार्य ने करणी के वर्गमूल के लिए नई विधि का प्रतिपादन किया है जैसे :—

> एकादिसंकलितमितकरणीखण्डानि वर्गराशौ स्युः।
> वर्गे करणीत्रितये करणीद्वितयस्य तुल्यरूपाणि॥ २०॥

करणीषट्के तिसृणां दशसु चतसृणां तिथिषु च पञ्चानाम्।
रूपकृते, प्रोह्य पदं ग्राह्यं चेदन्यथा न सत् क्वापि ॥ २१ ॥
उत्पत्स्यमानयैवं मूलकरण्याऽल्पया चतुर्गुणया।
यासामपवर्त्तः स्याद्रूपकृतेस्ता विशोध्याः स्युः ॥ २२ ॥
अपवर्त्तादपि लब्धा मूलकरण्यो भवन्ति ताश्चापि।
शेषविधिना न यदि ता भवन्ति मूलं तदा तदसत् ॥ २३ ॥

अर्थात् करणी के वर्ग में एक आदि किसी संख्या के संकलित के समान करणी खण्ड होते हैं, अतः करणीवर्ग में यदि तीन करणी खण्ड हो तो मूलानयन के समय रूप वर्ग में दो करणीखण्ड को घटाकर मूल लेना चाहिए। यतः दो का संकलित तीन होता है।

यदि वर्ग राशि में ६ करणी खण्ड हों तो रूप वर्ग में तीन करणीखण्डों को घटाकर मूल लेना चाहिए। एवं वर्ग राशि में दश करणीखण्ड हों तो रूप वर्ग में चार करणी खण्डों को घटाकर मूल लेना चाहिए। तथा वर्ग राशि में पन्द्रह करणी हों तो रूप वर्ग में पांच करणीखण्डों को घटाकर मूल लेना चाहिए। इस नियम के विना मूल ग्रहण करने से मूलानयन अशुद्ध होगा।

इस तरह जो छोटी मूल करणी उत्पन्न होगी उसको चतुर्गुणित करके उससे जिन करणी खण्डों में अपवर्त्तन लगे उनको रूप के वर्ग में से घटाना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त नियमानुसार रूप वर्ग में करणीखण्डों को घटाने से जो मूल करणी मिलेगी उससे घटाये हुए करणीखण्ड अवश्य निःशेष होंगे। अगर निःशेष न हो तो मूल अशुद्ध है ऐसा जानना चाहिए। तथा घटाये हुए करणी के खण्डों में चतुर्गुणित मूलकरणी का अपवर्त्तन देने से जो मूलकरणी होगी। यदि वे शेष विधि से न आवे तो वह मूल अशुद्ध जानना चाहिए।

अर्थात् रूप के वर्ग में एकादि संकलितमान जितने करणी खण्डों का योग घट जाय उनको घटाकर शेष के मूल को रूप में युत, ऊन करके आधा करने से जो दो करणियाँ उत्पन्न हों उनमें छोटी करणी के चतुर्गुणित सम संख्या से घटी हुई करणियों में भाग देने से जो लब्धि मिले वे ही शेष विधि से (वर्गे करण्या यदि वा करण्योस्तुल्यानिरूपाणि) आ जाय तो शुद्ध अन्यथा अशुद्ध जानना चाहिए।

उदाहरण:—

$१० + \sqrt{२४} + \sqrt{४०} + \sqrt{६०}$ इसका वर्ग मूल लेना है। इसमें दो का योग १० के वर्ग में घटानेपर $१०० - (२४ + ४०) = ३६$ इसका वर्गमूल ६ हुआ इसको १० में जोड़ घटा कर आधा करने पर

$(१० + ६) = १६ \div २ = ८$। $(१० - ६) = ४ \div २ = २$

फिर ८ के वर्ग में शेष करणी ६० को घटाने पर ४ शेष हुआ; अतः ४ के वर्ग मूल २ को ८ में जोड़ घटाकर आधा करने पर क्रमशः ५, ३ हुआ। इसलिए $१० + \sqrt{२४} + \sqrt{४०} + \sqrt{६०}$ का वर्ग मूल $\sqrt{२} + \sqrt{३} + \sqrt{५}$ हुआ।

इसको लाने के लिए वर्ग राशि में किन्ही दो करणियों का योग करने के बाद १० के वर्ग में घटा कर पूर्ववत् क्रिया करने पर यही लब्धि होगी।

भास्कराचार्य के कथनानुसार ध्यान इस बात का रखना है कि वर्गराशि कितने करणियों की है। यदि वर्ग राशि में १ करणी है। तो वह दो करणियों का योग है। यदि ३ करणी है तो ३ करणियों का योग है। यदि करणी ६ है तो ४ करणियों का योग होगा। यदि १० करणी है तो ५ करणियों का योग होगा।

इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए अतः करणियों के वर्ग के योग स्वरूप पूर्णाङ्क राशि के वर्ग में कितनी करणियों का योग घटाना चाहिए, पहले इसका निर्धारण कर लेना चाहिए। जैसा कि भास्कराचार्य ने सूत्र में दिया है। उदाहरण :—

१६ + $\sqrt{१२०}$ + $\sqrt{७२}$ + $\sqrt{६०}$ + $\sqrt{४८}$ + $\sqrt{४०}$ + $\sqrt{२४}$ का मूल ग्रहण कर और रूप १६ का वर्ग २५६ में − $\sqrt{१२०}$ + $\sqrt{७२}$ + $\sqrt{४८}$ = २५६−२४० = १६ इसका मूल = ४ हुआ। इसको १६ में युत और ऊन करके आधा करने पर १०, ६ हुआ। पुनः १० का वर्ग = १०० में से $\sqrt{६०}$ + $\sqrt{२४}$ घटाने पर १००−८४ = १६ रहा इसका मूल = ४ इसे १० में युत, ऊन कर आधा करने पर राशि ७; ३ हुई। पुनः ७ का वर्ग ४९ में शेष करणी ४० को घटाया तो ९ शेष रहा इसका मूल = ३ हुआ इसको रूप में जोड़ने और घटाने से १०, ४ तथा आधा ५.२ हुआ अब वर्ग राशि में शेष करणी नहीं है अतः मूल करणी :−

= $\sqrt{६}$ + $\sqrt{३}$ + $\sqrt{५}$ + $\sqrt{२}$ हुई।

इस प्रकार भास्कराचार्य ने करणी का वर्ग मूल लाने के लिए एक दृढ़ नियम की उद्भावना की है। प्राचीनाचार्यों ने ऐसे नियमों को कहा है जिससे कि करणी का वर्गमूल सर्वथा वास्तविक नहीं आ सकता। उन नियमों से अनेक ऐसे उदाहरणों का वर्गमूल निकल आता है जो वास्तव में करणी के योग अथवा अन्तर के वर्ग नहीं है।

भास्कराचार्य के पूर्वाचार्यों का मूल उदाहरण इस प्रकार दिखलाया गया है। श्लोक उदाहरण के अनुसार करणी में तीन खण्ड हैं इसलिए रूप के वर्ग में पहले दो करणी खण्डों के योग तुल्य रूप को घटाकर मूल ग्रहण करना चाहिए। किन्तु इस युक्ति से मूल नहीं मिलता। जैसे :—

१० + $\sqrt{२४}$ + $\sqrt{८}$ + $\sqrt{३२}$ इस उदाहरण में।

१० का वर्ग १०० + $\sqrt{२४}$ + $\sqrt{८}$ के योग तुल्य रूप ३२ को घटाने से शेष ६८ का मूल नहीं मिलता। अतः यहाँ पर इस नियम को न मानकर रूप वर्ग १०० में तीनों करणियों के योग तुल्य रूप ६४ को घटाने से शेष = ३६ का मूल ६ मिला।

इसको १० में जोड़ने घटाने से १६, ४ हुआ। इसका आधा करने पर ८, २ हुआ। परन्तु $\sqrt{८}$ $\sqrt{२}$ यह उदिष्ट वर्ग राशि का वास्तव मूल नहीं है। क्योंकि $\sqrt{८}$ और $\sqrt{२}$ का वर्ग १० + $\sqrt{६४}$ = १८ अथवा पूर्वोक्त प्रकार से $\sqrt{३२}$ + $\sqrt{८}$ का योग किया त $\sqrt{७२}$ हुआ। अतः वर्गराशि = १० + $\sqrt{७२}$ + $\sqrt{२४}$ हुई।

अब रूप वर्ग १०० में $\sqrt{७२}$ + $\sqrt{२४}$ के योग तुल्य रूप ९६ घटाने से शेष = ४ हुआ, इसका मूल दो को रूप १० में जोड़ने और घटाने से १२, ८ हुए, इनका आधा ६, ४। अतः मूल करणी = $\sqrt{४}$ + $\sqrt{६}$ = २ + $\sqrt{६}$

यह मूल भी ठीक नहीं है क्योंकि इसका वर्ग = १० + $\sqrt{९६}$ होता है।

अतः यह उदाहरण दुष्ट है ऐसा समझना चाहिए।

६ कुट्टक—

इसप्रकरण में भास्कराचार्य ने बीजगणित में लीलावती के ही सूत्रों तथा उदाहरणों को लिया है। उसके केवल ३ श्लोक अधिक हैं, जिनमें एक में क्रियालाघव का सूत्र दिया हुआ है, तथा दोपूर्वसूत्रों के अनुवाद मात्र हैं। इसलिए किसी अधिक अपेक्षा के न रहने के कारण कुट्टक प्रकरण को छोड़ दिया जाता है।

७ वर्ग प्रकृति :—

कुट्टक और वर्ग प्रकृति ये दोनों बीजगणित की भाषा में अनीर्णीत समीकरण कहे जाते हैं जिनमें कुट्टक का स्वरूप है य × ग = र × क + ख और वर्गप्रकृति में किसी स्थिर संख्या से गुणित वर्गराशि में जितना जोड़ घटा देने पर वह किसी अन्य संख्या का वर्ग हो जाता है, ऐसे उदाहरण को वर्ग प्रकृति कहते हैं। अर्थात् :—

$प \times य^2 \pm क्ष = र^2$

इसमें य को ह्रस्व प को प्रकृति और क्ष को क्षेप तथा र को ज्येष्ठ कहते हैं। उदाहरण :—

को वर्गोऽष्टहतः सैकः कृतिः स्याद्गणकोच्यताम्।
एकादशगुणः को वा वर्गः सैकः कृतिर्भवेत्॥ १॥

कौन ऐसा वर्ग है जिसमें ८ से गुणाकर १ जोड़ दें तो वह किसी अन्य संख्या का वर्ग हो जाय। अथवा कौन ऐसा वर्ग है; जिसमें ११ से गुणा करें और १ जोड़ दें तो वह किसी अन्य संख्या का वर्ग हो जाय। इन दोनों उदाहरणों में ८ और ११ प्रकृति और १ क्षेप है। अज्ञात वर्गों में प्रथम का मूल ह्रस्व और द्वितीय का मूल ज्येष्ठ है। इस प्रथम उदाहरण में १ के वर्ग में ८ का गुणाकर १ जोड़ दें, तो वह ९ अथवा ३² हो जाता है। द्वितीय उदाहरण में ३ के वर्ग में ११ से गुणाकर १ जोड़ने पर १० का वर्ग हो जाता है।

भास्कराचार्य ने इन उदाहरणों पर से भावना के द्वारा अन्य अनेक ह्रस्व ज्येष्ठों को लाया है। इसलिए उपरोक्त समीकरण में य और र के मान अथवा ह्रस्व ज्येष्ठ के मान अनेक होंगे। उनके लिए भावना किस प्रकार की जाय इसके लिए भास्कराचार्य का सूत्र नीचे लिखे अनुसार है :—

इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णो युक्तो वर्जितो वा स येन।
मूलं दद्यात् क्षेपकं तं धनर्णं मूलं तच्च ज्येष्ठमूलं वदन्ति॥ १॥

ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकान् न्यस्त तेषां
तानन्यान् वाऽधो निवेश्य क्रमेण।
साध्यान्येभ्यो भावनाभिर्बहूनि
मूलान्येषां भावना प्रोच्यतेऽतः॥ २॥
वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलध्वोस्तदैक्यं
ह्रस्वं लध्वोराहतिश्च प्रकृत्या।
क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग् ज्येष्ठमूलं
तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकः स्यात्॥ ३॥
ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वा
लध्वोर्घातो यः प्रकृत्या विनिघ्नः।
घातो यश्च ज्येष्ठयोस्तद्वियोगो
ज्येष्ठं क्षेपोऽत्रापि च क्षेपघातः॥ ४॥

इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यादिष्टभाजिते।
मूले ते स्तोऽथवा क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे॥ ५॥
इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत्।
द्विघ्नमिष्टं कनिष्ठं तत् पदं स्यादेकसंयुतौ॥
ततो ज्येष्ठमिहानन्त्यं भावनाभिस्तथेष्टतः॥ ६॥

पहले किसी राशि को इष्ट कल्पना कर उसके वर्ग को प्रकृति से गुण देने से गुणन फल जो मिले उसमें अङ्क युत या ऊन करने से मूल प्रद हो वह धन या ऋण क्षेप कहलाता है।

मूल जो मिले उसको ज्येष्ठ मूल कहते है। इष्ट राशि को ह्रस्व, लघु और कनिष्ठ भी कहते हैं।

पूर्व प्रकार से एक तरह के ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेप जानकर अनेक तरह के ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेप जानने का प्रकार यह है।

पूर्व सिद्ध ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेप को एक पंक्ति में लिख करके उसके नीचे उसी ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेप को लिखना चाहिए। तथा इन दोनों के भावनावश अनेक ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध करना चाहिए। भावना इस प्रकार होगी :—

समास-भावना तथा अन्तरभावना से भावना के दो प्रकार हैं। पहले समास भावना पदों के महत्व-बोध के लिए कहते हैं।

ज्येष्ठ और लघु का जो वज्राभ्यास (तिर्य्यग्गुणन्) हो उनका योग ह्रस्व होता है (जिसे कनिष्ठ भी कहते हैं) अर्थात् ऊपर की पंक्ति में जो कनिष्ठ हो उससे नीचे के ज्येष्ठ को और नीचे की पंक्ति में स्थित कनिष्ठ से उपर में स्थित ज्येष्ठ को गुणाकर गुणनफलों का योग करने से योगफल कनिष्ठ होता है।

कनिष्ठों के घात को प्रकृति से गुणाकर गुणनफल में ज्येष्ठों के घात को जोड़ने से जो योगफल हो वह ज्येष्ठ मूल होगा और दोनों क्षेपों का घात नया क्षेप होगा। इस तरह समास भावना होगी।

अन्तर भावना। इससे पदों का लघुमान जाना जाता है। जैसे:—

ज्येष्ठ और कनिष्ठ का परस्पर वज्राभ्यास रूप घात के अन्तर कनिष्ठ होता है। कनिष्ठों के घात को प्रकृति से गुणा कर एक स्थान में और ज्येष्ठों के घात को दूसरे स्थान में रखना चाहिए,। इन दोनों का अन्तर करने से ज्येष्ठ मूल होगा। तथा क्षेपों का घात क्षेप होगा।

विशेष यह है कि पहले जिस क्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ सिद्ध हुए हैं अगर वह क्षेप इष्ट वर्ग के भाग देने से अभीष्ट क्षेप हो जाय तो कनिष्ठ और ज्येष्ठ पद में केवल इष्ट के भाग देने से अभीष्ट ज्येष्ठ और कनिष्ठ पद हो जायेगा।

यदि इष्ट वर्ग द्वारा गुणित क्षेप, क्षेप सिद्ध हो जाय तो इष्ट गुणित कनिष्ठ और ज्येष्ठ होंगे। अन्यविशेष इस प्रकार है :—

इष्ट वर्ग, प्रकृति इन दोनों का अन्तर जो हो उससे द्विगुण इष्ट में भाग देने से रूप १ क्षेप में कनिष्ठ हो जायगा। फिर उस कनिष्ठ पर से **इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः** इत्यादि नियमानुसार ज्येष्ठ लाना चाहिए। इस तरह कनिष्ठ, ज्येष्ठ के द्वारा भावना वश अनेक कनिष्ठ, ज्येष्ठ सिद्ध होंगे।

यह वर्ग प्रकृति की भावना केवल भास्कराचार्य की अपनी उपलब्धि है (आविष्कार है)। प्राचीन गणितज्ञों ने इसकी उपपत्ति बड़े विस्तृत रूप में किया है, उन्हीं के सार रूप में वापूदेव शास्त्री जी ने नवीन चिन्हों से पोषित वीजगणित द्वारा इसकी उपपत्ति सिद्ध की है। यथा:—

$क^{2}. प्र. + \underline{क्षे} = ज्ये^{2}$

$क^{2}. प्र. + \overline{क्षे}' = ज्ये'^{2}$

अतः $\pm$ क्षे = ज्ये^{2} − क^2. प्र = (१)

$\pm$ क्षे$'$ = ज्ये$'^2$ − क$'^2$ प्र (२) इनके घात से

($\pm$ क्षे) × ($\pm$ क्षे$'$) = (ज्ये^{2} − क^2 प्र) (ज्ये$'^2$ − क$'^2$ प्र.) अथवा

क्षे × क्षे = ज्ये.^{2} ज्ये$'^2$ − क^2. प्र. ज्ये$'^2$ − क$'^2$ प्र ज्ये^{2} + क^2. क$'^2$. प्र^2

द्वितीय पक्ष में २ प्र. क, क$'$. ज्ये. ज्ये$'$ इसके योग अन्तर से

दो. दो$'$ = ज्ये^{2}. ज्ये$'^2$ − क^2. प्र. ज्ये$'^2$ − क$'^2$ प्र. ज्ये^{2} + क^2 क.$'^2$ प्र^2 +

२ प्र. क. क$'$. ज्ये. ज्ये$'$ − २ प्र. क. क$'$ ज्ये. ज्ये$'$

= ज्ये^{2} ज्ये$'^2$ $\pm$ २ प्र. क. क$'$. ज्ये. ज्ये$'$ + क.^{2} क$'$.^{2} प्र^2 − ज्ये.^{2} क$'$.^{2} प्र. $\mp$

२ प्र. क. क$'$. ज्ये. ज्ये$'$ − प्र. क^2. ज्ये$'^2$

= (ज्ये. ज्ये$'$ $\pm$ प्र. क. क$'$)^2 − प्र (ज्ये. क$'$ $\pm$ ज्ये$'$. क)^2

यहाँ कनिष्ठ का मान ज्ये. क$'$ $\pm$ ज्ये.$'$ क यह हुआ

ज्येष्ठ पद का मान ज्ये. ज्ये$'$ $\pm$ प्र. क. क$'$ इसलिए क्षेप = क्षे × क्षे$'$ सिद्ध हुआ।

आलाप द्वारा :—

प्र० क^2 $\pm$ क्षे = ज्ये^{2} इष्ट वर्ग से भाग देने पर

प्र. $\frac{क^2}{इ^2} \pm \frac{क्षे^2}{इ^2} = \frac{ज्ये^2}{इ^2}$

वा प्र. $\left(\frac{क}{इ}\right)^2 \pm \frac{क्षे}{इ^2} = \left(\frac{ज्ये}{इ}\right)^2$ इससे इष्ट वर्गहृतः क्षेपः यह पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है।

पुनः यदि दोनों पक्षों प्र. क^2 $\pm$ क्षे = ज्ये^{2} इष्ट वर्ग से गुणा करें तो इ.^{2} प्र. क^2 $\pm$ क्षे. इ^2=ज्ये.^{2} इ^2

यहाँ इ. क = कनिष्ठ, इ. ज्ये. = ज्येष्ठ तथा इ.^{2} क्षे = क्षेप इससे **उत्तरार्ध सिद्ध होता है।**

'इष्ट वर्ग प्रकृत्योर्यद्विवरं' इसकी उपपत्तिः म. म. वापूदेव शास्त्रिकी :—

क = या, इसके बाद रूप क्षेप में ज्ये.=$\sqrt{या.^2 प्र. + १}$। कल्पना किया ज्येष्ठ = या. इ + १

अतः या. इ + १ = $\sqrt{या.^2 प्र. + १}$ दोनों का वर्ग करने पर,

या.^{2} इ^2 + २ या. इ + १ = या^{2} प्र. + १ अथवा

या^{2} इ^2 + २ या. इ = या.^{2} प्र.

इसलिए २ या. इ=या.^{2} प्र. − या.^{2} इ^2 = या^{2} (प्र. − इ^2) दोनों पक्षों में या का भाग देने पर

२ इ = या (प्र − इ^2) अतः या = $\frac{२ई}{प्र. - इ^2}$ = कनिष्ट मान सिद्ध हुआ।

वर्ग प्रकृति के द्वारा प्रतिपादित नियमानुसार :—

ज्ये = प्र + इ^2, क = २ इ, दो = (प्र − इ^2)^2

इसलिए इष्ट = प्र − इ^2, इतना प्रकल्पितकर

इष्ट वर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यादिष्ट भाजिते···।

इससे नया कनिष्ठ ज्येष्ठ और क्षेपक लाया।

कनिष्ठ $\frac{२ इ}{प्र - इ^२}$, ज्ये = $\frac{प्र + इ^२}{प्र - इ^२}$, क्षेप = १

यह सिद्ध हुआ।

८. चक्रवाल—

'चक्र इव वलतीति चक्रवालः' अर्थात् कुट्टक और वर्गप्रकृति का चक्रवद् भ्रमण जिस गणित में होता है, उसे चक्रवाल कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि वर्ग प्रकृति के नियमानुसार एक क्षेप में जो भिन्नात्मक कनिष्ठ और ज्येष्ठ आते हैं उनको पूर्णाङ्क रूप में प्राप्त करने के लिए जो कुट्टक और वर्गप्रकृति इन दोनों के मिश्रण से क्रिया की जाती है उसे चक्रवाल कहते हैं। इसके लिए आचार्य का सूत्र निम्नाङ्कित है :—

चक्रवाल विधायक सूत्र :—

ह्रस्व ज्येष्ठपदक्षेपान् भाज्यप्रक्षेप भाजकान्।
कृत्वा कल्प्यो गुणस्तत्र तथा प्रकृतितश्च्युते॥ १॥
गुणवर्गे प्रकृत्पोनेऽथवाऽल्पं शेषकं यथा।
तत्तु क्षेपहृतं क्षेपो व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते॥ २॥
गुणलब्धिः पदं ह्रस्वं ततो ज्येष्ठमतोऽसकृत्।
त्यक्त्वा पूर्वपदक्षेपाँश्चक्रवालमिदं जगुः॥ ३॥
चतुर्द्व्येक युतावेवमभिन्ने भवतः पदे।
चतुर्द्विक्षेपमूलाभ्यां रूपक्षेपार्थ भावना॥ ४॥

अर्थात् चक्रवाल गणित में पहले 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः' इत्यादि सूत्र से जो पहले वर्ग प्रकृति में कहा जा चुका है; कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप लाकर उनको क्रम से भाज्य, क्षेप और भाजक कल्पना कर कुट्टक की विधि से गुण लाना चाहिए। वह गुण इस प्रकार का हो जिसके वर्ग को प्रकृति में या प्रकृति को हो उसमें घटाने से शेष थोड़ा बचे। उस शेष में पहले क्षेप का भाग देने से क्षेप होगा। ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि जहाँ पर गुण वर्ग प्रकृति में घटेगा वहाँ क्षेप व्यस्त होगा, अर्थात् धन रहने पर ऋण और ऋण रहे तो धन हो जायगा। तथा जिस गुण के साथ प्रकृति का अन्तर किया गया है, उस गुण की लब्धि कनिष्ठ पद होगा। बाद में पूर्व कहे गणित के अनुसार कनिष्ठ से ज्येष्ठ सिद्ध करना चाहिए।

पहले लाए गये कनिष्ठ ज्येष्ठ क्षेपों को छोड़कर नूतन कनिष्ठ ज्येष्ठ क्षेपों के द्वारा कुट्टक की रीति से गुण, लब्धि लाकर कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध करना चाहिए। इस तरह बार-बार क्रिया करना चाहिए। इस प्रकार क्रिया करने से चार, दो और एक धन में अभिन्न कनिष्ठ ज्येष्ठ होंगे। यहाँ दर्शित चार आदि संख्या और धन क्षेप उपलक्षण मात्र हैं। अत एव इष्ट संख्या के धनक्षेप या ऋणक्षेप में अभिन्न पद होंगे तथा यहाँ पर ४, २ क्षेपों को रूप क्षेप में लाने के लिए भावना देनी चाहिए। अर्थात् जिस स्थान पर ४ क्षेप हो वहाँ पर 'इष्ट वर्ग हृतः क्षेपः' इस सूत्र से कनिष्ठ ज्येष्ठ क्षेपों को सिद्ध करना चाहिए।

जहाँ पर २ क्षेप हो वहाँ पर तुल्य भावना से चार क्षेप में कनिष्ठ ज्येष्ठ पदों को सिद्धकर **"इष्टवर्गहृतः क्षेपः"** इस सूत्र के अनुसार रूप क्षेप में कनिष्ठ ज्येष्ठ पदों को सिद्ध करना चाहिए।

इसकी उपपत्ति के लिए, मान लिया कनिष्ठ = १ इसके वर्ग को प्रकृति से गुणने पर प्र × १ = प्र. हुआ। इसमें यदि क्षेप = इष्टवर्ग − प्र. को जोड़ दें तो योग फल $इ^2$ होगा और इसका वर्गमूल इ = ज्येष्ठ होगा। यह पूर्व नियमानुसार सिद्ध है। अब इसको समास भावना के लिए निम्नाङ्कित रूप में लिखा—

क,	ज्ये,	क्षे,
१,	इ,	$इ^2$—प्र,
क',	ज्ये',	क्षे',

समास भावना के नियमानुसार—

नूतन क' = क' × इ + १ × ज्ये, नूतन ज्ये' = क' × १ × प्र. + ज्ये' × इ, नूतन क्षे' - ($इ^2$—प्र) क्षे'

$इ^2$—प्र. इष्ट क्षेप में लाने के लिए क्षे' से भाग देने पर नवीन $क्षे'' = \frac{इ^2 - प्र.}{क्षे}$

$$क'' = \frac{क' \times इ + १ \times ज्ये}{क्षे}, \quad ज्ये'' = \frac{क' \times १ \times प्र + ज्ये' \times इ}{क्षे}, \quad क्षे'' = \frac{इ^2 - प्र}{क्षे}$$

अब यहाँ ह्रस्व ज्येष्ठ और क्षेप को भाज्य क्षेप और गुणक मानकर कुट्टक करने पर लब्धि अभिन्नात्मक नूतन ज्येष्ठ के तुल्य होगी और गुणक इष्ट के तुल्य होगा। यहाँ पर "इष्टा हतस्वस्वहेरण युक्ते तेवा भवेतां बहुधा गुणाप्ति" इसके अनुसार इ के तुल्य गुणक को ऐसा मान मानना चाहिए जिससे नवीन क्षेपवाले भाज्य का मान छोटा होवे। क्योंकि नवीन क्षेप = $\frac{इ^2 - प्र}{क्षे}$ है। यहाँ पर यदि $इ^2$ बड़ा प्र. से तो नवीन क्षेप धनात्मक होगा। यदि $इ^2$ से प्र बड़ा होगा तो इसका (क्षेप का) मान ऋणात्मक होगा। इसलिए धन क्षेप के लिए क्षे. से भाग देने पर लब्धि ऋणात्मक न हो यही यत्न करना चाहिए। यदि $\frac{इ^2 - प्र}{क्षे}$ यह ऋणात्मक हो।

उपर १ + क्षे का उदाहरण दिखाया गया है, किन्तु यदि १ − क्षे हो तो वह उदाहरण तभी यथार्थ होगा जब कि प्रकृति २ राशियों के वर्ग योग के तुल्य हो। भास्कराचार्य ने इसे उपपत्ति के द्वारा सिद्ध किया है। और ऐसी स्थिति में क. ज्ये. लाने के लिए प्रकार भी दिया है जैसे :—

रूपशुद्धौ खिलोदिष्टं वर्गयोगो गुणो न चेत्।
अखिले कृतिमूलाभ्यां द्विधा रूपं विभाजितम्॥ ५॥
द्विधा ह्रस्वपदं ज्येष्ठं ततो रूपविशोधने।
पूर्ववद्वाप्रसाध्येते पदे रूपविशोधने॥ ६॥

अर्थात् एक ऋणक्षेप होने पर यदि गुण (प्रकृति) दो संख्याओं का वर्गयोग न हो तो उदाहरण अयथार्थ होगा। यदि उदाहरण शुद्ध हो तो दोनों वर्गों के मूल से दो स्थानों पर १ में भाग देने पर दो कनिष्ठ उपलब्ध होंगे। इस पर से १ − क्षे में २ ज्येष्ठ का आनयन होगा। अथवा १ − क्षे में पूर्वविधि से ही कनिष्ठ और ज्येष्ठ लाना चाहिए।

इसकी उपपत्ति के लिए।

यदि कनिष्ठ = क, प्रकृति = प्र, क्षे = − १

तो $क^2 − प्र − १ = ज्ये^2$ यह भास्कराचार्य की उक्ति के अनुसार हुआ।

$\therefore क^2 . प्र = जे^2 + १$, दोनों पक्षों में $क^2$ का भाग देने पर।

$$\frac{क^2 . प्र}{क^2} = \frac{ज्ये^2 + १}{क^2} = \frac{ज्ये^2}{क^2} + \frac{१}{क^2}$$

$$\therefore प्र = \left(\frac{ज्ये}{क}\right)^2 + \left(\frac{१}{क}\right)^2$$

इसलिए यहाँ पर प्रकृति दो संख्याओं का वर्ग योग सिद्ध होती है।

उदाहरण :—

त्रयोदशगुणो वर्गो निरेकः कः कृतिर्भवेत्।
को वाऽष्टगणितो वर्गो निरेको मूलदो वद ॥ २ ॥

अर्थात् वह कौन सा ऐसा वर्ग है जिसको १३ से गुणा कर उसमें १ घटा दें तो वह मूल प्रद हो जाय। तथा दूसरा वह कौन सा ऐसा वर्ग है जिसको आठ से गुणा कर उसमें १ घटा दें तो वह मूलप्रद हो जाय।

वहाँ दोनों उदाहरणों में १३, ३ और २ के वर्गों का योग है जो $३^2 + २^2 = १३$ है। और ऐसे ही, ८ दो और दो के वर्गों का योग है अर्थात् $२^2 + २^2 = ८$ है। यहाँ पर प्रथम उदाहरण में २ से १ में भाग दिया तो $\frac{१}{२}$ हुआ, उसके वर्ग $\frac{१}{४}$ में प्रकृति १३ से गुणाकर उसमें १ घटाने पर $\frac{९}{४}$ यह ज्येष्ठ का वर्ग हुआ। $\therefore$ ज्येष्ठ = $\frac{३}{२}$ हुआ। अथवा द्वितीय वर्गमूल ३ से १ में भाग देने पर $\frac{१}{३}$ हुआ इसके वर्ग में १३ से गुणाकर १ घटाने पर $\frac{४}{९}$ हुआ, इसका वर्गमूल $\frac{२}{३}$ ज्येष्ठ हुआ। इस प्रकार से भिन्नात्मक ह्रस्व, ज्येष्ठ दो रूप में उपलब्ध हुए। कनिष्ठ = १ कल्पना कर इसके १ वर्ग को प्रकृति १३ से गुणा किया तो १३ हुआ, इसमें ४ घटा देने पर शेष ९ का मूल = ३ = ज्येष्ठ पद हुआ।

इनका क्रमशः न्यासः—

क १ ज्ये ३ क्षे − ४

अब ऋण दो इष्ट मानकर **"इष्टवर्गहृतः क्षेपः"** इत्यादि सूत्र के आधार पर क्रिया करने से रूप क्षेप में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप—

क $\frac{१}{२}$, ज्ये $\frac{३}{२}$, क्षे − १।

अथवा प्रकारान्तर से रूप ऋणक्षेप में पदों का आनयन :—

जैसे कनिष्ठ = १, इसका वर्ग १ को प्रकृति १३ से गुणा करने से १३ हुआ। इसमें ९ घटाया तो शेष = ४ बचा, इसका मूल = २ = ज्येष्ठ पद हुआ।

क्रम से न्यास करने पर :—

क १, ज्ये २, क्षे − ९।

अब यहाँ पर इष्ट तीन कल्पना कर **"इष्ट वर्ग हृतः क्षेपः"** इत्यादि से क्रम से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप :—

क $\frac{१}{३}$, ज्ये $\frac{२}{३}$, क्षे – १ ।

कुट्टक के लिए पूर्वानीत पदों का न्यास :—

भा $\frac{१}{३}$, क्षे $\frac{२}{३}$, हा – १

यहाँ पर भाज्य आदि तीनों में $\frac{१}{३}$ का अपवर्तन देकर न्यास :—

भा १, क्षे २, हा – ३ ।

फिर धन क्षेप २ को हार ३ से तष्टित करके न्यास :—

भा १, क्षे १, हा – १ ।

उक्तरीति से वल्ली = $\begin{cases} ० \\ १ \\ ० \end{cases}$

उक्तरीति से दो राशियाँ = (०, १) लब्धि को विषम होने के कारण अपने २ तक्षण में शुद्ध करने से लब्धि = – १, गुण = १, क्षेप तत्क्षण लाभ से युक्त करने से वास्तवलब्धि = २,

गुण १ का वर्ग १ को प्रकृति १३ में घटा देने से शेष १२ अल्प नहीं होता, अतः ऋण रूप इष्ट मान कर **"इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते"** इत्यादि प्रकार से भाज्य हार दोनों को ऋण रूप से गुणाकर अपने २ हर में जोड़ने से लब्धि = १ × १ + २ = ३, गुण = १ × २ + १ = ३,

गुण ३ के वर्ग ९ को प्रकृति १३ में घटाने से शेष = ४ रहता है, यह अल्प है, अतः इसमें क्षेप ऋण रूप का भाग देने से लब्धि = ४ आई, यह क्षेप हुआ। **"व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते"** इसके अनुसार क्षेप धनात्मक हुआ। लब्धि = ३ = कनिष्ठ हुई।

इसके वर्ग ९ को प्रकृति १३ से गुणा किया तो ११७ हुआ, इसमें क्षेप चार जोड़ दिया तो १२१ हुआ, इसका मूल = ११ = ज्येष्ठ पद हुआ।

सबों का क्रम से न्यास :—

क ३, ज्ये ११, क्षे ४ ।

कुट्टक के लिए न्यास :—

भा ३, हा ४, क्षे ११ ।

"हर तष्टे धन क्षेपे" इस सूत्र के अनुसार क्षेप लाने से क्षेप = ३ हुआ।

अतः भा ३, हा ४, क्षे ३ हुआ।

उक्त प्रकार से वल्ली = $\begin{cases} ० \\ १ \\ ३ \\ ० \end{cases}$

उक्त प्रकार से दो राशियाँ ३, ३, क्षेपतक्षणलाभ = २ को युत करने से वास्तवलब्धि = ५ गुण = ३ हुई।

अब गुण ३ के वर्ग ९ को प्रकृति १३ में घटाने से शेष = ४ बचा, इसमें क्षेप ४ का भाग देने से लब्धि १ क्षेप हुआ यह **'व्यस्तः प्रकृतिनश्च्युते'** इस सूत्र के अनुसार ऋणात्मक हुआ। लब्धि = ५ = कनिष्ठ पद आया। इसका वर्ग = २५ को प्रकृति १३ से गुणा करने पर ३२५ हुआ, इसमें क्षेप ऋण रूप घटाकर मूल = १८ ज्येष्ठ पद हुआ।

क्रम से न्यास—

क ५, ज्ये १८, क्षे—१।

इस तरह सब जगह क्षेप पदों के साथ पदों का भावना करने से अनन्त पद उपलब्ध होंगे।

द्वितीय उदाहरण—

इस उदाहरण में प्रकृति = ८ = ४ + ४। अतः २ से रूप में भाग देने से कनिष्ठ = $\frac{१}{२}$। इसका वर्ग = $\frac{१}{४}$ को प्रकृति ८ से गुणा किया तो $\frac{१}{४} \times ८ = \frac{८}{४} = २$, इसमें रूप घटाने से शेष = १ का मूल १ ज्येष्ठ पद हुआ। अतः क $\frac{१}{२}$, ज्ये १, और क्षेप—१। उपपन्न हुआ।

यदि प्रकृति या गुणक किसी संख्या का वर्ग हो तो विना भावना के भी उसके अनेक ह्रस्व ज्येष्ठ लाये जा सकते हैं। इसके लिए भास्कराचार्य निम्नांकित सूत्र देते हैं।

इष्टभक्तो द्विधा क्षेप इष्टो नाढचो दलीकृतः॥ १८॥
गुणमूलहृतश्चाद्ये ह्रस्वज्येष्ठे क्रमात् पदे।

वर्गात्मक प्रकृति में उदिष्ट क्षेप जो हो उसमें किसी इष्टसंख्या का भाग देकर जो लब्धि प्राप्त हो उसको २ स्थानों में रक्खे। प्रथम स्थान में इष्ट घटाने से और द्वितीय स्थान में इष्ट जोड़ने से जो फल उपलब्ध हो उनका आधा करके प्रथम स्थान में प्रकृति के पद का भाग देना चाहिए। इससे क्रमशः कनिष्ठ, ज्येष्ठ पद हो जायेंगे।

आलाप के अनुसार उपपत्ति :—

$प्र. क^{२} + क्षे = ज्ये^{२}$

$\therefore क्षे = ज्ये^{२} - प्र. क^{२} = (ज्ये + \sqrt{प्र. क^{२}})\,(ज्ये - \sqrt{प्र. क^{२}})$।

यदि $ज्ये - \sqrt{प्र. क^{२}} = इ$। तत्र

$क्षे = इ\,(ज्ये + \sqrt{प्र. क२},\quad \therefore \frac{क्षे}{इ} = ज्ये + \sqrt{प्र. क^{२}}$।

$\therefore$ इन दो राशियों (ज्ये, $\sqrt{प्र. क^{२}}$) के ज्ञात होने पर इनका योग = $\frac{\text{‘क्षे’}}{इ}$ तुल्य होगा।

अब संक्रमण गणित से :—

$$बड़ी\ राशि = \frac{१}{२}\left(\frac{क्षे}{इ} + इ\right) = ज्येष्ठ$$

$$छोटी\ राशि = \frac{१}{२}\left(\frac{क्षे}{इ} - इ\right) = क\sqrt{प्र}।$$

$$\therefore \text{कनिष्ठ} = \frac{\frac{१}{२}\left(\frac{\text{क्षे}}{\text{इ}} - \text{इ}\right)}{\sqrt{\text{प्र}}}$$ यह सिद्ध हुआ।

इस प्रकार भास्कराचार्य का सूत्र उपपन्न हो गया।

उदाहरण—

का कृतिर्नवभिः क्षुण्णा द्विपञ्चाशद्युता कृतिः ॥ ४ ॥
को वा चतुर्गुणो वर्गस्त्रयस्त्रिंशद्युतः कृतिः।

अर्थात् वह कौन सा ऐसा वर्ग है जिसको ९ से गुणाकर ५२ जोड़ने से वर्ग होता है।

तथा वह कौन सा वर्ग है जिसको चार से गुणाकर ३३ जोड़ देने से वर्ग होता है।

प्रथम उदाहरण में क्षेप = ५२ है।

यहाँ पर इष्ट २ कल्पना कर इससे क्षेप ५२ में भाग देने से लब्धि = २६ प्राप्त हुई इस को दो जगह रखकर इष्ट दो से एक जगह रहित और दूसरे जगह सहित करके आधा किया तो

$$\text{लघुराशि} = \frac{२६ - २}{२} = १२$$

$$\text{बड़ी राशि} = \frac{२६ + २}{२} = १४$$

पहले स्थान में प्रकृतिमूल तीन से भाग दिया तो लब्धि कनिष्ठ पद = ४, और ज्येष्ठ = १४ यह बड़ी राशि हुई।

इनका क्रम से न्यास—

क ४, ज्ये १४, क्षे ५२।

अथवा क्षेप ५२ में चार का भाग देकर उक्त प्रकार से कनिष्ठ = $\frac{३}{२}$, ज्येष्ठ पद = $\frac{१७}{२}$ दूसरे उदाहरण में क्षेप = ३३ है।

यहाँ पर इष्ट १ कल्पना कर ३३ क्षेप में भाग देने से लब्धि = ३३ रही। इसको दो स्थानों में रखकर एक स्थान में इष्ट को घटाकर तथा दूसरे स्थान में इष्ट को जोड़कर ३२, ३४ को आधा किया तो १६, १७ हुआ। इनमें पहली संख्या १६ में प्रकृति मूल दो का भाग दिया तो कनिष्ठ पद = ८ आया और ज्येष्ठ पद = १७ हुआ।

इनका क्रम से न्यास—

क ८, ज्ये १७, क्षे ३३

अथवा

क्षेप ३३ में ३ का भाग दिया तो लब्धि ११ को दो स्थानों में रक्खा तथा ३ घटाने एवं जोड़ने से क्रमशः ८, १४ हुआ। इसका आधा किया तो ४, ७ आया। इसमें प्रथम संख्या में प्रकृति ४ के मूल २ का भाग दिया तो २ आया।

अतः कनिष्ठ = २, ज्येष्ठ = ७ और क्षेप = ३३ सिद्ध हुआ।

६. एक वर्ण समीकरण—

प्रश्न के आलाप के अनुसार अव्यक्तराशि का मान याव. ताव. आदि कल्पना कर पृच्छक के कथनानुसार गुणा, भाग, त्रैराशिक, श्रेढ़ी, क्षेत्रफल आदि व्यवहारों के द्वारा अव्यक्त और व्यक्त राशियों के दो तुल्य पक्ष करके अव्यक्त राशि के मान लाने की युक्ति एकवर्ण समीकरण कही जाती है। इसमें अङ्कगणित की प्रक्रियाओं का उपयोग करना होता है। यह बात कही जा चुकी है। भास्कराचार्य इन विषयों को निम्नाङ्कित श्लोकों में व्यक्त किए हैं।

यावत्तावत् कल्प्यमव्यक्तराशेर्मानं तस्मिन् कुर्वतोद्दिष्टमेव।
तुल्यौ पक्षौ साधनीयौ प्रयत्नात् त्यक्त्वा क्षिप्त्वा वाऽपि संगुण्य भक्त्वा ॥ १ ॥
एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षाद्रूपाण्यन्यस्येतरस्माच्च पक्षात्।
शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषं व्यक्तं मानं जायतेऽव्यक्तराशेः ॥ २ ॥
अव्यक्तानां द्व्यादिकानामपीह यावत्तावद्द्व्यादिनिघ्नं हृतं वा।
युक्तोनं वा कल्पयेदात्मबुद्ध्या मानं क्वापि व्यक्तमेवं विदित्वा ॥ ३ ॥

अर्थात् दिए गये उदाहरणों में अव्यक्त राशि का मान यावत्तावत् कल्पना कर प्रश्न कर्त्ता के कथनानुसार गुणन भजनादि क्रियाओं द्वारा समान दो पक्ष सिद्ध करना चाहिए। यदि तुल्य पक्ष नहीं आता तो कुछ जोड़ या घटाकर अथवा किसी से गुणन भजन कर दो पक्ष समान कर लेना चाहिए।

अनन्तर सिद्ध दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष के अव्यक्त राशि को दूसरे पक्ष के अव्यक्त में घटाना तथा दूसरे पक्ष के रूपों को प्रथम पक्ष के रूपों में घटाना चाहिए। इस प्रकार क्रिया करने से एक पक्ष में अव्यक्त राशि तथा दूसरे पक्ष में पूर्णाङ्क रह जायगा। अब अव्यक्त के गुणकाङ्क से रूप में भाग देने से जो लब्धि मिलेगी वही अव्यक्त राशि का व्यक्त मान होगा।

यदि किसी उदाहरण में दो तीन आदि अव्यक्त राशि युत, ऊन या गुणित भाजित हों तो एक अव्यक्त का मान यावत्तावत् कल्पना करके पूर्वोक्त विधि से जो व्यक्त मान आवे उसको दो तीन आदि इष्ट गुणित भाजित आदि कर यावत्तावत् का मान लाना चाहिए।

भास्करीय उदाहरणः—

एकस्य रूप त्रिशती षडश्वा अश्वा दशान्यस्य तु तुल्यमूल्याः।
ऋणं तथा रूपशतं च तस्य तौ तुल्यवित्तौ च किमश्व मूल्यम् ॥१॥ एक. व. स.

किसी के पास ३०० रुपये और ६ घोड़े हैं तथा दूसरे के पास ऋण सौ रुपया और १० घोड़े हैं और दोनों का समान धन है तो घोड़े का मूल्य बताओ।

यहाँ घोड़े का मूल्य अज्ञात है अतः कल्पना किया १ घोड़े का मूल्य = या

∴ प्रथम व्यक्ति के पास ६ या + ३०० रु. तथा द्वितीय के पास १० या — १०० रु. हुआ

∴ ६ या + ३०० = १० या — १०० क्योंकि दोनों का धन समान है।

∴ ३०० + १०० = १० या — ६ या

∴ ४०० = ४ या

∴ या = $\frac{४००}{४}$

∴ या = १०० यही एक घोड़े का मूल्य हुआ। इसके अनुसार आलाप मिलाने से

∴ ६ या + ३०० = १० या — १००

∴ (६ × १००) + ३०० = (१० × १००) — १००

∴ ६०० + ३०० = १००० — १००

∴ ९०० = ९०० इस प्रकार दोनों का धन बराबर सिद्ध हो जाता है।

इसके अतिरिक्त दूसरा उदाहरण—

माणिक्यामलनीलमौक्तिकमितिः पञ्चाष्टसप्तक्रमा-
देकस्यान्यतरस्य सप्तनवषट् तद्रत्नसंख्या सखे।
रूपाणां नवतिद्विषष्ठिरनयोस्तौ तुल्यवित्तौ तथा
बीजज्ञ प्रतिरत्नजानि सुमते मौल्यानि शीघ्रं वद ।। ३ ।।

अर्थात् एक व्यापारी के पास ५ माणिक्य, ८ नीलमणि, ७ मोती और ९० रुपये तथा दूसरे के पास ७ माणिक्य, ९ नीलमणि, ६ मोती, और ६२ रुपये हैं तथा दोनों का धन बराबर है तो प्रत्येक रत्नों का अलग-अलग मूल्य क्या होगा ? यहाँ अव्यक्त राशियाँ अनेक हैं इसलिए क्रम से ३ या, २ या और या इनका मूल्य कल्पना किया।

इस प्रकार १५ या + १६ या + ७ या + ९० = ३१ या + १८ या + ६ या + ६२

∴ ३८ या + ९० = ४५ या + ६२

दोनों का धन बराबर होने से दोनों पक्ष समान सिद्ध हुआ।

∴ ९० — ६२ = ४५ या — ३८ या

∴ २८ = ७ या

∴ या = $\frac{२८}{७}$ = ४

इसके अनुसार १ माणिक्य = १२, १ नीलमणि = ८ तथा १ मोती = ४ आलाप से दोनों का धन बराबर सिद्ध होगा।

यह उदाहरण अनेक वर्ण समीकरण का प्रतीत हो रहा है। किन्तु भास्कराचार्य ने इसको एकवर्ण समीकरण में इसलिए रक्खा है कि माणिक्यादि के मूल्यों को किसी एक वर्ण के गुणक के रूप में कल्पितकर अव्यक्त राशि का अनेक मान लाया जा सके। जो वास्तव में अनेक मानों के कारण से अनिर्धारित समीकरण के रूप में कहा जा सकता है, किन्तु उसकी परिभाषा के अन्दर यह नहीं आ रहा है। वस्तुतः ऐसे उदाहरणों को एकवर्ण समीकरण में नहीं देना चाहिए था। क्योंकि ग्रन्थकार ने स्वयं इसमें यावत्तावत् के चार मान कल्पना किया है। ऐसा ही एक उदाहरण स्वकल्पित अव्यक्त मान से सम्बन्धित अन्य है :—

माणिक्याष्टकमिन्द्रनीलदशकं मुक्ताफलानां शतं
यत्ते कर्णविभूषणे समधनं क्रीतं त्वदर्थे मया।
तद्रत्नत्रयमौल्यसंयुतिमितिस्त्र्यूनं शतार्धं प्रिये
मौल्यं ब्रूहि पृथग्यदीहगणिते कल्यासि कल्याणिनि ।। ५ ।।

अर्थात् कर्णभूषण के लिए तुल्य कीमत से आठ माणिक्य, दशनीलमणि और सौ मोती खरीदा। एक एक करके तीनों रत्नों का मूल्य ४७ रुपया होना है तो प्रत्येक रत्न का मूल्य क्या होगा।

यहाँ पर माणिक्यादिकों का मान अलग २ कल्पना करने पर क्रिया का निर्वाह नहीं होता। अतएव समधन का मान यावत्तावत् कल्पना करके त्रैराशिक के द्वारा प्रत्येक का मूल्य लाना चाहिए।

जैसे आठ माणिक्य का मूल = या तो १ का क्या - $\frac{या}{८}$ इसी प्रकार एक नीलमणि का मूल्य = $\frac{या}{१०}$ तथा १ मोती का मूल्य = $\frac{या}{१००}$ हुआ।

अतः $\frac{या}{८}, \frac{या}{१०}, \frac{या}{१००}$ का योग = $\frac{४७ या}{३००}$ = पूर्णाङ्क ४७ के है।

अतः $\frac{४७ या}{२००} = ४७$

$\therefore$ ४७ या = ४७ × २०० = ९४०० ।

$\therefore$ या = $\frac{९४००}{४७}$ = २०० अतएव अनुपात से रत्नों का मूल्य

१ माणिक्य का मूल्य = $\frac{२०० \times १}{८}$ = २५

१ नीलमणि का मूल्य = $\frac{२०० \times १}{१०}$ = २०

१ मोती का मूल्य = $\frac{२०० \times १}{१००}$ = २

अतएव तुल्य धन = २००

तथा सभी रत्नों का मूल्य योग = ६००

इसमें माणिक्यादि के मूल्य की अव्यक्त कल्पना से क्रिया का निर्वाह नहीं होता, इसलिए ग्रन्थकार ने सम मूल्य को ही यावत्तावत् मानकर गणित के समाधान की प्रक्रिया उपस्थित की है, जो ग्रन्थकार की कल्पना कौशल का परिचायक है।

भारतीय मस्तिष्क गणित के लिए कितना जागरूक रहा है, इसका उदाहरण देहातों में प्रसिद्ध गणित सम्बन्धी पहेलियाँ हैं। भास्कराचार्य ने इन पहेलियों को भी एक वर्ण समीकरण के रूप में 'परिणत' किया है।

उदाहरण —

एको ब्रवीति मम देहि शतं धनेन
त्वत्तो भवामि हि सखे द्विगुणस्ततोऽन्यः।
ब्रूते दशार्पयसि चेन्मम षड्गुणोऽहं
त्वत्तस्तयोर्वद धने मम किं प्रमाणे ॥ ४ ॥

दो व्यक्तियों में प्रथम दूसरे से कहता है कि यदि तुम १०० रूपया दे दो तो हमारा धन तुमसे दूना हो जाय। इस पर दूसरा कहता है कि यदि तुम १० रुपये मुझे दे दो तो तुमसे मेरा धन षड्गुणित हो जाय। तो बताओ उन दोनों के पास कितना धन था।

कल्पना किया प्रथम का धन = २ या − १००

द्वितीय का धन = या + १००

दूसरे से १०० रुपया लेने पर पहले का धन दूसरे से दूना हो जाता है। इसलिए :—

$(\text{२ या} - \text{१००}) + \text{१००} = (\text{या} + \text{१००} - \text{१००})^{\text{२}} = \text{२ या} = \text{२ या}$

अब प्रथम के धन से १० रु. निकाल कर दूसरे के धन में जोड़ने से—

प्रथम का धन = २ या − ११०। द्वितीय का धन = या + ११०

यहाँ पहले से दूसरा धन षड् गुणित है अतः दोनों पक्षों को समान करने के लिए। प्रथम के धन को षड्गुणित किया तो १२ या − ६६० हुआ। यह दूसरे के बराबर है।

अतः १२ या − ६६० = या + ११०

$\therefore$ १२ या − या = ६६० + ११० = ७७०

$\therefore$ ११ या = ७७०

$\therefore \text{या} = \frac{\text{७७०}}{\text{११}} = \text{७०}$

अतएव १ या का मान ७० आया $\therefore$ प्रथम धन = १४० − १०० = **४० रुपया**।

और दूसरे का मान = ७० + १०० = **१७०** रुपया हुआ।

आगे भास्कराचार्य इष्ट कर्म और शेष जात सम्बन्धी उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें यावत्तावत् कल्पना के द्वारा प्रश्न का समाधान अंकगणित की विधि से ही किया गया है। अंकगणित में राशि का इष्टमान व्यक्ताङ्क कल्पित किया जाता है। और इसमें इष्ट को यावत्तावत् आदि माना गया है।

उबाहरण :—

पञ्चांशोऽलिकुलात् कदम्बमगमत् त्र्यंशः शिलीन्ध्रं तयो-
र्विश्लेषस्त्रिगुणो मृगाक्षिकुटजं दोलायमानोऽपरः।
कान्ते केतकमालतीपरिमलप्राप्तैककालप्रिया-
दूताहूत इतस्ततो भ्रमति रवे भृङ्गोऽलिसंख्यांवद॥ ६॥

अर्थात् किसी स्थान पर भ्रमरों का एक समूह था, जिसका $\frac{\text{१}}{\text{५}}$ कदम्ब को चला गया। तृतीयांश शिलीन्ध्र पुष्प पर चला गया। इन भागों के द्विगुण अन्तर तुल्य भ्रमर कुटज वृक्ष पर चले गये तथा एक भ्रमर केतकी और मालती के गंधों से एक ही समय में मुग्ध होकर कभी केतकी के पास तो कभी मालती के पास भ्रमण करता रहा, तो भ्रमरों की संख्या बताओ।

कल्पना किया भ्रमर समूह का मान = या

अतः इसका पंचमांश = $\frac{\text{या}}{\text{५}}$, तृतीयांश = $\frac{\text{या}}{\text{३}}$ इन दोनों का अन्तर त्रिगुणित।

$$= \text{३}\left(\frac{\text{या}}{\text{३}} - \frac{\text{या}}{\text{५}}\right)\text{३} = \left(\frac{\text{५ या}}{\text{१५}} - \frac{\text{३ या}}{\text{१५}}\right) = \text{३}\left(\frac{\text{२ या}}{\text{१५}}\right) = \frac{\text{२ या}}{\text{५}}$$

इनके योग में रूप कम करने पर :—

$$\frac{\text{या}}{\text{५}} + \frac{\text{या}}{\text{३}} + \frac{\text{२ या}}{\text{५}} + \text{१} = \frac{\text{१५ या}}{\text{७५}} + \frac{\text{२५ या}}{\text{७५}} + \frac{\text{३० या}}{\text{७५}} + \text{१}$$

$= \frac{७० \text{ या}}{७५} + १ = \frac{१४ \text{ या} + १५}{१५}$ यह भ्रमर समूह (या) के समान है।

अतः $\frac{१४ \text{ या} + १५}{१५} = \text{या} \quad \therefore १४ \text{ या} + १५ = १५ \text{ या}$

$\therefore १५ = १५ \text{ या} - १४ \text{ या}, \therefore \text{या} = १५ =$ अलि कुल प्रमाण ।

एक अन्य उदाहरण व्याज सम्बन्धी है। इसमें द्विष्ट कर्म की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु भास्कराचार्य ने एक इष्ट को व्यक्त कल्पना के द्वारा प्रश्न का समाधान किया है क्योंकि दो अव्यक्त कल्पना करने पर प्रश्न का समाधान क्लिष्ट होगा ?

उदाहरण

पंचकशतदत्तधनात् फलस्य वर्गं विशोध्य परिशिष्टम् ।
दत्तं दशकशतेन तुल्यः कालः फलं च तयोः ॥ ७ ॥

अर्थात् ५ रुपये सैकड़े व्याज पर दिए गये धन का जो व्याज आया, उसके वर्ग को मूल धन में घटाकर शेष को १० रुपये सैकड़े व्याज पर दिया, अब दोनों मूल धनों का काल और व्याज यदि समान है तो मूल धन क्या होगा ?

दोनों के अव्यक्त मान कल्पना करने से इष्ट कल्पना बिना क्रिया का अनिर्वाह—

जैसे काल का प्रमाण = या, प्रथम धन का प्रमाण = का, यह कल्पना किया ।

अब पञ्चराशिक के अनुसार न्यासः— $\begin{cases} १\text{या} \\ १०० \text{ का} \\ ५ \end{cases}$

अन्योन्य पक्ष नयन से $\begin{cases} १ \text{ या} \\ १०० \text{ का} \\ ५ \end{cases}$ अतः फल $= \frac{५ \text{ या. का}}{१००} = \frac{\text{या. का}}{२०}$

फल वर्ग को प्रथम मूलधन में घटाने से द्वितीय मूलधन $= \text{का} - \frac{\text{या}^२ . \text{का}^२}{४००}$

$= \frac{४०० \text{ का} - \text{या}^२ . \text{का}^२}{४००}$

पुनः पञ्चराशिक $= \begin{cases} १ & \text{या} \\ १०० & \frac{४०० \text{ का} - \text{या}^२ . \text{का}^२}{४००} \\ १० & \end{cases}$

अन्योन्य पक्षानयन से— $\begin{cases} १ & \text{या} \\ १०० & ४०० \text{ का} - \text{या}^२ . \text{का}^२ \\ ४०० & १० \end{cases}$

अतः फल $= \frac{\text{या} \times १० (४०० \text{ का} - \text{या}^२ . \text{का}^२)}{४००००}$

$$= \frac{\text{या} (४०० \text{ का} - \text{या}^२. \text{का}^२)}{४०००} = \frac{४०० \text{ या. का} - \text{या}^३. \text{का}^२}{४०००}$$

दोनों फल बराबर हैं अतः

$$\frac{\text{या. का}}{२०} = \frac{४०० \text{ या. का} - \text{या}^३. \text{का}^२}{४०००}$$

$\therefore$ २०० या. का = ४०० या. का − या^{३}. का^{२}

$\therefore$ २०० = ४०० − या^{२}. का

$\therefore$ या^{२}. का = २००

यहाँ या, का दोनों में किसी एक का व्यक्तमान कल्पना विना अन्य का व्यक्त मान नहीं जान सकते । अतः यदि का = ८ । तदा या^{२} = $\frac{२००}{८}$ = २५

$\therefore$ या = ५

यदि का = २ तदा या^{२} = $\frac{२००}{२}$ = १००

$\therefore$ या = १०

अतः सिद्ध हुआ कि दोनों में किसी एक का अन्त में एक आदि व्यक्तमान कल्पना करना ही पड़ेगा ।

भास्कराचार्य की व्याख्या के अनुसार नवीनोपपत्तिः

प्रथम प्रमाण फल से द्वितीय प्रमाण फल के दूना होने से दोनों पक्षों के काल और फल के तुल्य होने से द्वितीय मूलधन से प्रथम मूलधन द्विगुण होगा ही । इसके विना समान फल और काल में प्रथम प्रमाण फल से द्वितीय फल दूना कैसे प्राप्त होगा ।

इसलिए प्र. प्र. फ × २ = द्वि प्र फ

$$\therefore \frac{\text{प्र प्र फ}}{\text{द्वि प्र फ}} = २$$

एवं प्र मू ध - २ द्वि मू ध = $\frac{\text{प्र प्र फ}}{\text{द्वि प्र फ}}$ × द्वि मू ध = गु० द्वि मू ध ।

इससे **'प्रथम मूल धन स्यात्'** यह उपपन्न हुआ ।

$\therefore$ प्र मू ध − फ^२ = द्वि मू ध, तथा प्र मू ध = गु० द्विमूध,

$\therefore$ फ^२ = द्वि मू ध गु − द्वि मू ध = द्वि मू ध (गु − १)

$\therefore$ द्वि मू ध = $\frac{\text{फ}^२}{\text{गु} - १}$ यह उपपन्न हुआ ।

इस प्रकार से वस्तुओं के मूल्य कल्पना में वैशिष्ट्य के द्वारा सममूल्य वाले अनेक प्रश्नों का समाधान आचार्य ने किया है । माणिक्य का उदाहरण और तण्डुल का उदाहरण देते हुए, एक अन्य सरल उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । जिसमें राशियों के अपने ही भागों को जोड़ने पर समधन प्राप्त होता है जैसे :—

स्वार्ध पञ्चांश नवमैर्युक्ताः के स्युः समास्त्रयः।
अन्यांशद्वयहीनाश्च षष्टिशेषाश्च तान् वद॥ १४॥

अर्थात् कोई तीन राशियाँ हैं जिनमें पहली अपने आधे से, दूसरी अपने पंचमांश और तीसरी अपने नवमांश से युक्त करने से समान हो जाती है। तथा पहली राशि दूसरे के पंचमांश तीसरे के नवांश से घटाने से ६० के बराबर हो जाती है। दूसरी राशि पहले के आधे से और तीसरे के नवांश से घटाने से साठ हो जाती है। तीसरी राशि पहले के आधे और दूसरे के पंचमांश से घटाने से ६० हो जाती है। तो वह कौन सी राशियाँ हैं।

उदाहरण—

सम राशि = या

जो राशियां अज्ञात हैं उनको विलोम विधि से जानना होगा।

राशि का अर्ध पंचमांश और नवमांश **"अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढचोनो हरो हरः"।**

इस सूत्र के अनुसार—

$\frac{\text{या}}{३}$, $\frac{\text{या}}{६}$, $\frac{\text{या}}{१०}$ ऐसा हुआ। सम राशि प्रमाण = या है।

अतः अपने तृतीयांश से हीन करने पर प्रथम राशि = $\text{या} - \frac{\text{या}}{३} = \frac{२\text{या}}{३}$ (१)

अपने षष्ठांश से हीन करने पर राशि = $\text{या} - \frac{\text{या}}{६} = \frac{५\,\text{या}}{६}$ (२)

अपने दशमांश से हीन करने पर राशि = $\text{या} - \frac{\text{या}}{१०} = \frac{९\,\text{या}}{१०}$ (३)

अब इन राशियों में से प्रथम राशि $\frac{२\text{या}}{३}$ में दूसरी का पंचमांश और तीसरी राशि का नवमांश घटाने से

$$\text{शेष} = \frac{२\text{या}}{३} - \left(\frac{५\,\text{या}}{६\times५} + \frac{९\,\text{या}}{१०\times९}\right) = \frac{२\,\text{या}}{३} - \left(\frac{\text{या}}{६} + \frac{\text{या}}{१०}\right)$$

$$= \frac{२\text{या}}{३} - \left(\frac{५\,\text{या}}{३०} + \frac{३\,\text{या}}{३०}\right) = \frac{२\,\text{या}}{३} - \frac{८\,\text{या}}{३०}$$

$$= \frac{२०\,\text{या}}{३०} - \frac{८\,\text{या}}{३०} = \frac{१२\,\text{या}}{३०} = \frac{२\,\text{या}}{५}$$

इसी प्रकार दूसरी राशि में प्रथम राशि का आधा और तीसरी राशि के नवमांश घटाने से तथा तीसरी राशि में प्रथम का आधा और दूसरी का पंचमांश घटाने पर भी पूर्ववत $\frac{२\,\text{या}}{५}$ ही प्राप्त होगा।

यह साठ के समान है अतः—

$\frac{२ \text{ या}}{५} = ६०$ $\therefore$ २ या = ३००, $\therefore$ = या $\frac{३००}{२} = १५०$

इससे प्रथम राशि में उत्थापन देने से

पहली राशि = $\frac{२ \text{ या}}{३} = \frac{२ \times १५०}{३} = १००$ (५०)

दूसरी ,, = $\frac{५ \text{ या}}{६} = \frac{५ \quad १५०}{६} = १२५$ (२५)

तीसरी ,, = $\frac{९ \text{ या}}{१०} = \frac{९ \times १५०}{१०} = १३५$ (१५)

ये राशियाँ अपने अर्ध, अपने पंचमांश और अपने नवमांश से युत होने से समान होती हैं।

जैसे प्रथम राशि अपने आधे से युत = १०० + ५० = १५०।

दूसरी राशि अपने पंचमांश से युत = १२५ + २५ = १५०।

तीसरी राशि अपने नवमांश से युत = १३५ + १५ = १५०।

अतः प्रथम यावत्तावत् कल्पित समराशि = १५०

ऐसे ही एक वर्ण समीकरण के अनेक उदाहरण इस प्रकार के हैं, जिनसे आपाततः घन वर्ग आदि समीकरणों की सम्भावना प्रतीत होती है, किन्तु उनकी परिणति एक वर्णसमीकरण में होती है। उदाहरण इस प्रकार हैं—

उदाहरण :—

युतौ वर्गोऽन्तरे वर्गौ ययोर्घाते घनो भवेत्।
तौ राशि शीघ्रमाचक्ष्वदक्षोऽसि गणिते यदि ॥ १९ ॥

जिन दो राशियों का योग या अन्तर किसी राशि के वर्ग के समान होता है, और उनका घात घन होता है वे कौन सी राशियाँ हैं।

प्रथम राशि की कल्पना इस प्रकार करें कि योग या अन्तर वर्गात्मक हो।

प्रथम राशि = ४ या^{२}

द्वितीय राशि = ५ या^{२}

इनका यो = ४ या^{२} × ५ या^{२} = ९ या^{२}

अन्तर = ५ या^{२} − ४ या^{२} = या^{२} दोनों वर्गात्मक हैं।

इस प्रकार इन राशियों में दो आलाप घटते हैं।

फिर इन राशियों के घात घन हैं, इसलिए इष्ट यावत्तावत् १० के घन के साथ समीकरण—

$४ या^{२} \times ५ या^{२} = (१० या)^{३}$

$\therefore २० या^{४} = १००० या^{३}$

$\therefore २० या = १०००$

$\therefore या = \frac{१०००}{२०} = ५०$

उत्थापन देने से प्रथम राशि = $४ या^{२} = ४ \times (५०)^{२} = ४ \times २५०० = १००००$

द्वितीय राशि = $५ या^{२} = ५ \times (५०)^{२} = ५ \times २५०० = १२५००$ ।

इन का योग = २२५०० = वर्गात्मक ।

अन्तर = १२५०० — १०००० = २५०० = वर्गात्मक ।

दोनों का घात = १०००० × १२५०० = १२५०००००० = घनात्मक है ।

इसी तरह एक क्षेत्रसम्बन्धी उदाहरण भी इस प्रकार है :—

यदि समभुविवेणुर्द्वित्रिपाणिप्रमाणो
गणक पवन वेगादेकदेशे स भग्नः ।
भुवि नृपमितहस्तेष्वङ्ग लग्नं तदग्रं
कथय कतिषु मूलादेष भग्नः करेषु ॥ २२ ॥

अर्थात् समान भूमि पर एक ३२ हाथ लम्बा बाँस था । वायु के वेग से टूट कर उसका सिरा मूल से १६ हाथ की दूरी पर भूमि से जा लगा तो बताओ वह मूल से कितने हाथ पर टूटा था ।

बाँस के नीचे का मान (कोटि रूप) यावत्तावत् कल्पना किया, इसको बाँस के मान में घटाने से ऊपर का खण्ड कर्णरूप = ३२ — या हुआ यहाँ भुजरूप मूल और अग्र का अन्तर सोलह है ।

∵ भुज और कोटि का वर्गयोग कर्ण वर्ग के समान होता है। अतः समीकरण—

$२५६ + या^{२} = (३२ - या)^{२} = १०२४ - ६४ या + या^{२}$

$\therefore २५६ = १०२४ - ६४ या$

$\therefore ६४ या = १०२४ - २५६ = ७६८$

$\therefore या = \frac{७६८}{६४} = १२$
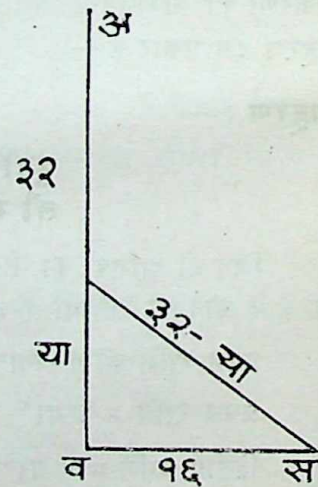
यही कोटि का मान है इसको बाँस के मान में घटाने से कर्ण मान = २० = बाँस का ऊपरी भाग ।

इस प्रकार उड्डीनमान दो स्तम्भो के **'अन्योन्य मूलाग्रग, सूत्रयोग'**—से लग्नमान आदि लाने के लिए एकवर्ण समीकरण प्रस्तुत किया गया है ।

१०—अथ एकवर्ण मध्यमाहरणम्—

अथाव्यक्तवर्गादिसमीकरणम्—

मध्यमाहरण का अर्थ है वर्गराशि के समीकरण में से अव्यक्त का मान लाना। इसके लिए आचार्य नियम बताते हैं।

सूत्रम्—

अव्यक्तवर्गादि यदाऽवशेषं पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किंचित्।
क्षेप्यं तयोर्येन पदप्रदः स्यादव्यक्तपक्षोऽस्य पदेन भूयः॥ १॥
व्यक्तस्य मूलस्य समक्रियैवमव्यक्तमानं खलु लभ्यते तत्।
न निर्वहश्चेद्धनवर्गवर्गेष्वेवं तदा ज्ञेयमिदं स्वबुद्ध्या॥ २॥
अव्यक्तमूलर्णगरूपतोल्पं व्यक्तस्य पक्षस्य पदं यदि स्यात्।
ऋणं धनं तच्च विधाय साध्यमव्यक्तमानं द्विविधं क्वचित् स्यात्॥३॥

जब समीकरण के एक पक्ष में अव्यक्त वर्ग आदि शेष रह जाय तब वहाँ उक्त रीति से अव्यक्त का ज्ञान असम्भव हो जायेगा। अतः मध्यमाहरण की विधि को बतला रहे हैं।

जैसे समान शोधन करने के अनन्तर एक पक्ष में अव्यक्त वर्ग आदि और दूसरे पक्ष में रूपमात्र हो तो दोनों पक्षों को किसी एक इष्ट से गुणना, भाग देना, कुछ जोड़ना या घटाना जिससे अव्यक्त पक्ष मूलप्रद हो जाय। एवं व्यक्त पक्ष भी मूलद हो जायगा। क्योंकि समान दो पक्षों में समान योगादि से समत्व नष्ट नहीं होता। इस तरह दोनों पक्षों के मूल ग्रहण करने पर एक पक्ष में अव्यक्त और दूसरे पक्ष में व्यक्तमान शेष रह जायगा। पुनः पूर्वकथित एक वर्ण समीकरण के द्वारा अव्यक्त मान का व्यक्त मान लाना चाहिए।

यहाँ पर सुधाकर द्विवेदी ने वर्ग समीकरण में अव्यक्त का द्विविध मान लाने के लिए आधुनिक गणित से उपपत्ति प्रस्तुत की है जैसे—

एक वर्ण मध्यमाहरण का स्वरूप = $इ. \; या^2 \pm इ'. \; या = \pm व्य$,

$$\therefore \; या^2 \pm \frac{इ'}{इ} या = \pm \frac{व्य}{इ},$$

$$\therefore \; या^2 \pm \frac{इ'}{इ} या + \left(\frac{इ'}{२इ}\right)^2 = \left(\frac{इ'}{२इ}\right)^2 \pm \frac{व्य}{इ}$$

दोनों पक्षों का मूल ग्रहण करने पर—

$$या \pm \frac{इ'}{२इ} = \pm \sqrt{\left(\frac{इ'}{२इ}\right)^2 \pm \frac{व्य}{इ}}$$

यहाँ यदि $या + \frac{इ'}{२इ} = \sqrt{\left(\frac{इ'}{२इ}\right)^2 \pm \frac{व्य}{इ}}$ तो यह मान होगा।

अथवा $या - \frac{इ'}{२इ} = \sqrt{\left(\frac{इ'}{२इ}\right)^2 \pm \frac{व्य}{इ}}$

यहां पर 'अव्यक्त मूलर्णगरूपतोऽल्पं व्यक्तस्य पक्षस्यपदं' सिद्ध हुआ।

यहाँ भी दो स्थिति हुई।

$या - \frac{इ'}{२इ} = \pm मू$

$\therefore या = \frac{इ'}{२इ} \pm मू$

अतः द्विविधं मान ठीक ही कहा गया है।

श्रीधराचार्य ने वर्ग समीकरण में भिन्न, भिन्न मूलगुणक का वर्ग न जोड़ना पड़े इसके लिए एक सूत्र बनाया है। यथा—

"चतुराहतवर्गसमै रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत्।
अव्यक्तवर्ग रूपैर्युक्तौ पक्षौ ततो मूलम्॥"

अर्थात् दोनों पक्षों के मूल ग्रहण के लिए चतुर्गुणित अव्यक्त वर्गाङ्क से गुण कर गुणन के पहले जो अव्यक्ताङ्क है उसके वर्ग के समान रूप जोड़ देने से दोनों पक्ष वर्गात्मिक हो जाता है।

श्रीधराचार्य के सूत्र की नवीनोपपत्ति—

कल्पना किया $गु. या^2 + गु'. या = व्य.$

$\therefore या^2 + \frac{गु'.}{गु} या = \frac{व्य}{गु.}$

अब दोनों पक्षों में $\left(\frac{गु'}{२गु}\right)$ वर्ग प्रक्षेप से दो पक्ष हुआ।

$या^2 + \frac{गु'.}{२गु} या + \left(\frac{गु'}{२गु}\right)^2 = \frac{व्य}{गु} + \left(\frac{गु'}{२गु}\right)^2$

$४ गु^2$ इससे गुणित करने पर दो पक्ष

$४ गु^2. या^2 + २ गु'. गु. या + गु'^2 = ४ गु. व्य + गु'^2$

यह उपपन्न हुआ।

एक अन्य उदाहरण उपस्थित है। जो वहुत प्रसिद्ध है।

अलिकुलदलमूलं मालतीं यातमष्टौ
निखिलनवमभागाश्चालिनी भृङ्गमेकम्।
निशि परिमललुब्धं पद्ममध्ये निरुद्धं
प्रतिरणति रणन्तं ब्रूहि कान्तेऽलिसंख्याम्॥ १॥

किसी भ्रमर समूह का आधे का मूल भाग मालती पुष्प पर चला गया। तथा सम्पूर्ण का अष्टगुणित नवम भाग $\frac{८}{९}$ भी मालती पर चला गया, रात्रि में गन्धलोलुप एक भ्रमर कमल में सम्पुटित हो बोल रहा था और उसकी प्राप्ति कामना से सम्पुटित कमल पर एक भ्रमरी भी बोल रही थी तो कुल भ्रमरों की संख्या बताओ।

कल्पना किया भ्रमर समूह = २ यावत्तावद्वर्ग = $२ \text{ या}^{२}$

इसके आधे का मूल = $\sqrt{\frac{२\text{या}^{२}}{२}}$ = या मालती पर गया

सम्पूर्ण का नवाँभाग अष्टगुणित = $\frac{८ \times २\text{या}^{२}}{९} = \frac{१६\text{या}^{२}}{९}$ पुनः मालती को गया।

तथा दृश्य = २ है।

सब का योग राशि $२ \text{ या}^{२}$ के समान है अतः समीकरण :—

$$\text{या} + \frac{१६\text{या}^{२}}{९} + २ = २ \text{ या}^{२}$$

$$\therefore \frac{९ \text{ या} + १६ \text{ या}^{२} + १८}{९} = २ \text{ या}^{२}$$

$$\therefore ९ \text{ या} + १६ \text{ या}^{२} + १८ = १८ \text{ या}^{२}$$

$\therefore १८ = २ \text{ या}^{२} - ९ \text{ या}$ यहाँ अव्यक्तवर्गाङ्क २ को ४ से गुणा किया तो ८ हुआ।

इससे दोनों पक्षों को गुणा कर अव्यक्तांक ९ का वर्ग ८१ तुल्य रूप जोड़ने से दोनों पक्ष—

$$\therefore १६ \text{ या}^{२} — ७२ \text{ या} + ८१ = १८ \times ८ + ८१ = २२५$$

$$\therefore ४ \text{ या} - ९ = १५$$

$$\therefore ४ \text{ या} = २४ \qquad \therefore \text{या} = \frac{२४}{४} = ६$$

अतः उत्थापन देने से भ्रमरों की संख्या—

$$२ \text{ या}^{२} = २ (६)^{२} = ७२$$

उपपन्न हुआ।

दूसरा उदाहरण—

व्येकस्य गच्छस्य दलं किलादिरादेर्दलं तत्प्रचयः फलं च।
चयादिगच्छाभिहतिः स्वसप्तभागाधिका ब्रूहि चयादिगच्छान् ॥ ३ ॥

अर्थात्—जिस उदाहरण में एकोन गच्छ का आधा आदि, आदि का आधा चय, और अपने सातवें भाग से अधिक चय, आदि, गच्छ इन तीनों का घात फल है तो बताओ चय–आदि–गच्छ क्या होगा ॥३॥

गच्छ का प्रमाण = या कल्पना किया

एक कम इसका आधा आदि = $\frac{\text{या} - १}{२}$

आदि का आधा चय = $\frac{या-१}{४}$

चय, आदि, गच्छ इन तीनों के घात = $\frac{या-१}{२} \times \frac{या-१}{४} \times या = \frac{या-१}{४} \times \frac{या^२-या}{२} =$

$\frac{या^३-या^२-या^२+या}{८} = \frac{या^३-२ या^२+या}{८}$ इसमें स्वसप्तमांश जोड़ने से फल—

$$\frac{या^३-२ या^२+या}{८} + \frac{या^३-२ या^२+या}{८\times७}$$

$$= \frac{७ या^३-१४ या^२+७ या}{५६} + \frac{या^३-२या^२+या}{५६}$$

$= \frac{८ या^३-१६ या^२+८ या}{५६} = \frac{या^३-२ या^२+या}{७}$ अब 'व्येक पदघ्नचयो मुखयुक् स्यात्'

इत्यादि पाटी गणित प्रकार से एकोन गच्छ से चय को गुणाकर आदि जोड़ने से—

$$अन्त्य\ धन = (या-१) \times \frac{या-१}{४} + \frac{या-१}{२}$$

$$= \frac{या^२-२ या+१}{४} + \frac{या-१}{२} = \frac{या^२-२ या+१}{४} + \frac{२ या-२}{४} = \frac{या^२-१}{४}$$

इसमें आदि जोड़ कर आद्यमध्य धन = $\frac{\frac{या^२-१}{४}+\frac{या-१}{२}}{२} = \frac{\frac{या^२-१}{४}+\frac{२ या-२}{४}}{२}$

$= \frac{या^२+२ या-३}{८}$ इसको गच्छ से गुणने से सर्वधन = $\frac{या^२+२ या-३}{८} \times या =$

$= \frac{या^३+२ या^२-३ या}{८}$ = फल

यह पूर्व फल के बराबर है इसलिए समीकरणः—

$$\therefore ८ या^३-१६ या^२+८ या = ७ या^३+१४ या^२-२१ या.$$

$$\therefore \frac{८ या^३-१६ या^२+८ या}{या} = \frac{७ या^३+१४ या^२-२१ या}{या}$$

$$\therefore ८ या^२-१६ या+८ = ७ या^२+१४ या-२१$$

$$\therefore (८ या^२-१६ या)-(७ या^२+१४ या) = -२१-८$$

$$वा\ या^२-३० या = -२९$$

$$\therefore या^२-३० या+२२५ = २२५-२९$$

$$वा\ या^२-३० या+२२५ = १९६$$

$\therefore \sqrt{\text{या}^2 - ३० \text{ या} + २२५} = \pm \sqrt{१९६}$

वा या − १५ = ± १४

यदा या − १५ = १४ तदा या = १४ + १५ = २९

यदा च या − १५ = − १४ तदा

या = १५ − १४ = १ परन्तु यह ठीक नहीं है।

यहाँ यावत्तावत् का मान गच्छ = २९ हुआ, इससे उत्थापन देने से

$\text{आदि} = \frac{\text{या} - १}{२} = \frac{२९ - १}{२} = १४$

$\text{चय} = \frac{\text{या} - १}{४} = \frac{२९ - १}{४} = ७$

उपपन्न हुआ ।

अब भास्कराचार्य ० गुणक और भाजक का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, यह बताते हैं कि उनका शून्य अत्यल्प सूक्ष्म राशि का वाचक है न कि अभाव का। उदाहरण :—

कः खेन विहृतो राशिराद्ययुक्तो नवोनितः।
वर्गितः स्वपदेनाढ्यः खगुणो नवतिर्भवेत् ॥ ४ ॥

अर्थात् वह कौन सी राशि है जिसे शून्य से भाग देकर जो फल मिले उसी में जोड़ दें तथा उसमें नव घटाकर वर्ग में उसका मूल जोड़ दें तथा शून्य से गुणा करें तो ९० होता है।

राशि कल्पना किया = या १ इसे ० से भाग दिया तो $\frac{\text{या } १}{०}$ हुआ। यहाँ पर खहर कल्पना मात्र समझना चाहिए

आदि या १ में जोड़ा तो या २ हुआ इसमें ९ घटा दिया तो

या २ − ९ इसका वर्ग = याव ४ − या ३६ + ८१ अपने ही मूल को जोड़ने से = या ४ − या ३४ रु ७२ इसे ० से गुणा करने पर 'शून्ये गुण के जाते खं' इत्यादि में पहले भाग दिया अब गुणा करते हैं। अतः परिणाम शून्य मान लिया इस प्रकार दो पक्ष याव ४ − या ३४ + ७२ = याव० या० + ९० समान शोधन से

याव ४ − या ३४ + ० = याव० या० + १८ दोनों पक्षों को १६ से गुणा कर तथा ३४ के वर्ग तुल्य पूर्णाङ्क जोड़कर मूल लिया दोनों पक्षों में शोधन के लिए :—

या ८ − ३४ = या० + ३८ = राशिः ९

यहाँ **'वाऽऽद्ययुक्तोऽथवोनितः'** इस पाठ के अनुसार राशि=या १, खहृत = $\frac{\text{या}१}{०}$, या १ में जोड़ दिया तथा ऊन करने के लिए खहर होने से समच्छेद करने पर शून्य से ही जोड़ तथा घटाना हुआ $\therefore \frac{\text{या } १}{०}$। वर्ग किया $\frac{\text{याव } १}{०}$ अपने मूल को जोड़ने से = $\frac{\text{याव } १ \text{ या } १}{०}$ इसे खगुण तथा पहले खहर के अनुसार समाप्त कर = याव १ या १ यही ९० के बराबर हुआ।

न्यास = याव १ या १ रु. ० = याव ० या० रु० ९०.

समशोधन विधि से या २ रु १ = या० रु. १९

= ९ यह सिद्ध हुआ।

भास्कराचार्य के समय तक + समीकरण के समाधान के लिए कोई प्रक्रिया विकसित नहीं हुई थी। इसलिए आचार्य ने + सम्बन्धी उदाहरण देकर के लिखा है कि इसमें अपनी बुद्धि से ही कुछ योग वियोग कर देने पर घनमूल मिल जायेगा। किन्तु यह प्रक्रिया सर्वत्र सफल नहीं होगी। इसके लिए कार्डान थ्योरी का उपयोग समुचित है। जिसमें घन समीकरण को भी वर्ग समीकरण में परिणत कर वर्गसमीकरण की युक्ति से अव्यक्त राशि का मान लाया गया है।
आचार्य का उदाहरण :—

राशिर्द्वादशनिघ्नो राशि घनाढ्यश्च कः समो यः स्यात्।
राशिकृतिः षड्गुणिता पञ्चत्रिंशद्युता विद्वन्॥ ६॥

अर्थात् वह कौन सी राशि है जिसे बारह से गुणा कर गुणनफल में राशि का घन जोड़ देते हैं तो पैंतिस से युक्त छै गुणा राशि के वर्ग के समान होता है।

यहाँ राशि = या कल्पना किया

इसको १२ से गुणा कर राशि का घन जोड़ा तो या^{३} + १२ या हुआ।

यह पैंतिस से युक्त छै गुणित राशि के वर्ग ६ या^{२} + ३५ के समान है।

अतः या^{३} + १२ या = ६ या^{२} + ३५

∴ या^{३} − ६ या^{२} + १२ या = ३५

∴ या^{३} − ६ या^{२} + १२ या − ८ = ३५ − ८ = २७

∴ $\sqrt[३]{\text{या}^{३} - ६\ \text{या}^{२} + १२\ \text{या} - ८} = \sqrt[३]{२७}$

∴ या — २ = ३

∴ या = २ + ३ = ५

यह सिद्ध हुआ।

आधुनिक वर्ग समीकरण के नियमानुसार घन का वर्गमूल जो − होता है वह भी ग्राह्य है, किन्तु भास्कराचार्य कहते हैं कि ऋणात्मक वर्ग मूल लोक में अनुपपन्न होने से ग्रहण नहीं करना चाहिए। आज कल ऋण संख्या, ऋण संख्या का वर्गमूल ये दोनों ही गणित में विशेष महत्व के हो गये हैं। $\sqrt{-१}$ इस संख्या के द्वारा ज्या, कोटिज्या स्पर्श रेखा आदि त्रैकोणमितिक फलों का विस्तार किया गया है। डेमाईवर थ्योरी और द्वितीय भाग सरल त्रिकोणमिति में इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। किन्तु भास्कराचार्य वर्ग समीकरण में अव्यक्त के द्विविध मान में केवल धनात्मक द्विविध मान को ही महत्व देते हैं और इसी का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण :—

वनान्तरालेप्लवगाष्टभागः संवर्गितोवल्गति जातरागः।
फूत्कारनादप्रतिनाद हृष्टा दृष्टा गिरौ द्वावश ते कियन्तः॥ ८॥

अर्थात् किसी वन में बन्दरों का एक समूह है, जिसका अष्टमांश का वर्ग तुल्य आनन्द पूर्वक शब्द कर रहा है और बारह बन्दर वहीं पर्वत पर आपस में परस्पर फूत्कार शब्द कर रहे हैं तो कुल बन्दरों की संख्या कितनी है।

बन्दरों का प्रमाण = या कल्पना किया।

या के अष्टमांश का वर्ग $= \left(\frac{या^2}{६४}\right)$ हर्ष से शब्द कर रहा है।

और बारह दृश्य है। दोनों का योग राशि तुल्य है। अत :—

$\frac{या^2}{६४} + १२ = या$ । $\therefore \frac{या^2 + ७६८}{६४} = या$

$\therefore या^2 + ७६८ = ६४ या$

$\therefore या^2 — ६४ या + (३२)^2 = (३२)^2 — ७६८$

वा $या^2 — ६४ या + १०२४ = १०२४ — ७६८ = २५६$

$\therefore \sqrt{या^2 - ६४ या + १०२४} = \pm\sqrt{२५६}$

$\therefore या - ३२ = १६$ $\therefore या = ३२ + १६ = ४८$

वा $या - ३२ = - १६$ $\therefore या = १६$

यह सिद्ध हुआ

समकोण त्रिभुज में भुज और कोटि के वर्गों का योग कर्णवर्ग के तुल्य होता है। यह सिद्धान्त पैथागोरस से ८०० वर्ष पहले के बौधायन शुल्व सूत्र में वर्णित है। और भारतीय आचार्यों ने इसकी उपपत्ति क्षेत्रफल और बीज गणित की क्रिया से की है। इसको हमारे भास्कराचार्य ने उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया है।

क्षेत्रे तिथि नखैस्तुल्ये दोःकोटी तत्र का श्रुति।
उपपत्तिश्च रूढ़स्य गणितस्यास्य कथ्यताम् ॥ १३ ॥

अर्थात् जिस त्रिभुज क्षेत्र में भुज १५ और कोटि २० है वहाँ कर्ण का मान क्या होगा? तथा भुज कोटि के वर्ग योग का मूल कर्ण होता है इस प्रसिद्ध गणित की युक्ति क्या है कहो।

कर्ण का प्रमाण = या कल्पना किया।

अब भुज, कोटि इन दोनों को दो भुज और कर्ण को भूमि कल्पना करने से क्षेत्र की स्थिति निम्नलिखित की तरह हुई।
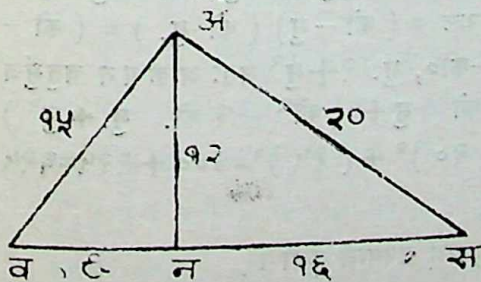
दोनों भुजों के सम्पात विन्दु अ से अन लम्ब किया, इस तरह लम्ब के द्वारा अ व न, अ न स ये दो त्रिभुज उत्पन्न हुए। इनमें क्रम से वन, न स दोनों के भुज अ व, अ स दोनों के कर्ण और अन लम्ब दोनों की कोटी हुई। यहाँ अनुपात करते हैं कि "या, तुल्य कर्ण में अ व (१५) तुल्य भुज पाते हैं, तो १५ तुल्य कर्ण में क्या" इससे अ व;

भुजाश्रित व न आवाधा $= \frac{१५ \times १५}{या} = \frac{२२५}{या}$, एवं "या तुल्य कर्ण में अस (२०) तुल्य कोटि पाते हैं तो २० तुल्यकर्ण में क्या" इससे अ स भुजाश्रित न स, आवाधा $= \frac{२० \times २०}{या} = \frac{४००}{या}$,

$\because$ व न + न स = व स। $\therefore \frac{२२५}{या} + \frac{४००}{या} =$ या,

वा $\frac{२२५ + ४००}{या} =$ या,

$\therefore$ या $\sqrt{२२५ + ४००} = \sqrt{भु^२ + को^२} = \sqrt{६२५} =$ २५ कर्णमान

इससे पाटी गणित में कहा हुआ, "तत्कृत्योर्योग पदं कर्णः" यह उपपन्न होता है।

कर्णमान से उत्थापन देने से

छोटी आवाधा $= \frac{२२५}{या} = \frac{२२५}{२५} = ९$

वड़ी आवाधा $= \frac{४००}{या} = \frac{४००}{२५} = १६$।

छोटी आवाधा और छोटे भुज का वर्गान्तर मूल लम्बमान $= \sqrt{(१५)^२ - (९)^२} = \sqrt{२२५ - ८१} = \sqrt{१४४} = १२$

वड़ी आवाधा और बड़े भुज का वर्गान्तर मूल लम्ब $= \sqrt{(२०)^२ - (१६)^२} = \sqrt{४०० - २५६} = \sqrt{१४४} = १२$

इसी को प्रकारान्तर से लाने के लिए इस त्रिभुज को इस प्रकार रक्खें की एक आयत क्षेत्र के रूप में इसका चतुर्गुणित उत्पन्न हो।
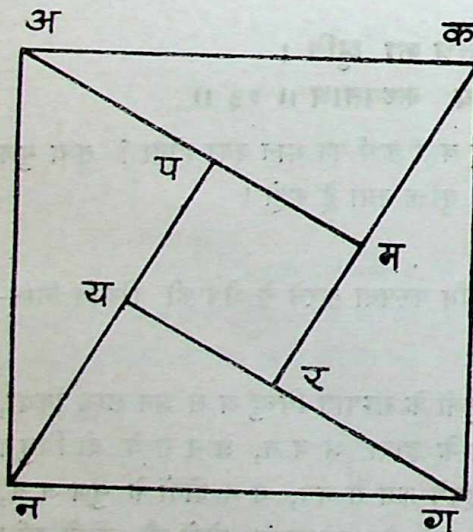
आयत क्षेत्र में 'तथायते तद्भुजकोटिघातः" इस सूत्र के अनुसार भुजकोटि के घात तुल्य फल होता है। अतः दो आयत क्षेत्र का फल = भु. को. २ अथवा जात्य-त्रिभुज में भुजकोटि के घातार्धतुल्य फल होता है। वे चार हैं। अतः अकम, कगर, गनय न अ प चारों त्रिभुजों का क्षेत्रफल $= \frac{भु. को ४}{२} =$ २ भु. को।

तथा प म र य चतुर्भुज में भुज = को − भु. इसके समान है अतः फल $= (को - भु) (को - भु.) = (को - भु०)^२ = को^२ - को०, भु. २ + भु^२$ अतः अ क ग न चतुर्भुज का फल $= २ को \; भु + (को^२ - २ को. \; भु. + भु^२) = को^२ + भु^२ = (२०)^२ + (१५)^२ = ४०० + २२५ = ६२५$

यह $या^२$ के तुल्य है अतः समीकरण से :—

$या^२ = ६२५$, $\therefore$ या $= \sqrt{६२५} = २५ =$ कर्ण, यह उपपन्न हुआ।

राशियों का वर्गयोग और योगवर्ग का अन्तर उनके द्विगुणघात के तुल्य होता है। इस बात को भारतीयों ने क्षेत्रफलविज्ञान और बीजगणित इन दोनों प्रकार की उपलब्धियों से सिद्ध किया है। भास्कराचार्य का सूत्रः—

वर्गयोगस्य यद्राश्योर्युतिवर्गस्य चान्तरम्।
द्विघ्नघातसमानं स्याद्द्वयोरव्यक्तयोर्यथा ॥ १६ ॥

कल्पना किया कि ५ और ३ ये दो राशियाँ हैं। इनके योग (५ + ३ = ८) के तुल्य अकगन चतुर्भुज है। इसका क्षेत्रफल दौनों राशियों के योगवर्ग (६४) के तुल्य है। इस अकगन वृहद् चतुर्भुज में लघु और वृहद्राशि के समान चतुर्भुज घटाने से शेष सकमल और रलपन दो आयत बचते हैं, और ये दोनों बराबर हैं दोनों में एकभुज लघुराशि = ३ और एकभुज वृहद् राशि=५ के है। अतः एक का फल ५ × ३ = १५ हुआ। इसके दूना ३० तुल्य दोनों आयतों का फल हुआ।
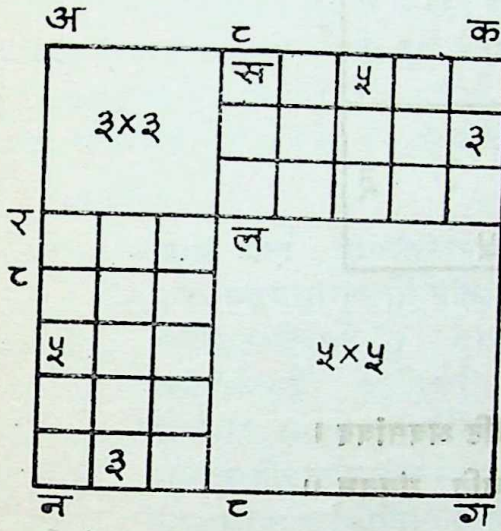
अतः $(५+३)^२ - \left\{ (५)^२ + (३)^२ \right\}$

$= ६४ - \left\{ (२५+९) \right\}$

$= ६४ - ३४ = ३०$ यह उपपन्न हुआ।

इसी प्रकारः सूत्र—

चतुर्गुणस्य घातस्य युतिवर्गस्य वान्तरम्।
राश्यन्तरकृतेस्तुल्यं द्वयोरव्यक्तयोर्यथा ॥ १७ ॥

अर्थात् दो राशियों का योगवर्ग, चतुर्गुणितघात इन दोनों का अन्तर उनके अन्तर वर्ग के समान होता है, जिस तरह दो अव्यक्त राशियों का होता है।

उपपत्ति—यथा कल्पना किया राशि य ओर क हैं।

इनका योग = य + क और अन्तर = य − क है।

$\therefore$ योग वर्ग − अन्तर वर्ग $= (य + क)^२ - (य - क)^२$

$= य^२ + क^२ + २\,यक - (य^२ + क^२ - २\,यक)$

$= य^२ + क^२ + २\,यक - य^२ - क^२ + २\,यक$

$= ४\,य\,क$

$\therefore (य + क)^२ - ४\,यक = (य - क)^२$

इसकी उपपत्ति स्वयं भास्कराचार्य ने अपने व्यक्ताकों के द्वारा क्षेत्र की स्थिति को दिखाते हुए लिखा है। यथा :—

अत्रराशी ३, ५ । अनयोर्युति वर्गात् चतुर्षु कोणेषु घात चतुष्टयेऽपनीते मध्ये राश्यन्तर वर्ग समानि कोष्ठकानि दृश्यन्त इत्युपपन्नम् ।

तद्दर्शनम् :—
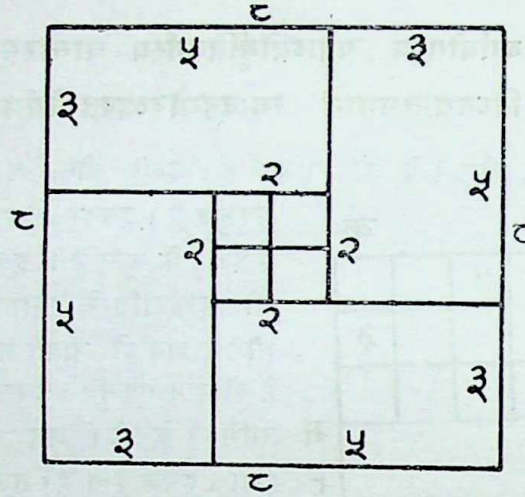
उदाहरण :—

चत्वारिंशद्युतिर्येषां दोः कोटि श्रवसांवद ।
भुजकोटिवधो येषु शतंविंशति संयुतम् ।।

अर्थात् – भुज, कोटि, कर्ण इन तीनों का योग ४० है और भुज कोटि का घात १२० है तो भुज कोटि और कर्ण का मान अलग अलग कहो ।

कल्पना किया कर्ण का मान = या

$\because$ भु + को + क = ४० । $\therefore$ भु + को = ४० – क = ४० – या ।

$\because$ (भु + को $)^2$ = (४० – या $)^2$ = १६०० – ८० या + या^{2} = भु^{2} + को^{2} + २ भु. को,

$\therefore$ भु^{2} + को^{2} = १६०० – ८० या + या^{2} – २ भु. को ।

= १६०० – ८० या + या^{2} – २४० = कर्ण^2 = या^{2}

$\therefore$ १६०० – २४० = या^{2} – (– ८० या + या^{2})

$\therefore$ १३६० = ८० या, $\therefore$ या = $\frac{१३६०}{८०}$ = १७ = कर्ण

इस प्रकार कर्ण का मान १७ आ गया और तीनों का योग ५० है अतः ४० – १७ = २३ यह भु + को का योग आ गया और "चतुर्भुजस्य घातस्य युति वर्गस्य चान्तरम्" इस आधार पर

(भु + को $)^2$ – ४ भु. को = (को – भु $)^2$

$\therefore$ (२३ $)^2$ – ४ × १२० = ५२९ – ४८० = ४९ = (को – भु $)^2$,

$\therefore$ ७ = को – भु । योग का ज्ञान २३ है ही ।

अतः 'योगोन्तरेणोनयुतो...' इत्यादि के अनुसार

$$\text{भुज} = \frac{२३ - ७}{२} = \frac{१६}{२} = ८$$

$$\text{कोटि} = \frac{२३ + ७}{२} = \frac{३०}{२} = १५$$

यह उपपन्न हुआ।

११—अनेक वर्ण समीकरण के बीज गणितीय उदाहरणों के लिए आचार्य ने कतिपय मौलिक सूत्रों का निर्देश किया है। आज भी उन्हीं सूत्रों के अनुसार बीजगणित की क्रियायें की जाती हैं। इस प्रकरण में १४ उदाहरणों को दिया गया है। अन्त में अनिर्धारित समीकरण कुट्टक और वर्ग प्रकृति के द्वारा भी अव्यक्त राशियों के मान लाये गए हैं। जो गणित के विचित्र प्रश्नों के लिए अति उपयोगी हैं।

सूत्र :—

आद्यं वर्णं शोधयेदन्यपक्षादन्यान् रुपाण्यन्यतश्चाद्य भक्ते।
पक्षेऽन्यस्मिन्नाद्यवर्णोन्मितिः स्याद् वर्णस्यैकस्योन्मितीनां बहुत्वे ॥ १ ॥
समीकृतच्छेदगमे तु ताभ्यस्तदन्य वर्णोन्मितयः प्रसाध्याः।
अन्त्योन्मितौ कुट्टविधेर्गुणाप्ती ते भाज्यतद्भाजकवर्णमाने ॥ २ ॥
अन्येऽपि भाज्ये यदिसन्ति वर्णास्तन्मानमिष्टं परिकल्प्य साध्ये।
विलोमकोत्त्थापनतोऽन्यवर्ण मानानिभिन्नं यदि मानमेवम् ॥ ३ ॥
भूयः कार्यः कुट्टकोऽत्रान्त्य वर्णं तेनोत्त्थाप्योत्थापयेद्व्यस्तमाद्यान् ॥ ३½ ॥

अर्थात् जिस किसी उदाहरण में दो तीन चार आदि राशियों का मान अव्यक्त हो, वहाँ उनके मान यावत्तावत्, कालक, नीलक, पीतक, लोहितक, हरीतक, स्वेतक, चित्रक, कपिलक....मेचक आदि कल्पना कर प्रश्न कर्ता के अनुसार दो तीन आदि समान पक्ष सिद्ध करना चाहिए।

इस प्रकार से सिद्ध दो पक्षों के एक पक्ष के आदि वर्ण को अन्यपक्ष में और अन्यपक्ष के रूप सहित वर्णों को दूसरे पक्ष में घटाना चाहिए। आद्य पक्ष में स्थित अव्यक्त गुणकाङ्क से दूसरे पक्ष में भाग देने से आद्यवर्ण का मान प्राप्त होगा। एवं आद्य वर्ण का अनेक मान आवे तो उनसे समीकरण के द्वारा अन्य वर्ण का मान होगा। यदि इसका भी अनेक मान आवे तो फिर समीकरण द्वारा उससे अगले वर्ण का मान लाना चाहिए।

इस क्रिया के द्वारा अन्त्य में जो मान आवे उस पर से कुट्टक के द्वारा गुण लब्धि लाना चाहिए। अर्थात् भाज्यगत वर्णाङ्क को भाज्य और भाजक गत वर्णाङ्क को भाजक और रूप को क्षेप कल्पना कर कुट्टक विधि से गुण और लब्धि प्राप्त करना चाहिए। इनमें गुण भाज्य गत वर्ण का और लब्धि भाजक गत वर्ण का मान हो जायेगा।

यदि अन्त्यवर्ण के मान में और अव्यक्त हो तो इष्ट कल्पना करके अपने-अपने मान से उन वर्गों में उत्थापन देने से जो अङ्क उपलब्ध हो उसे रूप में जोड़ या घटा कर क्षेप की कल्पना करना चाहिए। फिर उस पर से कुट्टक के द्वारा गुण लब्धि लानी चाहिए। इस तरह भाज्य और भाजक गत वर्ण का मान हो जायेगा। पुनः विलोम ऋति से उत्थापन देकर भाज्य भाजक से भिन्न वर्ण का मान लाना चाहिए।

जैसे—आये हुए मान के दृढ़ भाज्य, भाजक को इष्ट वर्ण से गुणा करने से आये मान को क्षेप कल्पना करना चाहिए। फिर क्षेप सहित अपने २ मान से पूर्व वर्ण के मान में उत्थापन देकर अपने २ छेद का भाग देने से जो लब्धि आवे वह पूर्व वर्ण का मान हो जायगा। इस प्रकार आगे के वर्ण का मान जानने से उससे पूर्व वर्ण का मान सरलता पूर्वक ज्ञात हो जाता है। जैसे पीतक के मान से नीलक का, नीलक के मान से कालक का मान ज्ञात होता है। अतः विलोम उत्थापन अन्वर्थक नाम है। यदि इस क्रिया से पूर्व वर्ण का मान भिन्न आवे तो पुनः कुट्टक के द्वारा आये हुए गुण लब्धि को संक्षेर कर भाज्य, भाजक गत वर्ण का मान जानना चाहिए। संक्षिप्त गुण से अन्त्य वर्ण के मान में जो वर्ण हो उसमें उत्थापन देकर फिर आद्य से विलोम उत्थापन देना चाहिए। यहाँ जिस वर्ण में पहले उत्थापन देने से भिन्न मान आया था वह आद्य कहलाता है।

यहाँ पर जिस वर्ण का व्यक्त या अव्यक्त जो मान आया है उसको व्यक्ताङ्क से गुण देने से उस वर्ण का निरसन (दूरी करण) होता है। अतः इसका नाम उत्थापन है।

उदाहरण :—

माणिक्यामलनील मौक्तिकमितिः पञ्चाष्टसप्तक्रमा-
देकस्यान्यतरस्य सप्त नव षट् तद्रत्नसंख्या सखे।
रूपाणां नवतिर्द्विषष्टिरनयोस्तौ तुल्यवित्तौ तथा,
बीजज्ञ प्रतिरत्नजानि सुमते मौल्यानिशीघ्रं वद ॥ १ ॥

अर्थात् किसी व्यापारी के पास ५ माणिक्य ८ नीलम ७ मोती और ९० रुपये हैं। दूसरे के पास ७ माणिक्य ९ नीलम ६ मोती और ६२ रुपये हैं। यदि दोनों व्यापारियों का धन बराबर हो तो हे बीज-गणित के जानने वाले प्रत्येक रत्न का मूल्य क्या होगा? शीघ्र बताओ।

यहाँ माणिक्य आदि का मूल्य क्रमशः या, का, और नी, कल्पना किया।

∵ १ माणिक्य का मूल्य या तो ५ माणिक्य का मूल्य = ५ या,

इसी प्रकार आठ नीलम का मूल्य = ८ का.

इसी प्रकार नात मोती का मूल्य = ७ नी.

अतः प्रथम का धन = ५ या + ८ का. + ७ नी. + ९०

द्वितीय का धन = ७ या + ९ का + ६ नी. + ६२ यह हुआ।

दोनों का धन समान होने के कारण समशोधन के लिए न्यास—

५ या + ८ का + ७ नी. + ९० = ७ या + ९ का + ६ नी. + ६२

अब **'आद्यं वर्णं शोधयेदन्यपक्षात्'** इत्यादि प्रकार से समशोधन करने से दोनों पक्ष —

$$२ \text{ या} = - \text{का} + \text{नी.} + २८ \quad \text{अतः या} = \frac{- \text{का.} + \text{नी.} + २८}{२}$$

यहाँ अन्त्य वर्ण की उन्मिति आना असम्भव है अतः अन्त्य उन्मिति का मान यही हुआ। अब यहाँ कुट्टक करना आवश्यक है, किन्तु भाज्य स्थान में दो वर्ण होने के कारण **"अन्येऽपि भाज्ये यदि सन्ति वर्णास्तन्मानमिष्टं परिकल्प्य साध्ये"**

इस सूत्र के अनुसार नीलम का मान = १ कल्पना किया

अतः या $= \frac{- \text{का} + १ + २८}{२} = \frac{\text{का} + २९}{२}$

अब भाज्य में स्थित वर्णाङ्क = १ को भाज्य, भाजक में स्थित वर्णाङ्क को भाजक और रूप को क्षेप कल्पना करके कुट्टक के लिए न्यास – $\frac{\text{भा } \dot{१} \text{ क्षे } २९}{\text{हा. } २}$

'हरतष्टे धन क्षेपे' इस सूत्र के अनुसार हार से क्षेप को तष्टित करके न्यास – $\frac{\text{भा } \dot{१} \text{ क्षे } १}{\text{हा } २}$

यहाँ कुट्टक विधि से वल्ली = $\begin{cases} ० \\ १ \\ ० \end{cases}$

उक्त रीति से लब्धि = ०, गुण = १ लब्धि को विषम होने के कारण अपने-अपने तक्षण में शुद्ध करने से लब्धि = १, गुण = १।

यहाँ भाज्य को ऋण होने के कारण **'तद्वत्क्षेपे धनगते व्यस्तं स्याद्दृण भाज्यके'** इस सूत्र के अनुसार पूर्वानीत लब्धि गुण को अपने-अपने तक्षण में घटाने से लब्धि = ०, गुण = १ लब्धि ० में क्षेप तक्षण लाभ १४ जोड़ने से लब्धि = १४ हुई। गुण पूर्वानीत ही रहा। यहाँ लब्धि १४ भाजकस्थ यावत्तावत् वर्ण का मान हुआ और गुण १ भाज्यस्थ कालक वर्ण का मान हुआ।

'इष्टाहतः स्वस्वहरेण युक्ते' इस सूत्र के अनुसार इष्ट पीतक १ कल्पना करके उससे गुणित अपने-अपने हर से युक्त किया तो :—

या = – पी + १४, और का = २ पी + १

नीलक का मान रूप १ के समान पहले कर चुके हैं। अब यावत्तावतादि का क्रम से न्यास :—

$\begin{cases} \text{या} = - \text{पी} + १४ \\ \text{का} = २ \text{ पी} + १ \\ \text{नी} = ० + १ \end{cases}$

यहाँ पीतक को शून्य के बराबर कल्पना करने से :—

$\begin{cases} \text{या} = १४ \\ \text{का} = १ \\ \text{नी} = १ \end{cases}$

अतः एक माणिक्य का मूल्य = १४। एक नीलक का मूल्य = १

और एक मोती का मूल्य = १ हुआ। इस प्रकार पीतक का मान विभिन्न कल्पना करने से रत्नों का अनेक प्रकार का मूल्य सिद्ध होगा।

आगे कुट्टक का पहेली जैसा उदाहरण भी आचार्य ने दिया है जो बड़ा ही रोचक है।

उदाहरणः —

त्रिभिः पारावताः पञ्च पञ्चभिः सप्तसारसाः।
सप्तभिर्नवहंसाश्च नवभिर्बर्हिणां त्रयम् ॥ ४ ॥

द्रम्मैरवाप्यते द्रम्मशतेन शतमानय।
एषां पारावतादीनां विनोदार्थं महीपतेः ॥ ५ ॥

अर्थात् तीन द्रम्म में ५ कबूतर, ५ द्रम्म में ७ सारस, ७ द्रम्म में ९ हंस, और ९ द्रम्म में ३ मयूर मिलते हैं तो राजा के विनोद के लिए १०० द्रम्म में सौ १०० कबूतर आदि खरीद कर लाओ।

यहाँ पर कबूतर आदि जीवों का मूल्य क्रमशः या, का, नी, और पी. कल्पना किया। ३ द्रम्म में ५ कबूतर आते हैं तो या में क्या' इस अनुपात से या तुल्य द्रम्म में कबूतर का मान = $\frac{५ \text{ या}}{३}$। स... का मान = $\frac{७ \text{ का}}{५}$, हंस का मान = $\frac{९ \text{ नी.}}{७}$ और इसी अनुपात में पी, तुल्य द्रम्म में मोर का मान = $\frac{३ \text{ पी.}}{९}$ हुआ।

इनका योग = $\frac{५ \text{ या}}{३} + \frac{७ \text{ का}}{५} + \frac{९ \text{ नी.}}{७} + \frac{३ \text{ पी}}{९}$ इन्हें समच्छेदी करने पर

= $\frac{१५७५ \text{ या} + १३२३ \text{ का} + १२१५ \text{ नी.} + ३१५ \text{ पी.}}{९४५}$ नव से अपवर्तित करने पर

= $\frac{१७५ \text{ या} + १४७ \text{ का} + १३५ \text{ नी.} + ३५ \text{ पी}}{१०५}$ यह १०० के समान है अतः समीकरण—

= $\frac{१७५ \text{ या} + १४७ \text{ का} + १३५ \text{ नी.} + ३५ \text{ पी}}{१०५} = १००$

अतः १७५ या + १४७ का + १३५ नी. + ३५ पी = १०५००

$\therefore$ या = $\frac{- १४७ \text{ का} - १३५ \text{ नी.} - ३५ \text{ पी} + १०५००}{१७५}$

$\therefore$ जीवों के मूल्यों का योग भी १०० के बराबर है अतः समीकरण—

या + का + नी + पी = १००   अतः या = $\frac{- \text{का} - \text{नी} - \text{पी} + १००}{१}$

इस प्रकार यावत्तावत् के मान दो आये, ये दोनों परस्पर समान हैं अतः समीकरण—

$\frac{- १४७ \text{ का} - १३५ \text{ नी} - ३५ \text{ पी} + १०५०}{१७५} = \frac{- \text{का} - \text{नी.} - \text{पी} + १००}{१}$

अतः १७५ का − १७५ नी − १७५ पी. + १७५००= − १४७ का − १३५ नी − ३५ पी + १०५००

$\therefore$ २८ का = − ४० नी. − १४० पी. + ७०००

$\therefore$ का = $\frac{- ४० \text{ नी} - १४० \text{ पी.} + ७०००}{२८} = \frac{- १० \text{ नी.} - ३५ \text{ पी.} + १७५०}{७}$

यह अन्त्य उन्मिति आई। किन्तु भाज्य में २ वर्ग नी और पी. हैं, इसलिए पीतक का मान व्यक्त रूप से ३३ मानकर उत्थापन देने से—

का $= \frac{-१० नी - ३५ \times ३३ + १७५०}{७} = \frac{-१० नी. - ११५५ + १७५०}{७} = \frac{-१० नी. + ५९५}{७}$

अब कुट्टक क्रिया के लिए न्यास किया $\frac{- भा १० क्षे ५९५}{७}$

'क्षेपःशुद्धो हरोद्धृतः' इत्यादि कुट्टक प्रकरणोक्त सूत्रानुसार—गुण = ० लब्धि = ८५ आई यहाँ लोहितक का मान १ के बराबर मानकर **'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते'** इसके अनुसार—

गुण = लो ७ + ० = नी. लब्धि = – लो १० + ८५ = का.

पीतक का मान रूप ३३ के समान पहले कल्पना कर चुके हैं। अब इन सबों से यावत्तावत् मान में उत्थापन देने से :—

या $= \frac{-१४७ का - १३५ नी - ३५ पी + १०५०००}{१७५}$

$= \frac{-१४७ \times - लो. १० + ८५ \times -१४७ - १३५ \times लो ७ - ३५ \times ३३ + १०५००}{१७५}$

$= \frac{१४७० लो० - १२४९५ - ९४५ लो - ११५५ + १०५०००}{१७५} = \frac{५२५ लो - १३६५० + १०५००}{१७५}$

$= \frac{५२५ लो - ३१५०}{१७५}$ = ३ लो – १८ इसी प्रकार द्वितीय मान में उत्थापन देने पर—

या= $\frac{- का - नी - पी + १००}{१} = \frac{(- लो १० + ८५) - (लो ७) - (३३) + १००}{१} =$

$\frac{लो १० - ८५ - लो ७ - ३३ + १००}{१}$ = लो ३ – ११८ + १०० = लो ३ – १८

अब आये हुए यावत्तावत् आदि मानों का क्रमशः न्यास :—

या = लो ३ – १८

का = – लो १० + ८५

नी = लो ७ + ०

पी = ३३

यहाँ लोहितक का मान हम जैसा भी रक्खेंगे उसके अनुसार यावत्तावत् आदि का मान होगा।

अतः लोहितक का मान ७ कल्पना करके उत्थापन देने से :—

या = ३ लो – १८ = ३×७ – १८ = ३

का = – १० लो + ८५ = – १० × ७ + ८५ = १५

नी = ७ लो + ० = ७ + ७ + ० = ४९

पी = ३३

इन सबों का योग ३ + १५ + ४९ + ३३ = १०० हुआ। अर्थात् ३ द्रम्म का कबूतर १५ द्रम्म का सारस, ४९ द्रम्म का हंस और ३३ द्रम्म का मयूर लिया जिनकी १०० संख्या इस प्रकार हुई।

३ द्रम्म में ५ कबूतर आते हैं अतः कबूतर ५ हुए।

इसी प्रकार $\frac{७ \times १५}{५}$ = २१ सारस। $\frac{९ \times ४९}{७}$ = ६३ हंस तथा $\frac{३ \times ३३}{९}$ = ११ मयूर सब जीवों का योग = ५ कबूतर + २१ सारस + ६३ हंस + ११ मयूर = १०० जीव हुए।

इस तरह इष्ट के अनुसार अनेक मान आ सकते हैं।

अनेक वर्ण मध्यमाहरण की परिभाषा यह है कि इसमें अव्यक्त वर्णों के वर्ग घन आदि से गुणित राशियों का समीकरण होता है।

आधुनिक वीजगणित में ऐसे उदाहरणों के नियत मान होते हैं। हमारे आचार्यों ने इसमें दो प्रकार के अव्यक्तों का मान लाया है। एक तो अपरिवर्तनशील (नियत राशि विषयक) और दूसरा अनिर्णीत (राशि विषयक)। इसमें अनिर्णीत राशिविषयक समीकरण को वर्ग प्रकृति के द्वारा समाहित किया जाता है। इसके लिए आचार्य ने समीकरण के लिए कुछ निर्देश किया है, जिन्हें सूत्र ही मानना चाहिए।

सूत्र :—

वर्गाद्यं चेत् तुल्यशुद्धौ कृतायां पक्षस्यैकस्योक्तवद्वर्गमूलम्।
वर्ग प्रकृत्याऽपरपक्षमूलं तयोः समीकारविधिः पुनश्च ॥ १ ॥

वर्गप्रकृत्या विषयो न चेत् स्यात् तदाऽन्यवर्णस्य कृतेः समंतम्।
कृत्वा परं पक्षमथान्यमानं कृतिप्रकृत्याऽऽद्यमितिस्तथा च ॥ २ ॥
वर्ग प्रकृत्या विषयो यथा स्यात् तथा सुधीभिर्बहुधा विचिन्त्यम्।

बीजं मतिर्विविध वर्ण सहायनीहि
मन्दाववोध विधये विवुधैर्निजाऽऽद्यैः।
विस्तारिता गणकतामरसांशुमद्भि-
र्या सैव बीजगणिताहवयतामुपेता ॥ ३ ॥

अर्थात् दोनों पक्षों के समशोधन करने से जहाँ अव्यक्त वर्ग आदि शेष रहे वहाँ प्रथम पक्ष का मूल पूर्वोक्त **'पक्षौ तिदेष्टेन निहत्यकिञ्चित्'** इत्यादि प्रकार से और अन्य पक्ष का मूल वर्ग प्रकृति से लेना चाहिए।

इस तरह वर्ग प्रकृति लक्षण युक्त होने पर ही अन्य पक्ष का मूल आ सकता है। अन्यथा अन्यवर्ग के साथ उसका समीकरण करके वर्ग प्रकृति लक्षणात्मक बना कर उसका मूल ग्रहण करना चाहिए। यहाँ पर कनिष्ठ प्रकृति वर्ण का मान और ज्येष्ठ उस पक्ष का मूल होगा। इसके वाद्ध दोनों पक्षों के मूलों का समीकरण करके अव्यक्त वर्ण का मान सिद्ध करना चाहिए। यदि पूर्वोक्त युक्ति से भी अन्य पक्ष में वर्ग प्रकृति लक्षण न आवे तो जिस तरह वर्ग प्रकृति का विषय हो सके अपनी बुद्धि से करना चाहिए।

उपपत्ति—आलापानुसारेण कल्प्येते समौपक्षौ—

$य^2 \pm २ य. गु + गु^2 = क^2 - इ \pm रू.$

$\therefore य \pm गु = \sqrt{क^2 - इ \pm रू.}$

वर्ग प्रकृति लक्षण समन्वित परपक्ष मूलं तथैव कर्तुं युक्तमतो 'वर्ग प्रकृत्या पर पक्षमूलमिति' युक्तम्। वर्ग प्रकृति लक्षणालक्षित परपक्षश्चेत्तदाऽन्य वर्ण वर्ग समं विधाय वर्ग प्रकृति लक्षणात्मकः परपक्षः कार्यस्त-तस्तथैव मूला नयनं कृत्वा मूलयोः साम्याद्व्यक्तं मानं समीकरण युक्त्या ज्ञेयमित्युपपन्नम्।

इस अनेक वर्ण मध्यमाहरण में विभिन्न सूत्रों को कुल १८ श्लोकों में आचार्य ने दिया है। यहाँ पर प्रत्येक सूत्र के साथ उनका एक एक उदाहरण दिया जा रहा है।

१—सूत्र :— **एकस्य पक्षस्य पदे गृहीते द्वितीय पक्षे यदि रूपयुक्तः।**
अव्यक्तवर्गोऽत्र कृति प्रकृत्या साध्ये तथा ज्येष्ठ कनिष्ठ मूले॥ ४॥
ज्येष्ठं तयोः प्रथमपक्षपदेन तुल्यं
कृत्वोक्तवत् प्रथमवर्णमितिस्तु साध्या।
ह्रस्वं भवेत् प्रकृति वर्णमितिः सुधीभि-
रेवं कृति प्रकृतिरत्र नियोजनीया॥ ५॥

अर्थात् पूर्वकथित सूत्र के अनुसार एकपक्ष का मूल ग्रहण करने से यदि द्वितीय पक्ष में रूप सहित अव्यक्त का वर्ग हो तो प्रकृति से मूल लेना चाहिए।

जैसे अव्यक्त वर्ग के अङ्क को प्रकृति और रूप को क्षेप कल्पनाकर **'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या'** इत्यादि प्रकार से ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ ला करके ज्येष्ठ को प्रथम पक्ष के मूल के साथ समीकरण कर प्रथम वर्ण का मान लांना चाहिए। यहाँ जिस पक्ष का पद पहले ग्रहण किया गया है, वह प्रथम पक्ष हैं और वहाँ का वर्ण प्रथम वर्ण है। कनिष्ठ प्रकृति वर्ण का मान है।

उदाहरण :—

कोराशिर्द्विगुणो राशिवर्गैः षड्भिः समन्वितः।
मूलदो जायते बीजगणितज्ञ वदाशु तम्॥ १॥

अर्थात् वह कौन राशि है जिसको द्विगुणित कर उसी में षड्गुणित राशि वर्ग जोड़ देते हैं तो वर्गात्मक होती है।

कल्पना किया राशि = या, अतः आलाप के अनुसार क्रिया करने पर ६ या^{2} + २ या, यह वर्गात्मक है अतः कालक वर्ग के साथ समीकरण किया ६ या^{2} + २ या = का^{2}

∴ ६ (६ या^{2} + २ या) + १ = ६ का^{2} + १ ∴ ३६ या^{2} + १२ या + १ = ६ का^{2} + १

∴ ६ या + १ = $\sqrt{\text{६ का}^2 + \text{१}}$ अब यहां पर द्वितीय पक्ष का मूल वर्गप्रकृति से लाना है, इसमें अव्यक्त वर्ग सरूप है तो कालक वर्ग के गुणक ६ को प्रकृति रूप एक को क्षेप कल्पना किया।

अब इष्ट २ को कनिष्ट कल्पना कर उसके वर्ग ४ को प्रकृति से गुणाकर क्षेप १ जोड़ देने से २५ हुआ। इसका मूल लिया तो ५ ज्येष्ठ पद हुआ।

अथवा कनिष्ठ २० के वर्ग ४०० को प्रकृति ६ से गुणा कर २४०१ इतना हुआ। इसका मूल ग्रहण किया तो ज्येष्ठ पद ४९ हुआ।

यहाँ कनिष्ठ कालक का मान ज्येष्ठ पद (५ या ४९) प्रथम पक्ष के मूल के समान है। सम्पूर्ण द्वितीय पक्ष का मूल ज्येष्ठ पद है। दोनों पक्षों के वर्ग समान हैं। अतः मूल भी समान होगा।

इसलिए ६ या + १ = ५, $\therefore$ ६ या = ४, या = $\frac{४}{६}$ = $\frac{२}{३}$

अथवा ६ या + १ = ४९, $\therefore$ ६ या=४८, $\therefore$ या = $\frac{४८}{६}$ = ८

यदि राशि = ८ तो आलाप = २ × ८ + ६ (८)^{२} = १६ + ३८४ = ४०० = (२०)^{२}

यह वर्गात्मक राशि हुई ।

२—द्वितीय सूत्र :—

द्वितीयपक्षे सति सम्भवे तु कृत्याऽपवर्त्यात्र पदे प्रसाध्ये ।
ज्येष्ठं कनिष्ठेन तदा निहन्याच्चेद्वर्गवर्गेण कृतोऽपवर्त्तः ।। ६ ।।
कनिष्ठवर्गेण तदा निहन्याज्ज्येष्ठं ततः पूर्ववदेव शेषम् ।। ६$\frac{१}{२}$ ।।

अर्थात्—यदि द्वितीय पक्ष में अव्यक्त वर्ग के साथ अव्यक्त वर्ग वर्ग हो या अव्यक्त वर्ग वर्ग के साथ अव्यक्त वर्ग वर्ग वर्ग हो तो अपवर्तन देकर ज्येष्ठ और कनिष्ठ साधन करना चाहिए । यानी अव्यक्त वर्ग के साथ अव्यक्त वर्ग वर्ग हो तो अव्यक्त वर्ग का और अव्यक्त वर्ग वर्ग के साथ अव्यक्त वर्ग वर्ग वर्ग हो तो अव्यक्त वर्ग वर्ग का अपवर्तन देने से रूप सहित अव्यक्तवर्ग शेष रहेगा ।

इस तरह दोनों स्थानों में वर्ग प्रकृति का लक्षण आ जायेगा । तब वर्ग प्रकृति में कथित प्रकार से ज्येष्ठ और कनिष्ठ का साधन करना चाहिए । किन्तु अव्यक्त वर्ग का अपवर्तन लगा हो तो आनीत ज्येष्ठ पद को कनिष्ठ में गुण देने से और अव्यक्त वर्ग वर्ग का अपवर्तन लगा हो तो आनीत ज्येष्ठ पद को कनिष्ठ वर्ग से गुण देने से वास्तव ज्येष्ठ पद होता है । शेष क्रिया पूर्ववत करनी चाहिए ।

उदाहरण :—

यस्यवर्गकृतिः पञ्चगुणा वर्ग शतोनिता ।
मूलदा जायते राशि गणितज्ञ वदाशु तम् ।। १ ।।

अर्थात् वह कौन राशि है जिसके पञ्चगुणित वर्ग वर्ग में सौ गुणित राशि वर्ग घटा देने से वर्ग होता है ।

कल्पना किया राशि = या

इसके पञ्चगुणित वर्ग वर्ग (५ या^{४}) में शतगुणित राशि वर्ग (१०० या^{२}) घटा देने से (५ या^{४} − १०० या^{२}) वर्ग होता है । अतः इसको कालक वर्ग के साथ समीकरण किया तो :—

(५ या^{४} − १०० या^{२}) = का^{२}

$\therefore$ का = $\sqrt{५\text{ या}^{४} - १००\text{ या}^{२}}$ = $\sqrt{\text{या}^{२}\,(५\text{ या}^{२} - १००)}$ = या $\sqrt{५\text{ या}^{२} - १००}$

अब यावत्तावद्वर्गाङ्क (५) को प्रकृति और १०० को क्षेप मान कर वर्गप्रकृति से ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ का साधन करते हैं ।

जैसे इष्ट कनिष्ठ (१०) कल्पना किया । इस का वर्ग = (१००) को प्रकृति (५) से गुणाकर (५००) क्षेप ऋण करने से (५००−१०० = ४००) हुआ । इसका मूल लिया तो (२०) यह ज्येष्ठ पद हुआ । इसको कनिष्ठ से गुणा करने से (२००) दूसरे पक्ष के मूल के बराबर हुआ । अतः का=२०० । कनिष्ठ (१०) यावत्तावत् का मान है और यही राशि है ।

अथवा — कनिष्ठ १७० कल्पना करने से ज्येष्ठ पद ३८० आता है। इसको कनिष्ठ से गुणा किया तो (६४६००) इतना हुआ। यह प्रथम पक्ष के मूल (का) के बराबर हुआ।

कनिष्ठ (१७०) यावत्तावत् का मान हुआ और यही राशि है।

आलाप → राशि = १०। $\therefore$ ५ (१०)^४ — १०० (१०)^२ = ५ × १०००० — १००००

= ५०००० — १०००० = ४०००० यह वर्गात्मक है।

३. तीसरा सूत्र :—

साव्यक्तरूपो यदि वर्णवर्गस्तदाऽन्यवर्णस्य कृतेः समं तत् ॥ ७ ॥
कृत्वा पदं तस्य तदन्यपक्षे वर्गप्रकृत्योक्तवदेव मूले।
कनिष्ठमाद्येन पदेन तुल्यं ज्येष्ठं द्वितीयेन समं विदध्यात् ॥ ८ ॥

अर्थात्—एक पक्ष का मूल ग्रहण करने पर यदि द्वितीय पक्ष में अव्यक्त और रूपयुत अव्यक्त वर्ण हो तो किस तरह मूल ग्रहण करना चाहिए उसको कह रहे हैं।

यदि अव्यक्त और रूप से सहित अव्यक्त वर्ग हो तो उसको अन्य वर्ग के वर्ग के तुल्य करके प्रथम पक्ष का मूल लेना, तथा द्वितीय पक्ष का वर्ग प्रकृति से कनिष्ठ, ज्येष्ठ लाकर प्रथम पक्ष के मूल को कनिष्ठ के साथ और द्वितीय पक्ष के मूल को ज्येष्ठ के साथ समीकरण करना चाहिए।

उपपत्ति :— आलापानुसारेण पक्षौ —

य^२ = क^२, गु $\pm$ क. गु$'$ + इ, अत्र प्रथम पक्षस्य मूलं लभ्यते न द्वितीयस्य, किन्तु सोऽपि वर्गात्मक एव पूर्व पक्ष समानत्वादतो द्वितीय पक्षः केनापि वर्गेण समीकरणे—

क^२. गु $\pm$ क. गु$'$ + इ = अ^२,। $\therefore$ क^२. गु $\pm$ क. गु$'$ = अ^२ — इ.

$\therefore$ गु (क^२. गु $\pm$ क. गु$'$) = गु (अ^२ — इ),

वा क^२. गु^{२} $\pm$ क. गु$'$. गु = अ^२. गु — गु. इ,

$\therefore$ क^२. गु^{२} $\pm$ क. गु$'$. गु + $\left(\frac{गु'}{२}\right)^२$ = अ^२. गु — गु. इ + $\left(\frac{गु'}{२}\right)^२$

वा क^२. गु^{२} $\pm$ क. गु$'$. गु + $\left(\frac{गु'}{२}\right)^२$ = अ^२. गु + $\left(\frac{गु'}{२}\right)^२$ — गु. इ

अत्र प्रथम पक्षस्य मूलं लभ्यते, द्वितीय पक्षस्य वर्ग प्रकृत्या साध्यम्।

यत्र प्रकृतिः = गु, क्षेपः = $\left(\frac{गु'}{२}\right)^२$ — गु. इ,

अत्र कनिष्ठ मानं 'अ' समानमतस्तत्पूर्वपक्ष तुल्यं स्यात्।

ज्येष्ठं तु एतत्समीकरणीय प्रथम पक्षेण (द्वितीय पक्षेण) समानमित्युपपन्नम् ॥

उदाहरण—

त्रिकाद्युतरश्रेढ्यां गच्छे क्वापि च यत फलम्।
तदेव त्रिगुणं कस्मिन्नन्यगच्छे भवेद्वद ॥ १ ॥

अर्थात् किसी श्रेढी में ३ आदि, २ चय हैं वहाँ किसी अनिश्चित गच्छ में जो फल आता है, उसको त्रिगुणित तुल्यफल पूर्व तुल्य आदि और चय होने पर कितने गच्छ में होगा।

यहां आदि = ३, चय = २, गच्छ = या कल्पना किया।

अब **'व्येक पदघ्न चयो मुख युक् स्यात्'** इत्यादि पाटीगणितोक्त प्रकार से सर्वधन साधन करते हैं।

$$\text{प्रथम सर्वधन} = \text{ग} \left\{ \frac{(\text{ग} - १)\text{च} + \text{आ} + \text{आ}}{२} \right\} = \text{या} \left\{ \frac{(\text{या} - १)२ + ६}{२} \right\}$$

$$= \frac{\text{या}(२\,\text{या} - २ + ६)}{२} = \frac{२\,\text{या}^{२} + ४\,\text{या}}{२} = \text{या}^{२} + २\text{या}$$

एवं द्वितीय सर्वधन = $\text{का}^{२} + २\,\text{का}$, यहाँ द्वितीय सर्वधन, त्रिगुणित प्रथम सर्वधन के बराबर है, अतः समीकरण—

$३\text{या}^{२} + ६\,\text{या} = \text{का}^{२} + २\,\text{का}$

$\therefore ३(३\,\text{या}^{२} + ६\,\text{या}) + ९ = ३(\text{का}^{२} + २\,\text{का}) + ९$

वा $९\,\text{या}^{२} + १८\text{या} + ९ = ३\,\text{का}^{२} + ६\,\text{का} + ९$

$\therefore ३\,\text{या} + ३ = \sqrt{३\,\text{का}^{२} + ६\,\text{का} + ९}$। यहाँ द्वितीय पक्ष में अव्यक्त और रूप से सहित अव्यक्त वर्ग है, इसलिए इसको नीलक वर्ग के साथ समीकरण के लिए न्यास :—

$३\,\text{का}^{२} + ६\,\text{का} + ९ = \text{नी}^{२}$, $\therefore \text{का}^{२} + ६\,\text{का} = \text{नी}^{२} - ९$,

$\therefore ३(३\,\text{का}^{२} + ६\,\text{का}) + ९ = ३(\text{नी}^{२} - ९) + ९$

वा $९\,\text{का}^{२} + १८\,\text{का} + ९ = ३\,\text{नी}^{२} - २७ + ९ = ३\,\text{नी}^{२} - १८$।

$\therefore ३\,\text{का} + ३ = \sqrt{३\,\text{नी}^{२} - १८}$

यहाँ वर्ग प्रकृति के लक्षण से युत होने के कारण उससे द्वितीय पक्ष का मूल लाते हैं। जैसे इष्ट कनिष्ठ (९) कल्पना कर इसका वर्ग (८१) प्रकृति (३) से गुणा किया तो २४३ हुआ। इसमें क्षेप १८ घटा देने से शेष (२२५) रहा, इसका मूल (१५) ज्येष्ठ पद हुआ।

यहाँ कनिष्ठ प्रथम पक्ष के मूल के तुल्य है। अतः इसके साथ समीकरण के लिए $६\,\text{या} + ३ = ९$

$\therefore ३\,\text{या} = ६$, $\therefore \text{या} = \frac{६}{३} = २$ यह प्रथम गच्छ का मान है। इसी तरह ज्येष्ठ पद (१५) द्वितीय समीकरण के प्रथम पक्ष (३ का + ३) के समान है। $\therefore ३\,\text{का} + ३ = १५$। $\therefore ३\,\text{का} = १२$

$\therefore \text{का} = \frac{१२}{३} = ४$, यह द्वितीय गच्छ का मान आया।

अथवा—कनिष्ठ (३३) पर से ज्येष्ठ पद (५७) आया। कनिष्ठ का प्रथम पद के साथ समीकरण:—

$\therefore ३\,\text{या} + ३ = ३३$, $\therefore ३\,\text{या} = ३०$, $\text{या} = \frac{३०}{३} = १०$ यह प्रथम गच्छ आया। ज्येष्ठ का द्वितीय पक्ष के साथ समीकरण—

$३\,\text{का} + ३ = ५७$, $\therefore ३\,\text{का} = ५४$, $\therefore \text{का} = \frac{५४}{३} = १८$ यह द्वितीय गच्छ आया।

४. चौथा सूत्र—

सरूपके वर्णकृती तु यत्र तत्रेच्छयैकां प्रकृतिं प्रकल्प्य।
शेषं ततः क्षेपकमुक्तवच्च मूले विदध्यादसकृत् समत्वे ॥ ९ ॥
सभाविते वर्णकृती तु यत्र तन्मूलमादाय च शेषकस्य।
इष्टोद्धृतस्येष्ट विवर्जितस्य दलेन तुल्यं हि तदेव कार्यम् ॥ १० ॥

अर्थात्—प्रथम पक्ष का मूल मिलता हो किन्तु द्वितीय पक्ष में रूप के साथ दो वर्ण वर्ग हों वहाँ अपनी इच्छा से किसी एक वर्ण को प्रकृति और शेष को क्षेप कल्पना करके उक्त प्रकार से कनिष्ठ और ज्येष्ठ का साधन करना चाहिए। इस तरह अव्यक्त कनिष्ठ ज्येष्ठ आने से राशि मान भी अव्यक्त ही होगा।

अगर आलाप के अनुसार फिर समीकरण करना हो तो राशि का अव्यक्त मान ठीक है। यदि समीकरण न हो तो २, ३, ४ आदि वर्णों के समान अन्य वर्ण का भी व्यक्त मान कल्पना कर लेना चाहिए। इस तरह करने पर अव्यक्त वर्ग सरूप आवेगा तब उक्त प्रकार से राशि का व्यक्त मान सिद्ध करना चाहिए।

उदाहरण :—

तौ राशी वद यत्कृत्योः सप्तष्टगुणयोर्युतिः।
मूलदास्याद्वियोगस्तु मूलदो रूपसंयुतः ॥ १ ॥

अर्थात् वे कौन सी दो राशियाँ हैं जिनके वर्ग को क्रमशः सात, आठ से गुणा कर योग करने से और अन्तर में एक जोड़ने से मूलद होती हैं।

यहाँ राशि (या, का) कल्पना किया।

दोनों के वर्गों को क्रम से ७, ८ से गुणा कर योग करके नीलक वर्ग के तुल्य किया तो :—

७ या^{२} + ८ का^{२} = नी^{२} ऐसा हुआ।

यहाँ द्वितीय पक्ष का मूल (नी) आया। प्रथम पक्ष का मूल वर्ग प्रकृति से लेना है, अतः यावत्तावद्वर्गाङ्क ७ को प्रकृति और कालक वर्गाङ्क ८ को क्षेप कल्पना किया।

क्षेप वर्णात्मक है, अतः इष्ट कनिष्ट वर्णात्मक (२ का) के समान कल्पना किया। इसका वर्ग (४ का^{२}) को प्रकृति (७) से गुण कर (२८ का^{२}) क्षेप (८का^{२}) जोड़ने से (३६ का^{२}) यह हुआ। इसका मूल लेने से ज्येष्ठ पद (६ का) समान हुआ। कनिष्ठ (२ का) प्रकृति वर्ण (या) के और ज्येष्ठ पद द्वितीय पक्ष के मूल के बराबर है।

अतः नी = ६ का, अब पूर्व कल्पित राशि में उत्थापन देने से :—

प्रथम राशि = या = २ का, द्वितीय राशि = का, यथा स्थित रही।

अब आलापानुसार इन दोनों राशियों के वर्ग को क्रम से ७, ८ से गुण कर तथा अन्तर कर के रूप युक्त करने से वर्ग होता है, अतः इसको भी नीलक वर्ग के बराबर किया तो—

७ (२ का)^{२} – ८ (का)^{२} + १ = २८ का^{२} – ८का^{२} + १ = २० का^{२} + १ = नी^{२}

यहाँ पर भी द्वितीय पक्ष का मूल (नी) मिला।

प्रथम पक्ष का मूल वर्ग प्रकृति से लेना है, अतः कालक वर्गाङ्क (२०) को प्रकृति और रूप को क्षेप मानकर मूल लाते हैं।

इष्ट कनिष्ट (२) कल्पना किया । इसका वर्ग (४) को प्रकृति (२०) से गुणाकर (८०) रूप जोड़ने से (८१) हुआ । इसका मूल (९) ज्येष्ठ पद हुआ । यहाँ कनिष्ठ प्रकृति वर्ण कालक का मान हुआ और ज्येष्ठ द्वितीय पक्षीय पद (नी) के बराबर हुआ ।

अब कालक के मान से पूर्व राशि में उत्थापन देने से—

प्रथम राशि = २ का = २ × २ = ४ । द्वितीय राशि = का = २,

अथवा कनिष्ठ (३६) कल्पना करने से ज्येष्ठ पद (१६१) आता है । अतः उत्थापन देने से—

प्रथम राशि = २ का = ७२, और द्वितीय राशि = का = ३६,

आलाप – प्रथम राशि = ४, द्वितीय राशि = २

$७ (४)^२ + ८ (२)^२ = ७ \times १६ + ८ \times ४ = ११२ + ३२ = १४४$ यह वर्गात्मक है ।

$७ (४)^२ - ८ (२)^२ + १ = ११२ - ३२ + १ = ८० + १ = ८१$ यह भी वर्गात्मक है ।

५. पञ्चम सूत्र—

सरूपमव्यक्तमरूपकं वा वियोग मूलं प्रथमं प्रकल्प्य ।
योगान्तरक्षेपकभाजिताद्यद्वर्गातरक्षेपकतः पदं स्यात् ।। ११ ।।
तेनाधिकं तत्तु वियोगमूलं स्याद्योगमूलं तु तयोस्तुवर्गौ ।
स्वक्षेपकोनौ हि वियोगयोगौ स्यातां ततः संक्रमणेन राशी ।। १२ ।।

अर्थात् पहले रूप युक्त या रहित अव्यक्त को वियोग मूल कल्पना करनी चाहिए, तथा योगान्तर क्षेप से वर्गान्तर क्षेप में भाग देकर जो मूल आवे उसको वियोग मूल में जोड़ देने से योग मूल होगा ।

अब उन योग वियोग मूलों के वर्ग में क्षेप घटा देने से शेष क्रम से योग वियोग होंगे । इस तरह योग वियोग के ज्ञान से संक्रमण गणित के द्वारा राशि जाननी चाहिए ।

उपपत्ति—यहाँ कल्पना किया योगान्तर क्षेप मान = यो क्षे ।

वर्गान्तर क्षेप मान = वअं क्षे । वर्ग योग क्षेप मान = व यो क्षे ।

वियोग मूल = य और योग मूल = क

आलाप के अनुसार – वियोगः = $य^२$ – यो क्षे । योग = $क^२$ – यो क्षे अनन्तर संक्रमण गणित से

अल्पराशि $= \frac{क^२ - य^२}{२}$, वृहद् राशि $= \frac{य^२ + क^२ - २ \text{ यो क्षे}}{२}$ लघुराशि वर्ग $= \frac{य^४ - २\, य^२.\, क^२ + क^४}{४}$

वृहद् राशि का वर्ग $= \frac{य^४ + २\, य^२.क^२ - ४ \text{ योक्षे}.\, य^२ + क^२ - ४ \text{ योक्षे}.\, क^२ + ४ \text{ यो क्षे}^२}{४}$

वर्गान्तर $= \frac{४य^२.\, क^२ - ४ \text{ योक्षे}.\, य^२ - ४ \text{ योक्षे}.\, क^२ + ४ \text{ योक्षे}^२}{४}$

$= य^२.\, क^२ - \text{योक्षे}.\, य^२ - \text{योक्षे}.\, क^२ + \text{योक्षे}^२$

$= य^२.\, क^२ - २\, य.\, क.\, \text{योक्षे} + \text{योक्षे}^२ - \text{योक्षे}.\, य^२ + २\, य.\, क.\, \text{योक्षे} - \text{योक्षे}.\, क^२$

$= ($ य. क $-$ योक्षे $)^2 -$ योक्षे $($ य$^2 - 2$ य. क $+$ क$^2)$

यदि यहाँ पर क्षेप का मान = $\{$ योक्षे (य$^2 - 2$ य. क $+$ क^2) $\}$

तदा निरवयव मूल (य. क $-$ योक्षे) अवश्य आयेगा

$\therefore$ वर्गान्तर क्षेप मान = व अंक्षे = यो क्षे (य$^2 - 2$ य. क $+$ क^2)

$\therefore \frac{\text{व अंक्षे}}{\text{योक्षे}}$ = य $- 2$ य. क. $+$ क^2

$\therefore \sqrt{\frac{\text{व अंक्षे}}{\text{योक्षे}}}$ = य $-$ क उपपन्न हुआ।

उदाहरण :—

राश्योर्योग वियोगकौ त्रिसहितौ वर्गौ भवेतां ययो-
वर्गैक्यं चतुरूनितं रवियुतं वर्गान्तरं स्यात् कृतिः।
साल्पं घातदलं घनः पदयुतिस्तेषां द्वियुक्ता कृति-
स्तौ राशीवद कोमलामलमते षट्सप्त हित्वा परौ ॥ ६ ॥

अर्थात् वे दो कौन राशि हैं जिनके योग और अन्तर में तीन जोड़ देने से वर्ग होता है। वर्गों के योग में चार घटा देने से वर्ग होता है। वर्गों के अन्तर में बारह जोड़ देने से वर्ग होता है। घात के आधे में लघुराशि जोड़ देने से घन हो जाता है। इस तरह आये हुए पाँचों मूलों के योग में दो जोड़ने से वर्ग होता है।

यहाँ पहले रूप रहित अव्यक्त (या-1) को वियोग मूल मानकर दोनों में राशियों को लाते हैं। जैसे वर्गान्तर क्षेप (१२) में योगान्तर क्षेप (३) का भाग देने से लब्धि (४) आई, इसके मूल (२) को वियोग मूल (या-1) में जोड़ देने से योग मूल (या$+1$) आया।

अब वियोग मूल और योग मूल के वर्ग में योगान्तर क्षेप (३) को घटाने से—

वियोग = $($ या $- 1)^2 - 3 =$ या$^2 - 2$या $+ 1 - 3 =$ या$^2 - 2$ या $- 2$।

योग = $($ या $+ 1)^2 - 3 =$ या$^2 + 2$या $+ 1 - 3 =$ या$^2 + 2$ या $- 2$।

इस पर से संक्रमण गणित के द्वारा—

लघुराशि = २ या और वृहद राशि = या$^2 - 2$

अब प्रश्न के अनुसार राशियों के योग में तीन जोड़ने से :—

2 या $+$ या$^2 - 2 + 3 =$ या$^2 + 2$या $+ 1 = ($ या $+ 1)^2$ यह वर्गात्मक सिद्ध हुआ।

राशियों के अन्तर में ३ जोड़ने से :—

$(या^{२}-२) - २ या + ३ = या^{२}-२ या + १ = (या - १)^{२}$ यह भी वर्गात्मक सिद्ध हुआ।

वर्गैक्य में चार घटाने से :—

$(या^{२} - २)^{२} + (२ या)^{२} - ४ = या^{४} - ४ या^{२} + ४ + ४या^{२} - ४ = या^{४} = (या २)^{२}$

वर्गात्मक है। वर्गान्तर में (१२) जोड़ने से :—

$(या^{२} - २)^{२} - (२ या)^{२} + १२ = या^{४} - ४ या^{२} + ४-४ या^{२} + १२$

$= या^{४} - ८ या^{२} + १६ = (या^{२} - ४)^{२}$ यह भी वर्गात्मक सिद्ध हुआ।

घात के आधे में अल्पराशि जोड़ने से :—

$$\frac{(या^{२} - २) - (२ या)}{२} + २या = \frac{२या^{३} - ४या}{२} + २या = \frac{२ या^{३} - ४ या + ४ या}{२}$$

$= \frac{२ या^{३}}{२} = या^{३}$ यह घनात्मकसिद्ध हुआ। इस तरह आये हुए पाँचो पदों का योग :—

$(या + १) + (या - १) + (या^{२} + ० + ०) + (या^{२} + ० - ४) + (या + ०) = २या^{२} + ३या - ४$ ।—

इसमें २ जोड़ने से $(२ या^{२} + ३ या - २)$ वर्ग होता है। इसका कालक वर्ग के साथ समीकरण:

$२ या^{२} + ३ या - २ = का^{२}$ । $\therefore २ या^{२} + ३या = का^{२} + ३$

$\therefore ८ (२ या^{२} + ३या)) + ९ = ८ (का^{२} + २) + ९$

वा $१६ या^{२} + २४या + ९ = ८ का^{२} + १६ + ९$

वा $१६ या^{२} + २४ या + ९ = ८ का^{२} + २५$

$\therefore ४ या + ३ = \sqrt{८ का^{२} + २५}$ यहाँ द्वितीय पक्ष का मूल वर्ग प्रकृति से लेना है।

इसलिए इष्ट कनिष्ठ (५) कल्पना किया। इसका वर्ग (२५) को प्रकृति (८) से गुणाकर (२००) क्षेप (२५) जोड़ने से (२२५) हुआ। इसका मूल (१५)ज्येष्ठ पद हुआ। यह पूर्व पद के तुल्य है अतः उसके साथ समीकरण—

$४ या + ३ = १५$ । $\therefore ४ या = १२$ । $\therefore या = \frac{१२}{४} = ३$

इसका उत्थापन देने से :—

प्रथम राशि $= या^{२} - २ = ९ - २ = ७$ और द्वितीय राशि $= २ या = २ \times ३ = ६$

इस प्रकार इष्ट कनिष्ठ कल्पना द्वारा विभिन्न संख्यायें प्राप्त हो सकती हैं।

६. छठवाँ सूत्र :—

यत्राव्यक्तं सरूपं हि तत्र तन्मानमानयेत्।
सरूपस्यान्यवर्णस्य कृत्वा कृत्यादिनासमम् ॥ १३ ॥

राशितेन समुत्थाप्य कुर्याद् भूयोऽपरां क्रियाम् ।
सरूपेणान्यवर्णेन कृत्वा पूर्वपदं समम् ॥ १४ ॥

अर्थात् जहाँ पर एक पक्ष का मूल लेने के बाद दूसरे पक्ष में रूप सहित या रूप रहित अव्यक्त हो वहाँ पर उसका रूप सहित अन्य वर्ण के साथ समीकरण करके अव्यक्त राशी का मान लाना चाहिए।

जहाँ पर एक पक्ष का घन मूल लेने के बाद अन्य पक्ष में रूप से सहित या रहित अव्यक्त हो, उसका रूप सहित अन्य वर्ण के घन के साथ समीकरण करके अव्यक्त राशि का मान लाना चाहिए।

इस तरह लाया हुआ वर्णात्मक अव्यक्त मान से उत्थापन देना, तथा आद्य पक्षीय मूल का कल्पित रूप सहित अन्य वर्ण के साथ समीकरण करके अन्य क्रिया करनी चाहिए। यदि अन्य क्रिया करने का अवसर न हो तो रूप सहित अन्य वर्ण वर्गादि के साथ समीकरण नहीं करना, क्योंकि वैसा करने से राशि का मान अव्यक्तात्मक आयेगा। किन्तु व्यक्त राशि के वर्गादि के साथ सभी करना चाहिए। क्योंकि इस तरह करने से राशि का मान व्यक्त ही होगा। यहाँ जिस तरह राशि मान अभिन्न मिले उसी प्रकार अव्यक्त की वर्ग, घन आदि कल्पना करना चाहिए।

उपपत्ति: — कल्पना किया दो पक्ष :— $य^2 = इ.\ क \pm रू.$

यहाँ प्रथम पक्ष का वर्गात्मक मान होने से द्वितीय पक्ष भी वर्गात्मक ही होगा, किन्तु यह अव्यक्त है और इसका मूल वर्ग प्रकृति की रीति से आना कठिन है।

अत: दूसरे पक्ष के मूल का मान कल्पना किया = $इ^1 \circ न \pm स^1$

अत: $य = इ^1 \circ न \pm रू$ इस प्रकार यह उपपन्न हुआ।

उदाहरण :—

यस्त्रिपञ्चगुणो राशिः पृथक् सैकः कृतिर्भवेत् ।
वदेति बीजमध्येऽसि मध्यमाहरणे पटुः ॥ १ ॥

अर्थात् वह कौन राशि है, जिसको दो जगह रख कर क्रमश: ५ और ३ से गुणा कर दोनों में रूप जोड़ देते हैं तो योग राशि वर्गात्मक होती है।

कल्पना किया राशि = या। इसको ३ से गुणा कर रूप युत करने से वर्ग होता है।

अत: इसका कालक वर्ग के साथ समीकरण किया :— $३\ या + १ = का^2$

यहाँ द्वितीय पक्ष का मूल (का) मिला। प्रथम पक्ष का मूल नहीं मिलता। इसलिए इसका कल्पित राशि ($३\ नी + १$) का वर्ग ($९\ नी^2 + ६\ नी. + १$) के साथ समीफरण :—

$३\ या + १ = ९\ नी^2 + ६\ नी + १$

$\therefore ३\ या = ९\ नी^2 + ६\ नी$

$\therefore या = ३\ नी^2 + २\ नी$

इससे उत्थापन देने से पूर्व कल्पित राशि = $या = ३\ नी^2 + २\ नी$।

फिर इसको ५ से गुणाकर रूप जोड़ने से वर्ग होता है। इसलिए पीतक वर्ग के साथ इसका समीकरण :—

५ (३ नी^{2} + २ नी) + १ = पी^{2}। ∴ १५ नी^{2} + १० नी + १ = पी^{2}

∴ १५ नी^{2} + १० नी = पी^{2} − १

∴ १५ (१५ नी^{2} + १० नी) + २५ = १५ (पी^{2} − १) + २५

वा २२५ नी^{2} + १५० नी + २५ = १५ पी^{2} − १५ + २५

वा २२५ नी^{2} + १५० नी + २५ = १५ पी^{2} + १०

∴ १५ नी + ५ = $\sqrt{१५ \text{ पी}^2 + १०}$

अन्यपक्ष का मूल वर्ग प्रकृति से लेना है। यहाँ इष्ट कनिष्ट (९) कल्पना किया। इसका वर्ग (८१) को प्रकृति (१५) से गुण कर (१२१५) क्षेप (१०) जोड़ने से (१२२५) हुआ, इसका मूल (३५) ज्येष्ठ-पद हुआ। अथवा इष्ट कनिष्ठ (७१) मानकर ज्येष्ठ पद (२७५) आया।

कनिष्ठ पीतक का मान और ज्येष्ठ आद्यपक्षीय मूल के समान है।

अतः समीकरण :— १५ नी + ५ = ३५। ∴ १५ नी = ३५ − ५ = ३०

∴ नी = $\frac{३०}{१५}$ = २ अथवा १५ नी + ५ = २७५

∴ १५ नी = २७५ − ५ = २७०। ∴ नी = $\frac{२७०}{१५}$ = १८

अब नीलक के मान से उत्थापन देने से :—

राशि = ३ नी^{2} + २ नी = ३ × ४ + २ + २ = १६

अथवा राशि = ३ नी^{2} + २ नी = ३ × ३२४ + २ × १८ = ९७२ + ३६ = १००८ यह सिद्ध हुआ।

७. सातवाँ सूत्र :—

वर्गादिर्योहरस्तेन गुणितं यदि जायते।
अव्यक्तं तत्र तन्मानमभिन्नं स्याद्यथा तथा॥ १५॥
कल्प्योऽन्यवर्णवर्गादिस्तुल्यः शेषं यथोक्तवत्॥ १५$\frac{1}{2}$॥

अर्थात् जहाँ एक पक्ष का मूल ग्रहण करने के बाद अन्य पक्ष में अव्यक्त वर्ग आदि के हर से गुणा हुआ अव्यक्त हो वहाँ सरूप या अरूप अन्य वर्ण वर्गादि की इस तरह कल्पना करनी चाहिए, जिसके साथ उसका समीकरण करने से उस अव्यक्त राशि का मान अभिन्नात्मक मिले।

उपपत्ति :—कल्पना किया दो पक्ष $\frac{\text{य}^2 - \text{रु}}{\text{ह}}$ = क, ∴ य^2 = क. ह + रु.

यहाँ यदि क. ह + रु = (न. ह + $\sqrt{\text{रु}}$)^2, तदा क. ह + रु = न^2. ह^2 + २न. ह$\sqrt{\text{रु}}$ + रु.

∴ क. ह = न^2. ह^2 + २ न. ह. $\sqrt{\text{रु}}$.

∴ क = $\frac{\text{न}^2. \text{ह}^2 + २ \text{ न. ह. } \sqrt{\text{रु}}}{\text{ह}}$। वा क = न^2. ह + २ न. $\sqrt{\text{रु}}$.

$\therefore$ य^{२} = क. ह + रू = (न. ह + $\sqrt{\text{रू.}}$)^{२}

$\therefore$ य = न. ह + $\sqrt{\text{रु.}}$ इस प्रकार कल्पना वश क का मान कैसे अभिन्न आवे इसके लिए 'हर-भक्ता यस्य कृतिः' इत्यादि अग्रिम सूत्र को आचार्य ने लिखा है।

उदाहरण :—

को वर्गश्चतुरूनः सन् सप्तभक्तो विशुध्यति।
त्रिशदूनोऽथवा कः स्याद्यदि वेत्सि वदद्रुतम्॥ १॥

अर्थात् वह कौन सा वर्ग है जिसमें चार या तीस घटाकर सात का भाग देने से निःशेत होता है।

यहाँ राशि (या^{२}) कल्पना किया। इसमें चार घटाकर सात का भाग देने से वह निःशेष होता है। अतः लब्धि (का) कल्पना किया तो—

$\frac{\text{या}^{२} - ४}{७}$ का, ऐसा हुआ। $\therefore$ या^{२} − ४ = ७ का $\therefore$ य^{२} = ७ का + ४

$\therefore$ या = $\sqrt{७ \text{ का} + ४}$

यहाँ द्वितीय पक्ष का मूल वर्ग प्रकृति से नहीं मिलता, इसलिए उसका (७ नी + २) का वर्ग (४९ नी^{२} + २८ नी + ४) के साथ समीकरण— ७ का + ४ = ४९ नी^{२} + २८ नी + ४

$\therefore$ ७ का = ४९ नी^{२} + २८ नी.

$\therefore$ का = $\frac{४९ \text{ नी}^{२} + २८ \text{ नी}}{७}$। वा = ७ नी^{२} + ४ नी., अभिन्न आया।

कल्पित मूल पूर्व मूल के समान है इसलिए या = ७ नी + २ यहाँ यदि नी = १ तदा या = ७ + २ = ९ अतः राशि = या = ९ × ९ = ८१

आलाप – वर्ग राशि = ८१। $\frac{८१ - ४}{७} = \frac{७७}{७}$ = ११ निःशेष होता है।

८. अष्टम सूत्र :—

हरभक्ता यस्य कृतिः शुद्ध्यति सोऽपि द्विरूपपदगुणितः।
तेनाहतोऽन्यवर्णो रूपपदेनान्वितः कल्प्यः॥ १६॥

न यदि पदं रूपाणां छिपेद्धरं तेषु हारतष्टेषु।
तावद्यावद्वर्गो भवति न चेदेवमपि खिलं तर्हि॥ १७॥

हित्वाक्षिप्त्वा च पदं यत्राद्यस्येह भवति तत्रापि।
आलापित एव हरो रूपाणि तु शोधनादि सिद्धानि॥ १८॥

इसके पूर्व सूत्र में (**वर्गादियोहरः इत्यादि**) अन्य वर्ण के वर्ग आदि कल्पना करने के लिए कहा है। वह किस तरह करना चाहिए। इसको इस सूत्र में बतला रहे हैं।

जिस राशि का वर्ग हर का भाग देने से निःशेष हो उसको दो और रूप के मूल से गुणा कर हर का भाग देने से निःशेष हो तो उससे अन्य वर्ण को गुण कर रूप का मूल जोड़ जो योग हो उसको अन्य पक्ष के मूल स्थान में कल्पना करें। यदि रूप का मूल न मिले तो हर से भक्त रूपों में हर को तब तक

जोड़ते जाय जब तक वर्गात्मक न हो जाय। इस तरह सिद्ध वर्ग का जो मूल मिले उसको रूपप्रद कल्पना करे।

यदि इस तरह से भी रूप का पद न मिलता हो तो उस उदाहरण को दुष्ट ही समझना चाहिए।

जहाँ पर दोनों पक्षों को गुणाकर और रूप जोड़ कर प्रथम पक्ष का मूल आता हो तो वहाँ उदाहरण में कथित हर लेना चाहिए। तथा रूप शोधन आदि (गुणन-योजन) के बाद रूप स्थान में जो रूप आवे उसी को ग्रहण करना चाहिए। इसी तरह धन में भी क्रिया करनी चाहिए। अर्थात् जिस राशि का घन हर से भाग देने से निःशेष हो उसको तीन और रूप के घन मूल से गुणाकर हर का भाग देना चाहिए। यदि भाग देने से निःशेष हो तो उससे अन्य वर्ण को गुणाकर रूप जोड़ने से जो हो उसको अन्य पक्ष के मूल स्थान में करे। यदि रूप का घनमूल न मिलता हो तो हर से तष्टित रूप से हर को तब तक जोड़ता जाय जब तक वह घनात्मक न हो जाय। अब साधित घन का जो मूल मिले उसको रूप पद कल्पना करें। यदि इस तरह से भी रूप के घन में मूल न मिले तो उस उदाहरण को दुष्ट उदाहरण समझना चाहिए। इस तरह चतुर्घात आदि में भी क्रिया करें।

उदाहरण :—

षड्भिरूना घनः कस्य पञ्चभक्तो विशुध्यति।
तं वदाशु तवालं चेदभ्यासो घन कुट्टके॥ २॥

अर्थात् वह कौन सी राशि है जिसके घन मे ६ घटा कर ५ का भाग देने से निःशेष होता है।

कल्पना किया राशि = या

इसके घन मे ६ घटाकर ५ का भाग देने पर निःशेष होता है, यहाँ लब्धि कालक तुल्य कल्पना करके समीकरण :—

$$\frac{\text{या}^{३}-६}{५}=\text{का},\quad \therefore \text{या}-६=५\,\text{का}\quad \therefore \text{या}^{३}=५\,\text{का}+६।\quad \therefore \text{या}=\sqrt[३]{५\,\text{का}+६}$$

यहाँ द्वितीय पक्ष का घनमूल नहीं मिलता, इसलिए **"हर भक्तो यस्य घनः"** इत्यादि सूत्र के द्वारा क्रिया करते हैं। यहाँ रूप (६) का भी घन मूल नहीं मिलता, अतः हर (५) से तष्टित रूप (१) में तैंतालिस गुणित हार (४३ × ५ = २१५) जोड़ने से (२१६) होता है। इसका घन मूल (६) रूप पद हुआ। अब इष्ट ५ का घन (१२५) मे हर (५) का भाग देने से शुद्ध होता है। तथा इष्ट ५ को तीन और रूप पद (६) से गुणा कर (९०) हर का भाग देने से निःशेष होता है। इसलिए इष्ट (५) से अन्य वर्ण (९) को गुणा कर (५ नी) इसमें रूपपद (६) जोड़कर (५ नी + ६), इसका घन का पूर्वानीत तृतीय मूल के साथ समीकरण :— $५\,\text{का}+६=(५\,\text{नी}+६)^{३}$

$$\text{वा}\ ५\,\text{का}+६=१२५\,\text{नी}^{३}+४५०\,\text{नी}^{२}+५४०\,\text{नी}+२१६$$

$$\therefore ५\,\text{का}=१२५\,\text{नी}^{३}+४५०\,\text{नी}^{२}+५४०\,\text{नी}+२१६-६,$$

$$\text{वा}\ ५\,\text{का}=१२५\,\text{नी}^{३}+४५०\,\text{नी}^{२}+५४०\,\text{नी}+२१०,$$

$$\text{का}=\frac{१२५\,\text{नी}^{३}+४५०\,\text{नी}^{२}+५४०\,\text{नी}+२१०}{५}$$

वा का = $२५ नी^३ + ९० नी^२ + १०८ नी + ४२$

$\because$ $या^३ = ५ का + ६ = (५ नी + ६)^३$

$\therefore$ या = ५ नी + ६ यहाँ नीलक मे १ का उत्थापन देने से—

या = ५ नी + ६ = ५ × १ + ६ = ११

का = $२५ नी^३ + ९० नी^२ + १०८ नी + ४२$ = २५ + ९० + १०८ + ४२ = २६५

आलाप— राशि = ११

$\frac{(११)^३ - ६}{५} = \frac{१३३१ - ६}{५} = \frac{१३२५}{५} = २६५$ यह उपपन्न हुआ।

१३. भावितम् :—

भावित का अर्थ है, गुणन फल। प्रश्न में जहाँ दो अव्यक्त राशियों का गुणन फल, राशियों के वर्ग, अथवा योगान्तर से युक्त हो, वहाँ एक राशि को इष्ट राशि कल्पना कर दूसरे का मान लाया जाता है। ऐसे प्रश्न को आचार्य ने भावित संज्ञा दी है। आधुनिक गणित में ऐसे प्रश्नों को महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता। किन्तु ऐसे प्रश्नों में कुट्टक अथवा वर्ग प्रकृति की सम्भावना हो तो ये प्रश्न महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। इसे हल करने के लिए आचार्यकृत सूत्र इस प्रकार है :—

मुक्त्वेष्टवर्णं सुधिया परेषां कल्प्यानि मानानि यथेप्सितानि।
तथा भवेद्भावितभङ्ग एवं स्यादाद्यबीजक्रियेष्ट सिद्धिः ॥ १ ॥

अर्थात् जिस उदाहरण में दो, तीन आदि वर्णों के घात से भावित उत्पन्न हो वहाँ पर एक इष्ट वर्ण को छोड़कर अन्य वर्णों के ऐसे इष्ट व्यक्त मान कल्पना करे, जिसमें भावित का नाश हो। तथा दोनों पक्षों के वर्णों में इष्ट व्यक्त मान से उत्थापन देकर एक वर्ण समीकरण के प्रकार से अव्यक्त का व्यक्त मान जानना चाहिए।

उदाहरण :—

चतुस्त्रिगुणयो राश्योः संयुतिर्द्वियुतातयोः।
राशिघातेन तुल्या स्यात् तौ राशि वेत्सिचेद्वद ॥ १ ॥

अर्थात् वे दो राशियाँ कौन सी हैं जिनको क्रमशः चार और तीन से गुणाकर योग करने से जो हो, उसमें दो जोड़ने से उनके घात के बराबर होता है।

यहाँ राशि (या, का) कल्पना किया।

इनको क्रम से चार और तीन से गुणकर दो जोड़ा तो (४ या + ३ का + २) ऐसा हुआ। यह दोनों के घात के तुल्य है। अतः समीकरण :—

४ या + ३ का + २ = या. का यहाँ दोनों पक्षों में (या. का) ये दो वर्ण हैं, उनमें 'या' को छोड़कर 'का' का मान व्यक्त (५) कर के उत्थापन देने से दोनों पक्ष :—

४ या + ३ × ५ + २ = या ५ अथवा ४ या + १७ = ५ या

$\therefore$ १७ = ५ या - ४ या = या। अतः व्यक्त दोनों राशि १७, ५ आईं।

आलाप मिलाने से :— प्रथम राशि = १७, द्वितीय राशि = ५,

१७×४+३×५+२ = १७×५

अथवा ६८+१५+२ = ८५। उपपन्न हुआ।

पुनः अल्प आयास में इसे सिद्ध करने के लिए एक अन्य सूत्र कहते हैं। सूत्र :—

भावितं पक्षतोऽभीष्टात् त्यक्त्वा वर्णौ सरूपकौ।
अन्यतो भाविताङ्केन ततः पक्षौ विभज्य च॥ २॥
वर्णाङ्काहतिरूपैक्यं भक्त्वेष्टेनेष्ट तत्फले।
एताभ्यां संयुतावूनौ कर्त्तव्यौ स्वेच्छया च तौ॥ ३॥
वर्णाङ्कौ वर्णयोर्माने ज्ञातव्ये ते विपर्ययात्।

अर्थात् प्रश्न के अनुसार सिद्ध तुल्य दो पक्षों में से अभीष्ट पक्ष में भावित को घटा देना और अन्य पक्ष में सरूप वर्ण को घटाकर दोनों पक्षों में भाविताङ्क का भाग देना।

तथा वर्णाङ्कों के घात, रूप इन दोनों के योग में इष्टाङ्क का भाग देना।

इष्टाङ्क, इष्ट भक्त फल इन दोनों को दो स्थान में रखकर उनमें क्रम से वर्णाङ्कों को युत, ऊन कर विलोम से वर्णों के मान जानना चाहिए। जैसे जहाँ वर्णाङ्क कालक जोड़ा गया हो वहाँ यावत्तावत् का मान और जहाँ यावत्तावत् जोड़ा गया हो वहाँ कालक का मान होगा।

उदाहरण :—

चतुस्त्रिगुणयो राश्योः संयुतिर्द्वियुता तयोः।
राशि घातेन तुल्या ....इति॥

पूर्वोक्त उदाहरण में सिद्ध दोनों पक्ष :— ४ या + ३का + २ = या. का

यहाँ वर्णाङ्कों (४, ३) के घात (४×३ = १२) में रूप (२) जोड़ने से १४ हुआ इसमें इष्ट (१) का भाग देने से लब्धि = १४

अब इष्ट (१) फल (१४) दोनों को क्रम से वर्णाङ्कों (४, ३) जोड़ने से यावत्तावत् का मान (१७) और कालक का मान (५) आया।

अथवा इष्ट फल को कालक, यावत्तावत् वर्णाङ्क में जोड़ने से यावत्तावत् का मान (१८) और कालक का मान (४) आया।

अथवा इष्ट २ कल्पना करके इससे वर्णाङ्कों को घात (१२) और रूप (२) के योग (१४) में भाग देने से फल (७) आया।

अब इष्ट (२) और फल (७) को कालक तथा यावत्तावत् के वर्णाङ्क में जोड़ने से यावत्तावत् का मान = ५ और कालक का मान = ११ आया।

॥ इति बीजगणिते भावित प्रकरणम्॥

॥ श्री भास्करो विजयते ॥

* लीलावती *

मङ्गलाचरणम्

प्रीतिं भक्तजनस्य यो जनयते विघ्नं विनिघ्नन् स्मृत-
स्तं वृन्दारकवृन्दवन्दितपदं नत्वा मतङ्गाननम् ।
पाटीं सद्‌गणितस्य वच्मि चतुरप्रीतिप्रदां प्रस्फुटां
संक्षिप्ताक्षर-कोमला-ऽमलपदैर्लालित्यलीलावतीम् ॥ १ ॥

जो स्मरण करते ही समस्त विघ्नों को नाश करके अपने भक्त जनों को आमोद देते हैं, एवं देवताओं से वन्दित है चरण जिनका ऐसे श्रीगणेश जी को प्रणाम करके मैं (भास्कराचार्य) संक्षिप्त शब्दों में कोमल और निर्मल पदों से स्फुट आशय तथा लालित्यलीला (माधुर्य आदि गुण) से सहित समस्त व्यवहारोपयुक्त गणित की पाटी (पद्धति) को कहता हूँ ॥ १ ॥

परिभाषा प्रकरण—

वराटकानां दशकद्वयं (२०) यत् सा काकिणी ताश्च पणश्चतस्रः ।
ते षोडश द्रम्म इहावगम्यो द्रम्मैस्तथा षोडशभिश्च निष्कः ॥ २ ॥

२० कौड़ी की १ काकिणी, ४ काकिणी का १ पण, १६ पण का १ द्रम्म और १६ द्रम्म का १ निष्क होता है ॥ २ ॥

तुल्या यवाभ्यां कथिताऽत्र गुञ्जा वल्लस्त्रिगुञ्जो धरणं च तेऽष्टौ ।
गद्याणकस्तद्‌द्वयमिन्द्रतुल्यै-(१४)र्वल्लैस्तथैको धटकः प्रदिष्टः ॥ ३ ॥

२ जौ की १ गुञ्जा (रत्ती), ३ गुञ्जों का १ बल्ल, ८ बल्ल का १ धरण, २ धरण का १ गद्याणक और १४ बल्ल का १ धटक कहा गया है ॥ ३ ॥

दशार्धगुञ्जं प्रवदन्ति माषं माषाह्वयैः षोडशभिश्च कर्षम् ।
कर्षैश्चतुर्भिश्च पलं तुलाज्ञाः कर्षं सुवर्णस्य सुवर्णसंज्ञम् ॥ ४ ॥

५ गुञ्जा की १ मासा, १६ मासे का १ कर्ष, ४ कर्ष का १ पल समझना। तथा सुवर्ण शब्द से १ कर्ष का सुवर्ण समझना चाहिए ॥ ४ ॥

यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यैर्हस्तोऽङ्गुलैः षड्‌गुणितैश्चतुर्भिः ।
हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम् ॥ ५ ॥

स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन तथा कराणां दशकेन वंशः ।
निवर्त्तनं विंशतिवंशसंख्यैः क्षेत्रं चतुर्भिश्च भुजैर्निबद्धम् ॥ ६ ॥

८ यवोदर का १ अङ्गुल, २४ अङ्गुल का १ हाथ, ४ हाथ का १ दण्ड, २००० दण्ड का १ कोश, ४ कोश का १ योजन होता है। तथा १० हाथ का १ वांस और २० वांस लम्बाई तथा २० वांस चौड़ाई वाला चतुष्कोण क्षेत्र १ निवर्तन कहलाता है ॥ ५–६ ॥

हस्तोन्मितैर्विस्तृतिदैर्घ्यपिण्डैर्यद् द्वादशास्रं घनहस्तसंज्ञम् ।
धान्यादिके यद् घनहस्तमानं शास्त्रोदिता मागधखारिका सा ॥ ७ ॥
द्रोणस्तु खार्याः खलु षोडशांशः स्यादाढको द्रोणचतुर्थभागः ।
प्रस्थश्चतुर्थांश इहाढकस्य प्रस्थांघ्रिराद्यैः कुडवः प्रदिष्टः ॥ ८ ॥

१ हाथ लम्बाई, १ हाथ चौड़ाई और १ हाथ उँचाई अथवा गहराई जिसमें हो, वह १ घनहस्त कहलाता है, जिसके नीचे, ऊपर और मध्य में सब मिलकर १२ कोण होते हैं। जैसे मिट्टी के तेल का टीन होता है। इस प्रकार अन्न आदि तौलने (मापने) के लिये जो घनहस्त बनाया जाता है उसे शास्त्र कथित खारी कहते हैं जो मगध देश में प्रचलित है। उस खारी के षोडशांश को द्रोण, दोण का चतुर्थांश आढ़क, आढ़क का चतुर्थांश प्रस्थ और प्रस्थ का चतुर्थांश कुड़व कहलाता है ॥ ७–८ ॥

पादोनगद्याणकतुल्यटङ्कैर्द्विसप्ततुल्यैः कथितोऽत्र सेरः ।
मणाभिधानः ख-युगैश्च सेरैर्धान्यादितौल्येषु तुरुष्कसंज्ञा ॥ ९ ॥

पौन ($\frac{3}{4}$) गद्याणक का १ टङ्क, ७२ टङ्क का १ सेर, और ४० सेर का १ मन यह अन्न आदि तौलने के लिये तुरकों की चलाई हुई तौल की संज्ञा है ॥ ९ ॥

द्व्यङ्केन्दु-संख्यैर्धटकैश्च सेरस्तैः पञ्चभिः स्याद्धटिका च ताभिः।
मणोऽष्टभि 'स्त्वालमगीरशाह' कृताऽत्र संज्ञा निजराज्यपूर्षु ॥ १० ॥

(पूर्वोक्त) १९२ धटक का १ सेर, ५ सेर का १ धटिका (पसेरी) और ८ पसेरी का १ मन यह आलमगीरसाह ने अपने राज्य में संज्ञा चलाई ॥ १० ॥

शेषाः कालादिपरिभाषा लोकतः प्रसिद्धा ज्ञेयाः ॥ ११ ॥

भा०—शेष काल आदि की परिभाषाएँ प्रचलित लोकव्यवहार से समझना चाहिये ।

अथाभिन्नपरिकर्माष्टकम्

लीलागललुलल्लोलकालव्यालविलासिने ।
गणेशाय नमो नीलकमलामलकान्तये ॥ १ ॥

भा०—क्रीड़ा से कण्ठ में काले सर्पों से विलसित (सुशोभित) कल्लोल करने वाले नील कमल के सदृश निर्मल कान्ति वाले श्रीगणेशजी को प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

एक-दश-शत-सहस्रा-ऽयुत-लक्ष-प्रयुत-कोटयः क्रमशः ।
अर्बुदमब्जं खर्व-निखर्व-महापद्म-शङ्कवस्तस्मात् ॥ २ ॥
जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः ।
संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः ॥ ३ ॥

संख्या में अङ्कों के स्थानों की संज्ञा उत्तरोत्तर दशगुणित (दाहिने से बाएँ भाग क्रम से) एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शङ्कु, जलधि, अन्त्य, मध्य, परार्ध ये व्यवहार के लिये पूर्वाचार्यों ने की है ॥ २–३ ॥

कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथवाङ्कयोगो यथास्थानकमन्तरं वा ।

'जिन दो या अधिक संख्याओं का योग या अन्तर करना हो' उनके क्रम या उत्क्रम से तुल्य स्थानीय अङ्कों का ही योग या अन्तर करना चाहिये ।

उदाहरण :—

अये बाले लीलावति मतिमति ब्रूहि सहितान्
द्वि - पञ्च · द्वात्रिंशत्त्रिनवतिशताष्टादशदश ।
शतोपेतानेतानयुतवियुतांश्चापि वद मे
यदि व्यक्ते युक्तिव्यवकलनमार्गेऽसि कुशला ॥ १ ॥

हे बाले ! लीलावती ! अये मतिमति ! यदि तुम योग और अन्तर क्रिया में निपुणा हो तो २, ५, ३२, १९३, १८, १० इनको १०० के साथ जोड़ कर बताओ । (दश हजार) में घटा कर शेष संख्या बताओ ॥ १ ॥

गुण्यान्त्यमङ्कं गुणकेन हन्यादुत्सारितेनैवमुपान्तिमादीन् ।
गुण्यस्त्वधोऽधो गुणखण्डतुल्यस्तैः खण्डकैः सङ्गुणितो युतो वा ॥ १ ॥
भक्तो गुणः शुध्यति येन तेन लब्ध्या च गुण्यो गुणितः फलं वा ।
द्विधा भवेद्रूपविभाग एवं स्थानैः पृथग्वा गुणितः समेतः । २ ॥
इष्टोनयुक्तेन गुणेन निघ्नोऽभीष्टघ्नगुण्यान्वित-वर्जितो वा ॥ २½ ॥

जिससे गुना किया जाता है वह गुणक और जिसको गुना किया जाय वह गुण्य कहलाता है। गुण्य संख्या में जो अन्तिम अङ्क हो उसको गुणक से गुना करके उसी के सामने रखना, फिर उसी गुणक को आगे बढ़ा कर उपान्तिमादि (क्रम से अगले अगले) अङ्कों को गुना करके अपने अपने सामने रख कर जोड़ने से गुणन फल होता है।

अथवा गुणक के दो या अधिक खण्ड करके और खण्डतुल्य स्थानों में गुण्य को रख कर प्रत्येक खण्ड से गुना करके सबको जोड़ने से गुणन फल होता है ।

अथवा जिस संख्या से भाग देने पर गुणक में निश्शेष लब्धि हो उस संख्या से तथा लब्धि से गुण्य को गुना करने से गुणनफल होता है।

इस प्रकार संख्या के विभाग दो प्रकार के होते हैं। (एक खण्ड के विभाग और दूसरा स्थान विभाग) अतः पृथक् पृथक् गुणक के स्थानीय अङ्कों से गुण्य को गुना करके फिर यथास्थानीय अङ्कों के योग करने से भी गुणनफल होता है ॥

अथवा (अपनी सुविधा के अनुसार) गुणक में अभीष्ट संख्या जोड़कर अथवा घटाकर गुण्य को गुना करें, फिर गुणनफल में उसी अभीष्ट संख्या से गुणित गुण्य को क्रम से जोड़ने और घटाने से वास्तव गुणन फल होता है ॥

उदाहरण :—बाले बालकुरङ्गलोलनयने लीलावति ! प्रोच्यतां
पञ्चत्र्येकमिता दिवाकरगुणा अङ्का कति स्युर्यदि ।
रूपस्थानविभागखण्डगुणने कल्याऽसि कल्याणिनि
च्छिन्नास्तेन गुणेन ते च गुणिता जाताः कति स्युर्वद ॥ १ ॥

हे बाले ! मृगाक्षि ! लीलावति ! यदि तुम संख्या के स्थान विभाग और खण्ड विभागादि गुणन में निपुणा हो तो १३५ को १२ से गुना करने से गुणनफल क्या होगा ? और हे कल्याणिनि ! फिर उस गुणनफल में उसी (१२) गुणक से भाग देने पर लब्धि क्या होगी ? सो बताओ ॥

अथ भागहारे करणसूत्रं वृत्तम्

भाज्याद्धरः शुध्यति यद्गुणः स्यादन्त्यात् फलं तत् खलु भागहारे ।
समेन केनाप्यपवर्त्य हारभाज्यौ भजेद्वा सति सम्भवे तु ॥ ४ ॥

जिस गुणकाङ्क से गुणित हर-अन्त्य भाज्य में घटे वही गुणकाङ्क भाग हार में लब्धि होती है। यदि सम्भावना हो तो हर और भाज्य को किसी तुल्य अङ्क से अपवर्तन देकर भागक्रिया करनी चाहिये।

अथ वर्गकरणसूत्रम्—

समद्विघातः कृतिरुच्यतेऽथ स्थाप्योऽन्त्यवर्गो द्विगुणान्त्यनिघ्नाः ।
स्व-स्वोपरिष्टाच्च तथाऽपरेऽङ्कास्त्यक्त्वान्त्यमुत्सार्य पुनश्च राशिम् ॥
खण्डद्वयस्याभिहतिर्द्विनिघ्नी तत्खण्डवर्गैक्ययुता कृतिर्वा ।
इष्टोनयुग्राशिवधः कृतिः स्यादिष्टस्य वर्गेण समन्वितो वा ॥

तुल्य दो अङ्कों का घात (गुणन) कृति (वर्ग) कहलाता है। यदि संख्या में दो या अधिक अङ्क हो तो—उनमें अन्तिम अङ्क का वर्ग करके अपने सामने रखना, तथा द्विगुणित अन्तिम अङ्क

से अन्य अग्रिम अङ्कों को गुना करके अपने-अपने सामने रख कर, अन्तिम अङ्क को मिटा कर—अन्य अग्रिमाङ्कों को एक-एक स्थान आगे बढ़ा कर रखना चाहिए, फिर उनमें जो अन्त्य अङ्क हो उसका वर्ग कर–अपने सामने रखना, तथा फिर द्विगुणित इस अन्तिमाङ्क से अग्रिम अङ्कों को गुणा करके अपने-अपने सामने रखना। फिर भी संख्या में अङ्क बचे हों तो पूर्वोक्तरीति से उनको एक-एक स्थान आगे बढ़ाकर पूर्वोक्त क्रिया करें। जब तक सब अङ्कों का वर्ग न हो जाय इस प्रकार स्थापित अङ्कों को (अपने अपने स्थानीय को) योग करने से संख्या का वर्ग होता है। यह द्वितीय प्रकार हुआ। तृतीय प्रकार यह है कि—जिस संख्या का वर्ग करना हो उसके २ खण्ड करै—उन दोनों खण्डों को परस्पर गुना करके गुणनफल को दूना करै फिर उसमें दोनों खण्ड के वर्गयोग को जोड़ देने से संख्या का वर्ग होता है। चतुर्थ प्रकार यह है कि जिस संख्या का वर्ग करना हो उसमें—किसी इष्ट अङ्क को पृथक् पृथक् जोड़ और घटा कर जो हो उन दोनों का परस्पर गुणन कर गुणन फल में—कल्पित इष्ट अङ्क का वर्ग जोड़ या घटा देने से संख्या का वर्ग होता है ॥

उदाहरणः— सखे ! नवानां च चतुर्दशानां ब्रूहि त्रिहीनस्यशतत्रयस्य।
पञ्चोत्तरस्याप्ययुतस्य वर्गं जानासि चेद्वर्गविधानमार्गम् ॥ १ ॥

हे सखे ! यदि तुम वर्ग क्रिया जानते हो तो, ८।१४।२९७ और १०००५ का वर्ग बताओ।

अथ वर्गमूले करणसूत्रम्—

त्यक्त्वाऽन्त्याद्विषमात्कृतिं द्विगुणयेन्मूलं समे तद्धृते
त्यक्त्वा लब्धकृतिं तदाद्यविषमाल्लब्धं द्विनिघ्नं न्यसेत्।
पङ्क्त्यां पङ्क्तिहृते समेऽन्यविषमात् त्यक्त्वाऽऽप्तवर्गं फलं
पङ्क्त्यां तद्द्विगुणं न्यसेदिति मुहुः पङ्क्तेर्दलं स्यात् पदम्॥७॥

जिस संख्या का वर्गमूल निकालना हो उसके आरम्भ (दाहिने अंक से बाएँ भाग क्रम) से विषम (।) और सम (–) चिह्न लगा कर अन्तिमविषमांक में जिस अंक का वर्ग घटै उसका वर्ग घटा कर उस मूल को दूना करके पंक्ति (संख्या के वामभाग) में रख कर उससे अग्रिम समांक में भाग देना, लब्धि का वर्ग अग्रिम विषम में घटावै, पुनः उस लब्धि को दूना करके पंक्ति में रक्खे, तथा संख्या में शेषांक बचे तो पुनः पंक्ति से अग्रिम समांक में भाग देकर लब्धि के वर्ग को उससे अग्रिम विषमांक में घटावै और लब्धि को दूना कर पंक्ति में रक्खे, फिर आगे ऐसी ही क्रिया करै जब तक संख्या के सब अंक समाप्त न हो जायँ। इस प्रकार पंक्ति का आधा मूल होता है ॥ ७ ॥

उदाहरण :— मूलं चतुर्णां च तथा नवानां पूर्वं कृतानां च सखे ? कृतीनाम्।
पृथक् पृथग्वर्गपदानि विद्धि बुद्धेर्विवृद्धिर्यदि तेऽत्र जाता ॥ १ ॥

हे मित्र ! यदि तुम्हारी बुद्धि में वृद्धि हुई है तो—४ का, ९ का, और पूर्व किये हुए वर्गों (८१, १९६, ८८२०९, १००१००१२५ इन) के अलग अलग मूल बताओ।

अथ घने करणसूत्रं वृत्तत्रयम्—

समत्रिघातश्च घनः प्रदिष्टः स्थाप्यो घनोऽन्त्यस्य ततोऽन्त्यवर्गः।
आदित्रिनिघ्नस्तत आदिवर्गस्त्र्यन्त्याहतोऽथादिघनश्च सर्वे ॥ ८ ॥

स्थानान्तरत्वेन युता घनः स्यात् प्रकल्प्य तत्खण्डयुगं ततोऽन्त्यम् ।
एवं मुहुर्वर्गघनप्रसिद्धावाद्याङ्कतो वा विधिरेष कार्यः ॥ ९ ॥

खण्डाभ्यां वा हतो राशिस्त्रिघ्नः खण्डघनैक्ययुक् ।
वर्गमूलघनः स्वघ्नो वर्गराशेर्घनो भवेत् ॥ १० ॥

तुल्य तीन अङ्कों का घात (गुणन) घन कहलाता है। यदि संख्या में दो अङ्क हों तो अन्तिम अङ्क का घन करके एक स्थान में रखना। फिर उसी अन्तिम अङ्क का वर्ग कर उसको आदि अङ्क से गुना कर फिर ३ से गुना कर 'द्वितीय स्थान में' रखना। फिर आदि अङ्क का वर्ग करके उसको अन्त्य अङ्क और ३ से गुना कर 'द्वतीय स्थान में' रखना। फिर आदि अङ्क का घन करना इन सबों (चारों) को एक एक स्थान बढ़ाकर योग करने से २ अङ्कों की संख्या का घन होता है। यदि संख्या में तीन अङ्क हों तो दो अङ्कों की संख्या को अन्त्य और तृतीय अङ्क को आदि मान कर उक्त रीति से क्रिया करने से तीन अङ्कों की संख्या का घन होता है। यदि चार अङ्क की संख्या हो तो फिर ३ अङ्कों की संख्या को अन्त्य और चतुर्थ अङ्क को आदि मानना, एवं आगे भी समझना चाहिए। यह घनक्रिया का द्वितीय प्रकार हुआ। अथवा जैसे अन्त्य अङ्क से क्रिया का आरम्भ किया गया है उसी प्रकार आद्य अङ्क से भी आरम्भ कर क्रिया करे, परन्तु इस प्रकार में अङ्कों को एक-एक स्थान पीछे (वाम भाग) हटा कर, रख करके योग करना चाहिये। 'तृतीय प्रकार यह है कि—जिस अङ्क का घन करना हो उसका दो खण्ड करे और पृथक् पृथक् दोनों खण्ड से संख्या को गुना करके फिर ३ से गुना करे उसमें फिर दोनों खण्ड के वर्गयोग जोड़ देने से घन हो जाता है। यदि वर्गात्मक संख्या (४, ९ आदि) का घन हो तो उस संख्या का वर्गमूल निकाल कर उसका घन करें और फिर उसको उतने ही से गुना करे तो वर्गाङ्क संख्या का घन होता है॥८–१०॥

उदाहरण : नवघनं त्रिघनस्य घनं तथा कथय पञ्चघनस्य घनं च मे ।
घनपदं च ततोऽपि घनात् सखे ! यदि घनेऽस्ति घना भवतो मतिः ॥

हे मित्र ! यदि घन क्रिया में तुम्हारी बुद्धि दृढ़ है तो ९ का घन, ३ के घन का घन, और ५ के घन का घन बताओ और उन घनों के पृथक् पृथक् घनमूल भी बताओ ॥

अथ घनमूले करणसूत्र वृत्तद्वयम् —

आद्यं घनस्थानमथाघने द्वे पुनस्तथाऽन्त्याद् घनतो विशोध्य ।
घनं पृथक्स्थं पदमस्य कृत्या त्रिघ्न्या तदाद्यं विभजेत् फलं तु ॥ ११ ॥

पङ्क्त्यां न्यसेत्तत्कृतिमन्त्यनिघ्नीं त्रिघ्नीं त्यजेत्तत्प्रथमात्फलस्य ।
घनं तदाद्याद् घनमूलमेवं पंक्तिर्भवेदेवमतः पुनश्च ॥ १२ ॥

जिस संख्या का घनमूल निकालना हो उसके आद्य अङ्कों से आरम्भ कर एक पर घन का चिह्न (।) और उसके आगे दो पर अघन का चिह्न (—) लगावे। इस प्रकार सब पर चिह्न लगा कर अन्त्य घन में जिसका घन घटे उस घन को घटा कर, मूल को अलग रख उसके वर्ग को त्रिगुणित करके जो संख्या हो उससे अगले (अघन) अङ्क में भाग देना, लब्धि को पंक्ति में रखकर उसका वर्ग करे और उस (वर्ग) का अन्त्य (मूलाङ्क) और ३ से गुना करके फिर अगले (द्वितीय अघन) अङ्क में घटावे। और भाग देने में लब्धि जो हुई थी उसका घन अगले घन में घटावे, इस

प्रकार पंक्ति का अङ्क घनमूल होता है। संख्या में और भी अङ्क बचे तो फिर भी उक्तरीति से क्रिया करै ॥ ११-१२ ॥

अथ भिन्नपरिकर्माष्टकम् ।

तत्रापि भागजातौ करणसूत्रं वृत्तम्—

अन्योन्यहाराभिहतौ हरांशौ राश्योः समच्छेदविधानमेवम् ।
मिथो हराभ्यामपवर्त्तिताभ्यां यद्वा हरांशौ सुधियाऽत्र गुण्यौ ॥ १ ॥

जिन दो या अधिक भिन्न संख्या का योग या अन्तर करना हो उन भिन्न संख्याओं के परस्पर एक के हर से अन्य संख्या के हर और अंशों को गुना करने से समच्छेद (सब में तुल्य हर) हो जाते हैं। अथवा सम्भावना हो तो किसी (समान) अङ्क से हरों को अपवर्तित करके उन अपवर्तित हरों से परस्पर अंश और हर को गुना करै तो भी समच्छेद हो जाते हैं ॥

उदाहरण :— रूपत्रयं पञ्चलवस्त्रिभागो योगार्थमेतान् वद तुल्यहारान् ।
त्रिषष्टिभागश्च चतुर्दशांशः समच्छिदो मित्र ! वियोजनार्थम् ॥ १ ॥

हे मित्र ! ३, $\frac{१}{५}$ $\frac{१}{३}$ इन भिन्नाङ्कों को योग करने के लिए तथा $\frac{१}{१४}$, $\frac{१}{६३}$ इन दोनों को अन्तर करने के लिये समच्छेद बताओ।

अथ प्रभागजातौ करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

लवा लवघ्नाश्च हरा हरघ्ना भागप्रभागेषु सवर्णनं स्यात् ।

किसी संख्या के भाग के भी भाग किये जाँय तो वह प्रभाग जाति या भाग प्रभाग गणित कहलाता है, भाग प्रभाग में अंशों को अंश से और हरों को हर से गुना कर देने से सवर्णन होता है।

उदारण :— द्रम्मार्धत्रिलवद्वयस्य सुमते ! पादत्रयं यद्भवेत्
तत्पञ्चांशकषोडशांशचरणः सम्प्रार्थितेनार्थिने ।
दत्तो येन वराटकः कति कदर्येणार्पितास्तेन मे
ब्रूहि त्वं यदि वेत्सि वत्स ! गणिते जातिं प्रभागाभिधाम् ॥ १ ॥

हे सुमते ! किसी याचक के द्वारा प्रार्थित होने पर एक कृपण ने एक द्रम्म के आधे का जो द्विगुणित तृतीयांश उसके त्रिगुणित चतुर्थांश जो हो उसके पञ्चमांश के षोडशांश का चतुर्थांश याचक को दिया तो हे वत्स ! यदि तुम प्रभाग जाति गणित जानते हो तो बताओ कि उस कृपण ने कितने वराटक दिये।

अथ भागानुबन्धभागापवाहयोः करणसूत्रम्—

छेदघ्नरूपेषु लवा धनर्णमेकस्य भागा अधिकोनकाश्चेत् ॥ २॥
स्वांशोधिकोनः खलु यत्र तत्र भागानुबन्धे च लवापवाहे ।
तलस्थहारेण हरं निहन्यात् स्वांशाधिकोनेन तु तेन भागान् ॥ ३ ॥

जहां एक अभिन्न संख्या में दूसरी भिन्न संख्या को जोड़ना हो तो वह भागानुबन्ध और घटाना हो तो भागापवाह कहलाता है, यदि किसी एक अङ्क का कोई भाग दूसरे अंक में जोड़ा या घटाया

जाय तो उस भिन्न संख्या के हर से रूप को गुना करके उसमें भिन्न संख्या के लव को जोड़ या घटा देना चाहिये ।

उदाहरण :— साङ्घ्रिद्वयं त्रयं व्यङ्घ्रि कीदृग्ब्रूहि सवर्णितम् ।
जानास्यंशानुबन्धं चेत् तथा भागापवाहनम् ॥ १ ॥

हे मित्र ! यदि तुम भागानुबन्ध और भागापवाह जानते हो तो २ में $\frac{१}{४}$ जोड़ने से और ३ में $\frac{१}{४}$ घटाने से क्या होगा ? बताओ ॥

उदाहरण :— अङ्घ्रिः स्वत्र्यंशयुक्तः स निजदलयुतः कीदृशः कीदृशौ द्वौ ।
त्र्यंशौ स्वाष्टांशहीनौ तदनु च रहितौ स्वैस्त्रिभिः सप्तभागैः ॥
अर्धं स्वाष्टांशहीनं नवभिरथ युतं सप्तमांशैः स्वकीयैः
कीदृक् स्याद् ब्रूहि वेत्सि त्वमिह यदि सखेंऽशानुबन्धापवाहौ ॥ २ ॥

हे मित्र ! यदि तुम अंशानुबन्ध और अंशापवाह जानते हो तो $\frac{१}{४}$ में अपना $\frac{१}{३}$ जोड़ने से जो हो उसमें फिर अपना (उसी का) $\frac{१}{२}$ जोड़ने से क्या होगा ? । तथा $\frac{२}{३}$ में अपना $\frac{१}{८}$ घटाने से जो हो उसमें फिर अपना $\frac{३}{७}$ घटाने से क्या बचेगा ? । और $\frac{१}{२}$ में अपना $\frac{१}{८}$ घटा कर जो हो उसमें फिर उसी का $\frac{६}{७}$ जोड़ने से क्या होगा ? बताओ ।

अथ भिन्नसंकलित-व्यवकलितयोः करणसूत्रम्—

योगोऽन्तरं तुल्यहरांशकानां कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः ।

जिन संख्याओं में तुल्य हर हों उन्हीं अंशों का योग या अन्तर करना चाहिए । तथा जिस संख्या में हर नहीं हो उसके नीचे १ हर कल्पना करनी चाहिये ।

उदाहरण :—पञ्चांशपादत्रिलवार्धषष्ठानेकीकृतान् ब्रूहि सखे ! ममैतान् ।
एभिश्च भागैरथ वर्जितानां किं स्यात् त्रयाणां कथयाशु शेषम् ॥ १ ॥

हे मित्र $\frac{१}{५}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{६}$ इनका योग बताओ । और उसी योग फल को ३ में घटा कर क्या शेष बचेगा वह भी बताओ ।

अथ भिन्नगुणने करणसूत्रम्—

अंशाहतिश्छेदवधेन भक्ता लब्धं विभिन्ने गुणने फलं स्यात् ॥ ४ ॥

जिन भिन्न संख्याओं के गुणन करना हो उनके अंशों को परस्पर गुना करके उसमें हरों के घात के द्वारा भाग देने से लब्धि भिन्न गुणन फल होता है ॥

उदाहरण :— सत्र्यंशरूपद्वितयेन निघ्नं स·सप्तमांशद्वितयं भवेत् किम् ? ।
अर्धं त्रिभागेन हतं च विद्धि दक्षोऽसि भिन्ने गुणनाविधौ चेत् ॥ १ ॥

हे मित्र ! $२+\frac{१}{३}$ से $२+\frac{१}{७}$ को और $\frac{१}{२}$ को $\frac{१}{३}$ से गुणा करने से गुणनफल क्या होगा ? यदि तुम भिन्नगुणन में समर्थ हो तो बताओ ।

अथ भिन्नभागहारे करणसूत्रम्—

छेदं लवं च परिवर्त्य हरस्य शेषः कार्योऽथ भागहरणे गुणनाविधिश्च ।

भिन्न संख्या के भाग में भाजक के हर और अंश को परिवर्तन (हर को अंश और अंश को हर बना) कर भाज्य के अंश हर के साथ गुणन क्रिया कर देने से भाग फल होता है ।

उदाहरण :— **सत्र्यंशरूपद्वितयेन पञ्च त्र्यंशेन षष्ठं वद मे विभज्य ।**
दर्भीयगर्भाग्रसुतीक्ष्णबुद्धिश्चेदस्ति ते भिन्नहृतौ समर्था ॥ १ ॥

हे मित्र ! यदि तुम्हारी बुद्धि भिन्न भाग हरण में तीक्ष्ण है तो ५ को २ + $\frac{1}{3}$ से और $\frac{1}{6}$ को $\frac{1}{3}$ से भाग देकर भाग फल क्या होगा ? यह बताओ ।

अथ भिन्नवर्गादौ करणसूत्रम्—

वर्गे कृती घनविधौ तु घनौ विधेयौ । हारांशयोरथ पदे च पदप्रसिद्ध्यै ॥ ५ ॥

किसी भिन्न संख्या का वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनों का वर्ग करे, तथा घन करना हो तो दोनों का घन करे, एवं वर्गमूल घनमूल निकालना हो तो दोनों का मूल निकालना चाहिये ।

उदाहरण :— **सार्धत्रयाणां कथयाशु वर्गं वर्गात् ततो वर्गपदं च मित्र ! ।**
घनं च मूलं च घनात् ततोऽपि जानासि चेद्वर्गघनौ विभिन्नौ ॥ १ ॥

हे मित्र ! यदि तुम भिन्न संख्या के वर्ग और घन क्रिया को जानते हो तो $\frac{7}{2}$ का वर्ग और उस वर्ग का वर्गमूल तथा उसी ($\frac{7}{2}$) का घन और घन का मूल बताओ ।

इति भिन्न परिकर्माष्टकम् ।

अथ शून्यपरिकर्मसु करणसूत्रम्

योगे खं क्षेपसमं वर्गादौ खं खभाजितो राशिः ।
खहरः स्यात् खगुणः खं खगुणश्चिन्त्यश्च शेषविधौ ॥ १ ॥
शून्ये गुणके जाते खं हारश्चेत् पुनस्तदा राशिः ।
अविकृत एव ज्ञेयस्तथैव खेनोनितश्च युतः ॥ २ ॥

शून्य में जितनी संख्या जोड़ी जाती है उतनी रहती है । शून्य के वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल आदि शून्य ही होता है । किसी संख्या में शून्य के भाग देने से लब्धि अनन्त होती है और उसकी खहर संज्ञा होती है । किसी संख्या को शून्य से गुना करने से गुणनफल शून्य हो जाता है । यदि शेष विधि करना हो तथा शून्य गुणक होने पर पश्चात् शून्य हर (भाजक) भी हो तो फिर उस राशि (शून्य से गुणित संख्या) को ज्यों के त्यों) ही रखना । तथा किसी भी संख्या में शून्य जोड़ने या घटाने पर भी वह संख्या अविकृत ज्यों के त्यों रहती है ।

उदाहरण :— **खं पञ्चयुग्भवति किं वद खस्य वर्गं मूलं घनं घनपदं खगुणाश्च पञ्च ।**
खेनोद्धृता दश च कः खगुणो निजार्धयुक्तस्त्रिभिश्च गुणितः खहृतस्त्रिषष्टिः ॥

जाय तो उस भिन्न संख्या के हर से रूप को गुना करके उसमें भिन्न संख्या के लव को जोड़ या घटा देना चाहिये ।

उदाहरण :— साङ्घ्रिद्वयं त्रयं व्यङ्घ्रि कीदृग्ब्रूहि सवर्णितम् ।

जानास्यंशानुबन्धं चेत् तथा भागापवाहनम् ॥ १ ॥

हे मित्र ! यदि तुम भागानुबन्ध और भागापवाह जानते हो तो २ में $\frac{१}{४}$ जोड़ने से और ३ में $\frac{१}{४}$ घटाने से क्या होगा ? बताओ ॥

उदाहरण :— अङ्घ्रिः स्वत्र्यंशयुक्तः स निजदलयुतः कीदृशः कीदृशौ द्वौ ।

त्र्यंशौ स्वाष्टांशहीनौ तदनु च रहितौ स्वैस्त्रिभिः सप्तभागैः ॥

अर्धं स्वाष्टांशहीनं नवभिरथ युतं सप्तमांशैः स्वकीयैः

कीदृक् स्याद् ब्रूहि वेत्सि त्वमिह यदि सखेंऽशानुबन्धापवाहौ ॥ २ ॥

हे मित्र ! यदि तुम अंशानुबन्ध और अंशापवाह जानते हो तो $\frac{१}{४}$ में अपना $\frac{१}{३}$ जोड़ने से जो हो उसमें फिर अपना (उसी का) $\frac{१}{२}$ जोड़ने से क्या होगा ? । तथा $\frac{२}{३}$ में अपना $\frac{१}{८}$ घटाने से जो हो उसमें फिर अपना $\frac{३}{७}$ घटाने से क्या बचेगा ? । और $\frac{१}{२}$ में अपना $\frac{१}{८}$ घटा कर जो हो उसमें फिर उसी का $\frac{६}{७}$ जोड़ने से क्या होगा ? बताओ ।

अथ भिन्नसंकलित-व्यवकलितयोः करणसूत्रम्—

योगोऽन्तरं तुल्यहरांशकानां कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः ।

जिन संख्याओं में तुल्य हर हों उन्हीं अंशों का योग या अन्तर करना चाहिए । तथा जिस संख्या में हर नहीं हो उसके नीचे १ हर कल्पना करनी चाहिये ।

उदाहरण :— पञ्चांशपादत्रिलवार्धषष्ठानेकीकृतान् ब्रूहि सखे ! ममैतान् ।

एभिश्च भागैरथ वर्जितानां किं स्यात् त्रयाणां कथयाशु शेषम् ॥ १ ॥

हे मित्र $\frac{१}{५}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{६}$ इनका योग बताओ । और उसी योग फल को ३ में घटा कर क्या शेष बचेगा वह भी बताओ ।

अथ भिन्नगुणने करणसूत्रम्—

अंशाहतिश्छेदवधेन भक्ता लब्धं विभिन्ने गुणने फलं स्यात् ॥ ४ ॥

जिन भिन्न संख्याओं के गुणन करना हो उनके अंशों को परस्पर गुना करके उसमें हरों के घात के द्वारा भाग देने से लब्धि भिन्न गुणन फल होता है ॥

उदाहरण :— सत्र्यंशरूपद्वितयेन निघ्नं स-सप्तमांशद्वितयं भवेत् किम् ? ।

अर्धं त्रिभागेन हतं च विद्धि दक्षोऽसि भिन्ने गुणनाविधौ चेत् ॥ १ ॥

हे मित्र ! २ + $\frac{१}{३}$ से २ + $\frac{१}{७}$ को और $\frac{१}{२}$ को $\frac{१}{३}$ से गुणा करने से गुणनफल क्या होगा ? यदि तुम भिन्नगुणन में समर्थ हो तो बताओ ।

श्रथ भिन्नभागहारे करणसूत्रम्—

छेदं लवं च परिवर्त्य हरस्य शेषः कार्योऽथ भागहरणे गुणनाविधिश्च ।

भिन्न संख्या के भाग में भाजक के हर और अंश को परिवर्तन (हर को अंश और अंश को हर बना) कर भाज्य के अंश हर के साथ गुणन क्रिया कर देने से भाग फल होता है ।

उदाहरण :— **सत्र्यंशरूपद्वितयेन पञ्च त्र्यंशेन षष्ठं वद मे विभज्य ।**
दर्भीयगर्भाग्रसुतीक्ष्णबुद्धिश्चेदस्ति ते भिन्नहृतौ समर्था ॥ १ ॥

हे मित्र ! यदि तुम्हारी बुद्धि भिन्न भाग हरण में तीक्ष्ण है तो ५ को २ + $\frac{१}{३}$ से और $\frac{१}{६}$ को $\frac{१}{३}$ से भाग देकर भाग फल क्या होगा ? यह बताओ ।

श्रथ भिन्नवर्गादौ करणसूत्रम्—

वर्गे कृती घनविधौ तु घनौ विधेयौ । हारांशयोरथ पदे च पदप्रसिद्ध्यै ॥ ५ ॥

किसी भिन्न संख्या का वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनों का वर्ग करे, तथा घन करना हो तो दोनों का घन करे, एवं वर्गमूल घनमूल निकालना हो तो दोनों का मूल निकालना चाहिये ।

उदाहरण :— **सार्धत्रयाणां कथयाशु वर्गं वर्गात् ततो वर्गपदं च मित्र ! ।।**
घनं च मूलं च घनात् ततोऽपि जानासि चेद्वर्गघनौ विभिन्नौ ॥ १ ॥

हे मित्र ! यदि तुम भिन्न संख्या के वर्ग और घन क्रिया को जानते हो तो $\frac{७}{२}$ का वर्ग और उस वर्ग का वर्गमूल तथा उसी ($\frac{७}{२}$) का घन और घन का मूल बताओ ।

इति भिन्न परिकर्माष्टकम् ।

श्रथ शून्यपरिकर्मसु करणसूत्रम्

योगे खं क्षेपसमं वर्गादौ खं खभाजितो राशिः ।
खहरः स्यात् खगुणः खं खगुणश्चिन्त्यश्च शेषविधौ ॥ १ ॥
शून्ये गुणके जाते खं हारश्चेत् पुनस्तदा राशिः ।
अविकृत एव ज्ञेयस्तथैव खेनोनितश्च युतः ॥ २ ॥

शून्य में जितनी संख्या जोड़ी जाती है उतनी रहती है । शून्य के वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल आदि शून्य ही होता है । किसी संख्या में शून्य के भाग देने से लब्धि अनन्त होती है और उसकी खहर संज्ञा होती है । किसी संख्या को शून्य से गुना करने से गुणनफल शून्य हो जाता है । यदि शेष विधि करना हो तथा शून्य गुणक होने पर पश्चात् शून्य हर (भाजक) भी हो तो फिर उस राशि (शून्य से गुणित संख्या) को ज्यों के त्यों) ही रखना । तथा किसी भी संख्या में शून्य जोड़ने या घटाने पर भी वह संख्या अविकृत ज्यों के त्यों रहती है ।

उदाहरण :— **खं पञ्चयुग्भवति किं वद खस्य वर्गं मूलं घनं घनपदं खगुणाश्च पञ्च ।**
खेनोद्धृता दश च कः खगुणो निजार्धयुक्तस्त्रिभिश्च गुणितः खहृतस्त्रिषष्टिः ॥

हे मित्र ! शून्य में ५ जोड़ने से क्या होगा ? और शून्य का वर्ग, वर्गमूल, घन, और घनमूल पृथक्-पृथक् बताओ। तथा ५ को शून्य से गुना करने से और १० को शून्य से भाग देने से क्या होगा ? यह भी बताओ। एवं कौन ऐसी संख्या है जिसको शून्य से गुना कर देते है उसमें अपना आधा जोड़ देते हैं, फिर ३ से गुना करके शून्य का भाग देते हैं तो ६३ होता है, उसे भी बताओ ॥

अथ व्यस्तविधौ करणसूत्रम्

छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम् ।
ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद् दृश्ये राशिप्रसिद्धये ॥ १ ॥

अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः ।
अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत् ॥ २ ॥

विलोम विधि से राशि जानने के लिये, दृश्य में हर को गुणक, गुणक को हर, वर्ग को मूल, मूल को वर्ग, ऋण को धन, धन को ऋण बनाकर अन्त से उल्टी क्रिया करने से राशि सिद्ध हो जाती है ॥

उदाहरण :— यस्त्रिघ्नस्त्रिभिरन्वितः स्वचरणैर्भक्तस्ततः सप्तभिः
स्वत्र्यंशेन विवर्जितः स्वगुणितो हीनो द्विपञ्चाशता ।
तन्मूलेऽष्टयुते हृतेऽपि दशभिर्जातं द्वयं ब्रूहि तं
राशिं वेत्सि हि चञ्चलाक्षि ! विमलां बाले ? विलोकक्रियाम् ॥ १ ॥

हे चञ्चलाक्षि ! बाले ! यदि तुम विलोम क्रिया को जानती हो तो जिस राशि को ३ से गुना कर उसमें अपना $\frac{3}{4}$ जोड़ देते हैं फिर ७ का भाग देते हैं पुनः अपना $\frac{1}{3}$ घटा देते हैं फिर उसका वर्ग करते हैं पुनः उसमें ५२ घटा कर मूल लेते हैं, उसमें ८ जोड़ कर १० का भाग देते हैं तो २ लब्धि होती है उस राशि को बताओ ॥ १ ॥

अथेष्टकर्मणि करणसूत्रम्

उद्देशकालापवदिष्टराशिः क्षुण्णो हृतोंऽशै रहितो युतो वा ।
इष्टाहतं दृष्टमनेन भक्तं राशिर्भवेत् प्रोक्तमितीष्टकर्म ॥ १ ॥

प्रश्न में प्रश्नकर्त्ता का जिस प्रकार कथन हो उस प्रकार किसी कल्पित इष्ट राशि को गुणा करना, या भाग देना कोई अंश घटाने को कहा गया हो तो घटाना, जोड़ने को कहा गया हो तो जोड़ देना अर्थात् प्रश्न में जो जो क्रियायें कहीं गई हों वे इष्ट राशि में करके' फिर जो राशि निष्पन्न हो उससे कल्पित इष्ट गुणित दृष्ट को भाग देना जो लब्धि हो वही राशि होती है ।

उदाहरण :— पञ्चघ्नः स्वत्रिभागोनो दशभक्तः समन्वितः ।
राशित्र्यंशार्धपादैः स्यात् को राशिर्द्व्यूनसप्ततिः ॥ १ ॥

वह कौन सी राशि है ? जिसे ५ से गुना करके उसमें उसी का तृतीयांश घटा कर १० के भाग देने से जो लब्धि हो उसमें राशि (प्रश्न सम्बन्धी राशि) के $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{4}$, भाग जोड़ने से ६८ होता है ।

अन्यः प्रश्नः— अमलकमलराशेस्त्र्यंशपञ्चांशषष्ठैस्त्रिनयनहरिसूर्या येन तुर्येण चार्या ।
गुरुपदमथ षड्भिः पूजितं शेषपद्मैः सकलकमलसङ्ख्यां क्षिप्रमाख्याहि तस्य ॥

जिस पुजारी ने निर्मल कमल के समूह में से $\frac{1}{3}$ भाग से शिवजी की, $\frac{1}{5}$ से विष्णू की, $\frac{1}{6}$ से सूर्य की, और $\frac{1}{4}$ से आद्या भगवती की पूजा की, इस प्रकार उसके पास ६ कमल बच गये उनसे उसने अपने गुरु चरणों की पूजा की तो बताओ कि कमल की संख्या कितनी थी ?।

उदाहरण :— स्वार्धं प्रादात् प्रयागे नवलवयुगलं योऽवशेषाच्च काश्यां
शेषाङ्घ्रिं शुल्कहेतोः पथि दशमलवान् षट् च शेषाद् गयायाम्।
शिष्टा निष्कत्रिषष्टिर्निजगृहमनया तीर्थपान्थः प्रयात-
स्तस्य द्रव्यप्रमाणं वद यदि भवता शेषजातिः श्रुताऽस्ति ॥ ३ ॥

किसी तीर्थयात्री ने अपने द्रव्य का आधा ($\frac{1}{2}$) प्रयाग में खर्च किया, फिर शेष का $\frac{2}{9}$ काशी में खर्च किया, फिर बचे हुए का $\frac{1}{4}$ किराये में खर्च किया, शेष का $\frac{6}{10}$ गया में खर्च किया, इस प्रकार खर्च करने पर उसके पास ६३ रुपये बचे वह लेकर घर लौट गया तो बताओ उसके पास आरम्भ में कुल कितने रुपये थे, यदि तुम शेष जाति गणित जानते हो ॥ ३ ॥

अथ शेषलवे शेषजातौ विशेषसूत्रम् (क्षेपकम्)—

"छिद्घातभक्तेन लवोनहारघातेन भाज्यः प्रकटाख्यराशिः ।
राशिर्भवेच्छेषलवे तथेदं विलोमसूत्रादपि सिद्धिमेति ॥"

शेष जाति में यह विशेष सूत्र प्रकार है कि—जितने अंश हर हों उनमें अपने अपने हरों में अंशों को घटाकर शेष के घात में हरों के घात के भाग देकर जो हो उससे इष्ट राशि में भाग देने से लब्धि राशि हो जाती है। अथवा विलोम विधि से भी शेष जाति में राशि समझी जाती है। अर्थात् विलोम विधि से जो निष्पन्न संख्या हो उससे इष्ट गुणित इष्ट में भाग देने से भी राशि हो जाती है।

उदाहरण :— पञ्चांशोऽलिकुलात् कदम्बमगमत् त्र्यंशः शिलीन्ध्रं तयो-
र्विश्लेषस्त्रिगुणो मृगाक्षि ! कुटजं दोलायमानोऽपरः ।
कान्ते ! केतकमालतीपरिमलप्राप्तैककालप्रिया-
दूताहूत इतस्ततो भ्रमति खे भृङ्गोऽलिसङ्ख्यां वद ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! भ्रमर के समूह से $\frac{1}{5}$ कदम्ब पर, $\frac{1}{3}$ शिलीन्ध्र पुष्प पर, इन दोनों के अन्तर त्रिगुणित $\left\{ (\frac{1}{3} - \frac{1}{5}) \times 3 = \frac{2}{5} \right\}$ कुटज पुष्प पर चला गया, हे मृगाक्षि ! इस प्रकार उस समूह से बचा हुआ १ भृङ्ग एक ही समय में केतकी और मालती रूपिणी प्रिया के आए हुए परिमल रूप दूत से आमन्त्रित होकर आकाश में इधर उधर (कभी मालती की ओर कभी केतकी की ओर) भ्रमण करता रहा। तो कुल भ्रमरों की संख्या बताओ।

अथ संक्रमणे करणसूत्रम् —

योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितस्तौ राशी स्मृतं संक्रमणाख्यमेतत् ।

किसी दो संख्या का योग और अन्तर ज्ञात हो तो योग में अन्तर को जोड़ करके, आधा करने से तथा अन्तर को घटाकर आधा करने से क्रमशः दोनों संख्याएँ होती हैं। यह संक्रमण गणित कहलाता है।

उदाहरण :— **ययोर्योगः शतं सैकं वियोगः पञ्चविंशतिः ।**
तौ राशी वद मे वत्स ! वेत्सि संक्रमणं यदि ॥ १ ॥

जिन दो संख्याओं का योग = १०१ और अन्तर २५ है तो दोनों संख्याओं को बताओ ।

वर्गान्तरान्तरज्ञाने राशिज्ञानाय सूत्रम्—

वर्गान्तरं राशिवियोगभक्तं योगस्ततः प्रोक्तवदेव राशी ॥ १ ॥

दो संख्याओं का वर्गान्तर तथा अन्तर ज्ञात हो तो, वर्गान्तर में अन्तर के भाग देने से लब्धि योग होता है, योग जानकर पूर्ववत् दोनों संख्या का ज्ञान करना चाहिए ।

उदाहरण :— **राश्योर्ययोर्वियोगोऽष्टौ तत्कृत्योश्च चतुःशती ।**
विवरं वद तौ राशी शीघ्रं गणितकोविद ! ॥ १ ॥

जिन दो संख्याओं का अन्तर ८ और वर्गान्तर ४०० है उन दोनों संख्याओं को बताओ ।

अथ किञ्चिद्वर्गकर्म प्रोच्यते —

इष्टकृतिरष्टगुणिता व्येका दलिता विभाजितेष्टेन ।
एकः स्यादस्य कृतिर्दलिता सैकाऽपरो राशिः ॥ १ ॥

रूपं द्विगुणेष्टहृतं सेष्टं प्रथमोऽथ वाऽपरो रूपम् ।
कृतियुतिवियुती व्येके वर्गौ स्यातां ययो राश्योः ॥ २ ॥

जिन दो संख्याओं के वर्गयोग तथा वर्गान्तर में भी १ घटाने से शेष वर्गाङ्क ही रहता है, उन दोनों संख्याओं को जानने के लिये कोई भी इष्ट कल्पना करके उसके वर्ग को ८ से गुना कर उसमें १ घटा कर आधा करना फिर उसमें इष्ट के भाग देने से प्रथम संख्या होती है, उस (प्रथम) संख्या के वर्ग के आधे में १ जोड़ने से दूसरी संख्या होती है । अथवा—कोई इष्ट कल्पना करके द्विगुणित उसी इष्ट से १ में भाग देकर लब्धि में इष्ट को जोड़ने से प्रथम संख्या और दूसरी संख्या १ को समझना, जिन दोनों के वर्गयोग और वर्गान्तर में १ घटाने पर भी वर्गाङ्क ही संख्या रहती है ।

उदाहरण :— **राश्योर्ययोः कृतिवियोगयुती निरेके मूलप्रदे प्रवद तौ मम मित्र ! यत्र ।**
क्लिश्यन्ति बीजगणिते पटवोऽपि मूढाः षोढोक्तगूढगणितं परिभावयन्तः ॥१॥

हे मित्र ! जिन दो संख्याओं के वर्गयोग और वर्गान्तर दोनों में १ घटाने पर भी शेष वर्गाङ्क ही रहता है, उन दोनों संख्याओं को बताओ । जिसके जानने में ६ प्रकार के गणित (योग, अन्तर, गुणन, भजन, वर्ग और मूल) के परिशीलन करनेवाले बीजगणित में परम पटु होने पर भी मूढ़ के समान क्लेश पाते हैं ।

अन्यत् सूत्रम् **इष्टस्य वर्गवर्गो घनश्च तावष्टसंगुणौ प्रथमः ।**
सैको राशी स्यातामेवं व्यक्तेऽथ वाऽव्यक्ते ॥ ३ ॥

अथवा—कोई इष्ट कल्पना करके उसका वर्गवर्ग और दूसरे स्थान में घन करै दोनों को ८ से गुणा करै और प्रथम में १ जोड़ै तो ये ही वे दोनों संख्याएँ होंगी जिनके वर्गयोग और वर्गान्तर में १ घटाने पर वर्गाङ्क रहते हैं । इस प्रकार व्यक्त और अव्यक्त दोनों गणित में राशिका ज्ञान होता है ।

एवं सर्वेष्वपि प्रकारेष्विष्टवशादनन्त्यम् ॥

पाटीसूत्रोपमं बीजं गूढमित्यवभासते ।
नास्ति गूढममूढानां नैव षोढेत्यनेकधा ॥ ४ ॥
अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः ।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते ॥ ५ ॥

बीजगणित भी पाटी गणित के समान ही है, किन्तु गूढ़ (कठिन) सा जान पड़ता है। परन्तु बुद्धिमान् के लिये कुछ भी कठिन नहीं है, और ६ ही प्रकार का नहीं, अनेक भेद का है॥ त्रैराशिक हो पाटी (व्यक्तगणित) और निर्मल बुद्धि ही बीज (अव्यक्तगणित) है। अतः सुबुद्धिवालों को कौन सा पदार्थ अज्ञात रह सकता है। मैं तो मन्द बुद्धियों के लिए इस गणित भेद को कहता हूँ॥

इति वर्गकर्म॥

तत्र दृष्टमूलजातौ करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

गुणघ्नमूलोनयुतस्य राशेर्दृष्टस्य युक्तस्य गुणार्धकृत्या ।
मूलं गुणार्धेन युतं विहीनं वर्गीकृतं प्रष्टुरभीष्टराशिः ॥ १ ॥
यदा लवैश्चोनयुतः स राशिरेकेन भागोनयुतेन भक्त्वा ।
दृश्यं तथा मूलगुणं च ताभ्यां साध्यस्ततः प्रोक्तवदेव राशिः॥ २ ॥

कोई राशि अपने इष्टांक गुणित मूल से ऊन या युक्त होकर दृश्य हुई हो तो, मूल गुणक के आधे का वर्ग दृश्य संख्या में जोड़कर मूल लेना। उसमें क्रम से मूल गुणक के आधा जोड़ना और घटाना (अर्थात् इष्ट गुणित मूल से ऊन होकर दृश्य हो वहाँ गुणकार्ध को जोड़ना तथा यदि इष्टगुणित मूल युक्त होकर दृश्य हो तो उक्त मूल में गुणकार्ध घटाना) फिर उसका वर्ग कर लेने से प्रश्नकर्ता की अभीष्टराशि संख्या होती है॥ १ ॥

यदि राशि मूलोन या मूलयुत होकर पुनः अपने किसो भाग से भी ऊन या युत होकर दृश्य बनता हो तो—उस भाग को १ में ऊन या युत कर (यदि भाग ऊन हुआ हो तो ऊन कर यदि युत हुआ हो तो युत कर) पृथक् पृथक् दृश्य और मूल गुणक में भाग देकर फिर इन दृश्य और मूल गुणक पर से प्रथम श्लोक के अनुसार राशि का साधन करना चाहिए॥ २ ॥

उदाहरण :— बाले ! मरालकुलमूलदलानि सप्त तीरे विलासभरमन्थरगाण्यपश्यम् ।
कुर्वच्च केलिकलहं कलहंसयुग्मं शेषं जले वद मरालकुलप्रमाणम् ॥ १ ॥

हे बाले ! किसी हंस समूह के मूल का सप्त गुणित आधा ($\frac{७}{२}$) केलि क्रीड़ा करता हुआ धीरे-धीरे जल से बाहर सरोवर के तट पर पहुँच गया, और उनमें से बचे हुए २ हंस को जल में ही क्रीड़ा करते हुए मैंने देखा तो बताओ हंस समूह की कितनी संख्या थी ?॥ १ ॥

उदाहरण :— स्वपदैर्नवभिर्युक्तः स्याच्चत्वारिंशताधिकम् ।
शतद्वादशकं विद्वन् ! कः स राशिर्निगद्यताम् ॥ २ ॥

हे विद्वन् ! वह कौन राशि है ? जिसमें अपने ९ गुणा मूल जोड़ने से १२४० होता है, बताओ ।

उदाहरण :— यातं हंसकुलस्य मूलदशकं मेघागमे मानसं
प्रोड्डीय स्थलपद्मिनीवनमगादष्टांशकोऽम्भस्तटात् ।
बाले ! बालमृणालशालिनि जले केलिक्रियालालसं
दृष्टं हंसयुगत्रयं च सकलां यूथस्य सङ्ख्यां वद ? ॥ ३ ॥

हे बाले ! किसी हंस समूह से उसके मूल १० गुणित के तुल्य वर्षा ऋतु आने पर मानसरोवर को चला गया, तथा समस्त समूह के $\frac{1}{8}$ भाग जल के किनारे से उड़ कर स्थल कमलिनी पर चला गया, शेष तीन जोड़ी (६) हंस कोमल कमलनालों से शोभित जल में केलि की लालसा से जल में रह गये तो कुल हंस समूह की संख्या बताओ ? ।

उदाहरण :— पार्थः कर्णवधाय मार्गणगणं क्रुद्धो रणे संदधे
तस्यार्धेन निवार्य तच्छरगणं मूलैश्चतुर्भिर्हयान् ।
शल्यं षड्भिरथेषुभिस्त्रिभिरपिच्छत्रं ध्वजं कार्मुकं
चिच्छेदास्य शिरः शरेण कति ते यानर्जुनः संदधे ॥ ४ ॥

रण में क्रुद्ध होकर अर्जुन ने कर्ण को मारने के लिये कुछ शरों को उठाकर उसके आधे से तो कर्ण के फेंके हुए बाणों का निवारण किया और समस्त शरसंख्या के ४ गुणित मूल से कर्ण के घोड़े को मार गिराया, तब उसके पास १० शर बच गये उनमें से ६ से उसके सारथी को, ३ से कर्ण के छत्र, ध्वजा और धनुष को तथा १ से उसके शिर को काट गिराया तो बताओ कि वे शर कितने थे, जिनको अर्जुन ग्रहण किया ? ॥

उदाहरण :— अलिकुलदलमूलं मालतीं यातमष्टौ
निखिलनवमभागाश्चालिनी भृङ्गमेकम् ।
निशि परिमललुब्धं पद्ममध्ये निरुद्धं
प्रति रणति रणन्तं ब्रूहि कान्तेऽलिसङ्ख्याम् ॥ ५ ॥

हे कान्ते ! किसी भ्रमर समूह से उसके आधे के मूल्य तुल्य और समस्त भ्रमर संख्या का $\frac{8}{9}$ भाग मालती पुष्प पर चला गया उसमें से १ भ्रमर सुगन्ध के लोभ वश रात्रि में कमलकोश में बन्द होकर गूँज रहा था और दूसरी १ भ्रमरी भी बाहर में गूँज रही थी तो बताओ कुल भ्रमर संख्या कितनी थी ? ॥ ५ ॥

उदाहरण :— यो राशिरष्टादशभिः स्वमूलै राशित्रिभागेन समन्वितश्च ।
जातं शतद्वादशकं तमाशु जानीहि पाट्यां पटुताऽस्ति ते चेत् ॥ ६ ॥

जो राशि अपने १८ गुणित मूल तथा अपने $\frac{1}{3}$ भाग से युक्त होने पर १२०० होती है वह राशि कौन है ? अगर तुम्हें पाटी गणित में पटुता प्राप्त है तो शीघ्र बताओ ।

अथ त्रैराशिके करणसूत्रं वृत्तम्—

प्रमाणमिच्छा च समानजाती आद्यन्तयोस्तत्फलमन्यजाति ।
मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत् स्यादिच्छाफलं व्यस्तविधिर्विलोमे ॥

(प्रमाण, प्रमाण फल और इच्छा इन तीन राशियों को जान कर इच्छाफल जानने की क्रिया को त्रैराशिक कहते हैं) प्रमाण और इच्छा ये दोनों एक जाति होती है अतः इन दोनों को आदि और अन्त में रखना, तथा प्रमाण फल भिन्न जाति का होता है उसको बीच में रखना । उस (प्रमाण) को इच्छा से गुना करके प्रमाण के भाग देने से लब्धि इच्छाफल होता है ॥ १ ॥

उदाहरण :— कुङ्कुमस्य सदलं पदलयं निष्कसप्तमलवैस्त्रिभिर्यदि ।
प्राप्यते सपदि मे वणिग्वर ! ब्रूहि निष्कनवकेन तत् कियत् ? ॥ १ ॥

हे वणिग्वर ! यदि $\frac{3}{7}$ निष्क में $\frac{5}{2}$ पल कुङ्कुम मिलते हैं तो ९ निष्क में कितने पल होंगे ? शीघ्र बताओ ।

उदाहरण :— प्रकृष्टकर्पूरपलत्रिषष्टया चेल्लभ्यते निष्कचतुष्कतुक्तम् ।
शतं तदा द्वादशभिः सपादैः पलैः किमाचक्ष्व सखे ! विचिन्त्य ॥ २ ॥

हे मित्र ! यदि ६३ पल कर्पूर के १०४ निष्क मिलते हैं, १२ + $\frac{1}{4}$ सवा बारह पल के कितने होंगे ?

उदाहरण :— द्रम्मद्वयेन साष्टांशा शालितण्डुलखारिका ।
लभ्या चेत् पणसप्तत्या तत् किं सपदि कथ्यताम् ? ॥ ३ ॥

अथ व्यस्तत्रैराशिकम्— इच्छावृद्धौ फले ह्रासो ह्रासे वृद्धिः फलस्य तु ।
व्यस्त त्रैराशिकं तत्र ज्ञेयं गणितकोविदैः ॥ २ ॥

(ऊपर क्रम त्रैराशिक में इच्छा की वृद्धि में फल की वृद्धि, और इच्छा के ह्रास में फल का ह्रास होता है) जहाँ इच्छा की वृद्धि में फल का ह्रास और इच्छा के ह्रास में फल की वृद्धि हो वहाँ व्यस्त त्रैराशिक होता है अर्थात् वहाँ प्रमाण फल को प्रमाण से गुना करके इच्छा के भाग देने से इच्छा फल होता है ॥ २ ॥

तद्यथा— जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हैमने ।
भागहारे च राशीनां व्यस्तं त्रैराशिकं भवेत् ॥ ३ ॥

जन्तुओं के वयस के मूल्य में तथा उत्तम के साथ अधम मोल वाले सोने के तौल में, किसी संख्या में भिन्न-भिन्न भाजक से भाग देने में व्यस्त त्रैराशिक होता है ॥

उदाहरण :— प्राप्नोति चेत् षोडशवत्सरा स्त्री द्वात्रिंशतं विंशतिवत्सरा किम् ? ।
द्विधुर्वहो निष्कचतुष्कमुक्षाः प्राप्नोति धू षट्कवहस्तदा किम् ? ॥ ४ ॥

यदि १६ वर्षवाली स्त्री का मूल्य ३२ रु० है तो २० वर्ष वयसवाली का मूल्य क्या होगा ?

उदाहरण :— दशवर्णं सुवर्णं चेद् गद्याणकमवाप्यते ।
निष्केण त्रिथिवर्णं तु तदा वद कियन्मितम् ? ॥

१ निष्क में यदि १० रुपये भरी विकनेवाला सोना १ गद्याणक भर मिलता है तो १५ रुपये भरी वाला सोना कितना मिलेगा ?

उदाहरण :— सप्ताढकेन मानेन राशौ शस्यस्य मापिते ।
यदि मानशतं जातं तदा पञ्चाढकेन किम् ? ॥ ३ ॥

किसी अन्न की ढेरी को यदि ७ आढ़क के मान से मापते हैं तो १०० मान होते हैं । तो ५ आढ़क के मान से मापने में कितने होंगे ?

अथ पञ्चराशिकादौ करणसूत्रं वृत्तम्—

पञ्चसप्तनवराशिकादिकेऽन्योन्यपक्षनयनं फलच्छिदाम् ।
संविधाय बहुराशिजे वधे स्वल्पराशिवधभाजिते फलम् ॥ १ ॥

पञ्चराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक आदि (एकादश त्रयोदशराशिक प्रभृति) में फल और हरों (भिन्न संख्या में छन्दों) को परस्पर पक्ष में परिवर्तन (प्रमाणपक्षवाले को इच्छा पक्ष में और इच्छा पक्ष वाले को प्रमाण पक्ष में रख) कर अधिक राशियों के घात में, अल्प राशि के घात से भाग देने पर लब्धि इच्छा फल होता है ।

उदाहरण :— मासे शतस्य यदि पञ्च कलान्तरं स्याद्
वर्षे गते भवति किं वद षोडशानाम् ।
कालं तथा कथय मूलकलान्तराभ्यां
मूलं धनं गणक ! कालफले विदित्वा ॥ १ ॥

हे गणक ! यदि १ महीने में १०० का ५ रुपये सूद (ब्याज) होते हैं तो १२ महीने में १६ रुपये के कितने होंगे ? बताओं । और मूल धन तथा कलान्तर (सूद) जान कर काल बताओ । एवं काल और सूद जान कर मूल धन बताओ ।

उदाहरण :— सत्र्यंशमासेन शतस्य चेत् स्यात् कलान्तरं पञ्च सपञ्चमांशाः ।
मासैस्त्रिभिः पञ्चलवाधिकैस्तत् सार्धद्विषष्टेः फलमुच्यतां किम् ? ॥ २ ॥

४/३ मास में यदि १०० के २६/५ सूद होता है तो १६/५ मास में १२५/२ का कितना सूद होगा ?

उदाहरण :— विस्तारे त्रिकराः कराष्टकमिता दैर्घ्ये विचित्राश्च चे-
द्रूपैरुत्कटपट्टसूत्रपटिका अष्टौ लभन्ते शतम् ।
दैर्घ्ये सार्धकरत्रयाऽपरपटी हस्तार्धविस्तारिणी,
तादृक् किं लभते द्रुतं वद वणिग् ! वाणिज्यकं वेत्सि चेत् ॥ ३ ॥

हे वणिक् ! यदि तुम वाणिज्य जानते हो तो-जो विस्तार में ३ हाथ लम्बाई में ८ हाथ ऐसी सपटे की ८ पटिये का १०० निष्क मिलते हैं तो जिस की लम्बाई ७/२ हाथ, चौड़ाई १/२ है । ऐसी १ पटिये का क्या होगा ?

उदाहरण :— पिण्डे येऽर्कमिताङ्गुलाः किल चतुर्वर्गाङ्गुला विस्तृतौ,
पट्टा दीर्घतया चतुर्दशकरास्त्रिशल्लभन्ते शतम् ।

एता विस्तृतिपिण्डदैर्घ्यमितयो येषां चतुर्वर्जिता:,
पट्टास्ते वद मे चतुर्दश सखे! मूल्यं लभन्ते कियत्? ।। ४ ।।

जिसकी मोटाई (ऊँचाई) १२ अङ्गुल, चौड़ाई १६ अं, और लम्बाई १४ हाथ है, इस प्रकार के ३० पट्टे का मूल्य यदि १०० निष्क हैं, तो जिसके मोटाई ८ अं० चौड़ाई १२ अं० लम्बाई १० हाथ है ऐसे १४ पट्टे का मूल्य क्या होगा ?

उदाहरण :— पट्टा ये प्रथमोदितप्रमितयो गव्यूतिमात्रे स्थिता-
स्तेषामानयनाय चेच्छकटिनां द्रम्माष्टकं भाटकम् ।
अन्ये ये तदनन्तरं निगदिता माने चतुर्वर्जिता-
स्तेषां का भवतीति भाटकमितिर्गव्यूतिषट्के वद ।। ५ ।।

पूर्व प्रश्न में पहिले कहे हुए पट्टे को १ गव्यूति से लाने में यदि गाड़ीवान को ८ द्रम्म भारा दिया जाता है तो उसके बाद मान में ४ घटाकर कहे हुए पट्टे को ६ गव्यूति से लाने में क्या भारा होगा ? यह बताओ ।।

अथ भाण्डप्रतिभाण्डके करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

तथैव भाण्डप्रतिभाण्डकेऽपि विपर्ययस्तत्र सदा हि मूल्ये ।

विभिन्न मूल्य की वस्तुओं के विनिमय (बदले) में भी इसी प्रकार (फल और हरों को अन्योऽन्य पक्ष नयन करके) क्रिया होता है किन्तु वहाँ मूल्य में भी परिवर्तन होता है ।

उदाहरण :—द्रम्मेण लभ्यत इहाम्रशतत्रयं चेत् त्रिंशत् पणेन विपणौ वरदाडिमानि ।
आम्रैर्वदाशु दशभिः कति दाडिमानि लभ्यानि तद्विनिमयेन भवन्ति मित्र ? ।।१।।

हे मित्र ! १ द्रम्म (१६ पण) में ३०० आम और १ पण में ३० दाड़िम मिलते हैं तो १० आम के बदले कितने दाड़िम मिलेंगे ? बताओ ।

अथ मिश्रकव्यवहारे करणसूत्रं सार्धवृत्तम्—

प्रमाणकालेन हतं प्रमाणं विमिश्रकालेन हतं फलं च ।। १ ।।
स्वयोगभक्ते च पृथक् स्थिते ते मिश्राहते मूलकलान्तरे स्तः ।
यद्वेष्टकर्माख्यविधेस्तु मूलं मिश्राच्च्युतं तच्च कलान्तरं स्यात् ।। २ ।।

प्रमाण काल से प्रमाण धन को और मिश्रकाल से प्रमाण फल को गुना करके दोनों गुणनफल को पृथक् रखना, फिर दोनों को पृथक्-पृथक् मिश्र धन से गुना करके उन उक्त दोनों गुणनफल के योग से ही भाग देने से लब्धि क्रम से मूलधन और कलान्तर (सूद) होते हैं। अथवा मिश्रधन को इष्ट मान कर इष्ट कर्म ("उद्देशकालापवदिष्टराशिः" इत्यादि) से मूल धन का ज्ञान करे उसको मिश्रधन में घटाने से कलान्तर समझना ।। १–२ ।।

उदाहरण :— पञ्चकेन शतेनाब्दे मूलं स्वं सकलान्तरम् ।
सहस्रं चेत् पृथक् तत्र वद मूलकलान्तरे ।। १ ।।

१ मास में १०० के ५ रुपये सूद के हिसाब से यदि १२ मास में मूलधन सहित सूद १००० रुपये हुए तो अलग अलग मूल धन और सूद की सख्या बताओ ।

मिश्रान्तरे करणसूत्रम्—

अथ प्रमाणैर्गुणिताः स्वकाला व्यतीतकालघ्नफलोद्धृतास्ते ।
स्वयोगभक्ताश्च विमिश्रनिघ्नाः प्रयुक्तखण्डानि पृथग् भवन्ति ।। ३ ।।

अपने-अपने प्रमाण घन से अपने-अपने काल को गुना करना उनमें स्वस्वव्यतीतकाल और फल के घात से भाग देना, लब्धि को पृथक् रहने देना, उनमें उन्हीं के योग का भाग देना, तथा सब को मिश्रधन से गुना कर देने से क्रमशः प्रयुक्तखण्ड के प्रमाण होते हैं ।

उदाहरणः—

यत् पञ्चकत्रिकचतुष्कशतेन दत्तं
खण्डैस्त्रिभिर्गणक निष्कशतं षडूनम् ।
मासेषु सप्तदशपञ्चसु तुल्यमाप्तं
खण्डत्रयेऽपि हि फलं वद खण्डसङ्ख्याम् ।। १ ।।

हे गणक ! किसी ने अपने ९४ निष्क मूलधन के तीन खण्ड करके एक खण्ड को माहवारी ५ रुपये सैकड़े सूद, दूसरे खण्ड को ३ रुपये और तीसरे खण्ड को ४ रुपये सैकड़े सूद पर प्रयुक्त किया । क्रम से तीनों खण्ड में ७, १० और ५ मास में तुल्य सूद मिले तो तीनों खण्ड की संख्या अलग अलग बताओ ।

अथ मिश्रान्तरे करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

प्रक्षेपका मिश्रहता विभक्ताः प्रक्षेपयोगेन पृथक् फलानि ।

प्रक्षेपकों को पृथक्-पृथक् मिश्रधन से गुना कर उनमें प्रक्षेपकों के योग से भाग देने से पृथक्-पृथक् फल होते हैं ।

उदाहरणः—

पञ्चाशदेकसहिता गणकाष्टषष्टिः
पञ्चोनिता नवतिरादिधनानि येषाम् ।
प्राप्ता विमिश्रितधनैस्त्रिशती त्रिभिस्तै-
र्वाणिज्यतो वद विभज्य धनानि तेषाम् ।। १ ।।

हे गणक ! जिन तीन व्यापारियों के पास से ५१, ६८, ८५ आरम्भ में मूल धन थे, उन तीनों ने मिलकर व्यापार से ३००) तीन सौ रुपये प्राप्त किये तो उन तीनों को कितने-कितने होंगे ? विभाग करके बताओ ।

वाप्यादिपूरणे करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

भजेच्छिदोंऽशैरथ तैर्विमिश्रै रूपं भजेत् स्यात् पूरिपूर्त्तिकालः ।। ४ ।।

अपने-अपने अंशों से हर भाग में भाग देना फिर उन सबों के योग से १ में भाग देने से लब्धि पूर्ति समय होता है ।

उदाहरणः— ये निर्झरा दिनदिनार्धतृतीयषष्ठैः संपूरयन्ति हि पृथक् पृथगेवमुक्ताः ।
वापीं यदा युगपदेव सखे ! विमुक्तास्ते केन वासरलवेन तदा वदाशु ।।१।।

एक झरना किसी बावली को १ दिन में, दूसरा ½ दिन में, तीसरा ⅓ दिन में और चौथा ⅙ दिन में पृथक्-पृथक् पूरा कर देता है तो यदि चारो एक ही साथ खोल दियें जाँय तो दिन के कितने भाग में बावली को भरेंगें ? हे मित्र ! शीघ्र बताओ ।

अथ क्रयविक्रये करणसूत्रं वृत्तम्—

पण्यैः स्वमूल्यानि भजेत् स्वभागैर्हत्वा तदैक्येन भजेच्च तानि ।
भागांश्च मिश्रेण धनेन हत्वा मौल्यानि पण्यानि यथाक्रमं स्युः ॥ ५ ॥

अपने अपने मूल्य का अपने अपने भाग से गुणा करके अपने अपने पण्य से भाग देना, उन सबों को अलग अलग उन्हीं के योग से भाग देना और सब को मिश्र धन से गुना करने से पृथक् पृथक् मूल्य होते हैं, तथा भागों को अलग अलग मिश्रधन से गुना कर पूर्वोक्त योग से ही भाग देने से पण्य के प्रमाण होते हैं ।

उदाहरण :— साधँ तण्डुलमानकत्रयमहो द्रम्मेण मानाष्टकं
मुद्गानां च यदि त्रयोदशमिता एता वणिक् काकिणीः ।
आदायार्पय तण्डुलांशयुगलं मुद्गैकभागान्वितं
क्षिप्रं क्षिप्रभुजो व्रजेम हि यतः सार्थोऽग्रतो यास्यति ॥ १ ॥

हे वणिक् ! १ द्रम्म में ७/२ मान चावल और ८ मान मूँग मिलते हैं तो ये १३ काकिणी (अर्थात् १३/६४ द्रम्म) लेकर २ भाग चावल और १ भाग मूँग दो मैं शीघ्र भोजन कर जाऊँगा क्योंकि साथी आगे बढ़ जायँगे ।

उदाहरण :— कर्पूरस्य वरस्य निष्कयुगलेनैकं पलं प्राप्यते
वैश्यानन्दन ! चन्दनस्य च पलं द्रम्माष्टभागेन चेत् ।
अष्टांशेन तथाऽगुरोः पलदलं निष्केण मे देहि तान्
भागैरेककषोडशाष्टकमितं धूपं चिकीर्षाम्यहम् ॥ २ ॥

हे वैश्यानन्दन ! यदि २ निष्क अर्थात् ३२ द्रम्म में १ पल कर्पूर, १/८ द्रम्म में १ पल चन्दन, १/८ द्रम्म में १/२ पल अगरु मिलते हैं तो १ निष्क के ये तीनों चीज क्रम से १, १६, ८ भाग मुझे दो मैं धूप करना चाहता हूँ ॥

रत्नमिश्रे करणसूत्रं वृत्तम्—

नरघ्नदानोनितरत्नशेषैरिष्टे हृते स्युः खलु मौल्यसङ्ख्याः ।
शेषैर्हृते शेषवधे पृथक्स्थैरभिन्नमूल्यान्यथवा भवन्ति ॥ ६ ॥

मनुष्य संख्या और रघ्न संख्या के घात को पृथक् पृथक् रत्नों में घटाने से जो शेष बचे उन से पृथक् पृथक किसी इष्ट एक संख्या में भाग देने से रत्नों की मूल्य संख्या होती हैं । अथवा रत्नशेष के घात को इष्ट मान कर उस में शेषों के भाग दिया जाय तो मूल्य की संख्या अभिन्न होती है ।

उदाहरण :— माणिक्याष्टकमिन्द्रनीलदशकं मुक्ताफलानां शतं
सद्वज्राणि च पञ्च रत्नवणिजां येषां चतुर्णां धनम् ।
सङ्गस्नेहवशेन ते निजधनाद्दत्त्वैकमेकं मिथो
जातास्तुल्यधनाः पृथग् वद सखे ! तद्रत्नमौल्यानि मे ॥ १ ॥

चार रत्न व्यापारियों में १ के पास ८ माणिक, दूसरे के पास १० नीलम, तीसरे के पास १०० मोती और चौथे के पास ५ हीरा थे । ये चारों एक साथ रहने के कारण परस्पर स्नेह वश अपने अपने

रत्नों में से एक, एक रत्न दूसरों को दे दिये। इस प्रकार रत्नों को वेचने पर सब के पास तुल्य धन हो गये। तो रत्नों के मूल्य अलग अलग बताओ ॥ १ ॥

अथ सुवर्णगणिते करणसूत्रं वृत्तम्—

सुवर्णवर्णाहतियोगराशौ स्वर्णैक्यभक्ते कनकैक्यवर्णः।
वर्णो भवेच्छोधितहेमभक्ते वर्णोद्धृते शोधितहेमसङ्ख्या ॥ ७ ॥

सुवर्णमानों की संख्या को अपने अपने वर्ण संख्या से पृथक् पृथक् गुना करके सब का योग करना उसमें सुवर्णमानों के योग से भाग देने से लब्धि योग वर्ण की संख्या होती है।

उदाहरणः—विश्वार्करुद्रदशवर्णसुवर्णमाषा दिग्वेदलोचनयुगप्रमिताः क्रमेण।
आवर्त्तितेषु वद तेषु सुवर्णवर्णस्तूर्णं सुवर्णगणितज्ञ वणिग् भवेत् कः॥
ते शोधनेन यदि विंशतिरुक्तमाषाःस्युः षोडशासु वद वर्णमितिस्तदा का।
चेच्छोधितं भवति षोडशवर्णहेम ते विंशतिः कति भवन्ति तदा तु माषाः ॥ १ ॥

हे सुवर्ण गणितज्ञ वणिक्! १३, १२,११ और १० इतने वर्ण के ४ प्रकार के सुवर्ण क्रम से १०, ४, २, ४ मासे हैं। इन सबों को आग में तपा कर मिला देने से कितने वर्ण का सुवर्ण होगा? यदि तपा कर मिलाने से उक्त २० मासे सुवर्ण घट कर १६ मासे रह जाय तो उसका वर्णमान क्या होगा? ॥

अथ वर्णज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तम्—

स्वर्णैक्यनिघ्नाद्युतिजातवर्णात् सुवर्णतद्वर्णवधैक्यहीनात्।
अज्ञातवर्णाग्निजसंख्ययाऽऽप्तमज्ञातवर्णस्य भवेत् प्रमाणम् ॥ ८ ॥

यदि अनेक प्रकार के सुवर्ण मिलाने पर युतिवर्ण ज्ञात हो, तथा किसी एक प्रकार के सुवर्ण का वर्ण अज्ञात हो तो युति जात वर्ण को सुवर्णों के योग से गुण करके उस (गुणन फल) में ज्ञात सुवर्ण और उनके वर्ण के घात योग को घटाना, शेष में अज्ञात वर्ग वाले सुवर्ण की संख्या से भाग देने से लब्धि अज्ञात वर्ग की संख्या होती है ॥ ८ ॥

उदाहरण :— दशेशवर्णा वसुनेत्रमाषा अज्ञातवर्णस्य षडेतदैक्ये।
जातं सखे? द्वादशकं सुवर्णमज्ञातवर्णस्य वद प्रमाणम् ॥ १ ॥

यदि १० और ११ वर्ण वाले सुवर्ण क्रम से ८ और २ मासे हैं तथा अज्ञात वर्ण वाले सुवर्ण ६ मासे है इन तीनों को मिलाने से यदि युतिवर्ण १२ हुआ तो अज्ञात वर्ण का प्रमाण बताओ ॥ १ ॥

सुवर्णज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तम् –

स्वर्णैक्यनिघ्नो युतिजातवर्णः स्वर्णघ्नवर्णैक्यवियोजितश्च।
अहेमवर्णाग्निजयोगवर्णविश्लेषभक्तोऽविदिताग्निजं स्यात् ॥ ९ ॥

यदि युतिजातवर्ण ज्ञात हो तथा ज्ञातवर्णों के सुवर्ण में किसी सुवर्ण संख्या का मान अज्ञात हो तो युति जातवर्ण को सुवर्णों के योग से गुना करना उस (गुणन फल) में ज्ञात सुवर्ण और उनके वर्ण के घात योग घटाना, शेष में अज्ञात सुवर्ण की वर्ण संख्या और युति वर्ण के अन्तर से भाग देने से लब्धि अज्ञात सुवर्ण की संख्या होती है।

उदाहरण :— दशेन्द्रवर्णा गुणचन्द्रमाषाः किञ्चित् तथा षोडशकस्य तेषाम् ।
जातं युतौ द्वादशकं सुवर्णं कतीह ते षोडशवर्णमाषाः ॥ १ ॥

यदि १० और १४ वर्णवाले सुवर्ण क्रमशः ३, १ मासे हैं, इनमें १६ वर्णवाले सुवर्ण कुछ मिला दिये गये तो युतिजातवर्ण १२ हुआ तो बताओं कि १६ वर्णवाले सुवर्ण कितने मासे थे ?।

सुवर्णज्ञानायान्यत् करणसूत्रं वृत्तम्—

साध्येनोनोऽनल्पवर्णो विधेयः साध्यो वर्णः स्वल्पवर्णोनितश्च ।
इष्टक्षुण्णे शेषके स्वर्णमाने स्यातां स्वल्पानल्पयोर्वर्णयोस्ते ॥ १० ॥

यदि सुवर्ण की वर्णसंख्या, और युतिजातवर्ण संख्या ज्ञात हों तथा सुवर्णों के मान अज्ञात हों तो अधिक वर्ण संख्या में साध्य (युतिजात) वर्ण को घटाना, और साध्यवर्ण में अल्पवर्ण को घटाना दोनों शेष को किसी तुल्य इष्टसंख्या से गुना कर देने से क्रमशः अल्प और अधिकवर्ण की सुवर्ण संख्या होती है। अर्थात् प्रथमशेष स्वल्पवर्ण का सुवर्ण, और द्वितीयशेष अधिकवर्ण का सुवर्ण समझना। अनेक प्रकार के इष्ट से दोनों शेष को गुना करने से अनेक प्रकार के सुवर्णमान हो सकते हैं ॥

उदाहरण :— हाटकगुटिके षोडशदशवर्णे तद्युतौ सखे ? जातम् ।
द्वादशवर्णसुवर्णं ब्रूहि तयोः स्वर्णमाने मे ॥ १ ॥

१६ और १० वर्णवाले सुवर्ण की २ गुटिका को मिलाने से यदि १२ वर्ण का सुवर्ण हुआ तो बताओ दोनों सुवर्ण कितने मासे थे ?।

अथ छन्दश्चित्यादौ करणसूत्रं श्लोकत्रयम्—

एकाद्येकोत्तरा अङ्का व्यस्ता भाज्याः क्रमस्थितैः ।
परः पूर्वेण संगुण्यस्तत्परस्तेन तेन च ॥ ११ ॥
एकद्वित्र्यादिभेदाः स्युरिदं साधारणं स्मृतम् ।
छन्दश्चित्युत्तरे छन्दस्युपयोगोऽस्य तद्विदाम् ॥ १२ ॥
मूषावहनभेदादौ खण्डमेरौ च शिल्पके ।
वैद्यके रसभेदीये तन्नोक्तं विस्तृतेर्भयात् ॥ १३ ॥

परस्पर सम्मिश्रण से एकादि संख्या के भेद समझने के लिये संख्यापर्यन्त १ आदि से १ बढ़ाकर उत्क्रम से लिखना। उनमें क्रम से १ आदि संख्याओं का भाग देना, (पूर्व अङ्क १ संख्या के भेद समझना) पूर्व (भेद) से अग्रिम को गुना करना, फिर अग्रिम से उसके आगे को गुना करना, फिर उससे उसके अग्रिम को क्रम से गुना कर देना। इस प्रकार क्रम से १ आदि संख्याओं के भेद होते हैं। यह सामान्य नियम हैं। छन्दःशास्त्र में छन्द के एकादि लघु वा एकादि गुरु जानने में, मूषावहन के भेद जानने में, खण्डमेरु में, शिल्प शास्त्र में, वैद्यकशास्त्र में, रसों के भेद समझने में इस गणित का उपयोग होता है। जो विस्तारभय से यहाँ सब नहीं कहा गया है ॥

उदाहरण :— प्रस्तारे मित्र ! गायत्र्याः स्युः पादे व्यक्तयः कति ।
एकादिगुरवश्चाशु कति कत्युच्यतां पृथक् ॥ १ ॥

हे मित्र ! गायत्री (षडक्षर चरण) छन्द के सब भेद कितने होंगे ? और एकादि गुरु की संख्या कितनी कितनी होंगी ? यह बताओ ।

उदाहरण :— एकद्वित्र्यादिमूषावहनमितिमहो ! ब्रूहि मे भूमिभर्त्तु-
हर्म्ये रम्येऽष्टमूषे चतुरविरचिते श्लक्ष्णशालाविशाले ।
एकद्वित्र्यादियुक्त्या मधुरकटुकषायाम्लकक्षारतिक्तै-
रेकस्मिन् षड्रसः स्युर्गणक कति वद व्यञ्जने व्यक्तिभेदाः ॥ २ ॥

हे गणक ! किसी चतुर कारीगर द्वारा बनाये हुए राजा के ८ झरोखे वाले सुन्दर भवन में यदि १, २, ३ आदि झरोखे (गवाक्ष) खोले जाँय तो उनके कितने भेद हो सकते हैं । तथा एक ही तरकारी में मधुर, कटु, कषाय, अम्ल, लवण और तिक्त इन ६ रसो में से १,२,३ आदि रसों को मिलाने से कितने प्रकार के स्वाद होंगे ? बताओ ॥ २ ॥

अथ श्रेढीव्यवहारः ।

तत्र सङ्कलिते सङ्कलितैक्ये च करणसूत्रं वृत्तम्—

सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या ।
सा द्वियुतेन पदेन विनिघ्नी स्यात् त्रिहृता खलु सङ्कलितैक्यम् ॥ १ ॥

एकादि जितनी संख्या तक का योग समझना हो उसे पद कहते हैं, पद में १ जोड़ कर उसे गुना करके आधा करने से एकादि अङ्कों का योग होता है । उसे सङ्कलित भी कहते हैं । उस (सङ्कलित) को द्वियुत पद से गुना करके ३ से भाग देने से एकादि अङ्कों के सङ्कलितों का योग होता है ॥ १ ॥

उदाहरण :— एकादीनां नवान्तानां पृथक् सङ्कलितानि मे ।
तेषां सङ्कलितैक्यानि प्रचक्ष्व गणक ! द्रुतम् ॥ १ ॥

हे गणक ! १ से ९ तक सब अङ्कों के पृथक् पृथक् संकलित बताओं । तथा उन्हीं अङ्कों के पृथक् पृथक् सङ्कलितैक्य भी बताओ ॥ २ ॥

एकादीनां वर्गादियोगे करणसूत्रं वृत्तम्—

द्विघ्नपदं कुयुतं त्रिविभक्तं सङ्कलितेन हतं कृतियोगः ।
सङ्कलितस्य कृतेः सममेकाद्यङ्कघनैक्यमुदीरितमाद्यैः ॥ २ ॥

पद को २ से गुना कर १ जोड़ देना उसे पद तक के संकलित से गुना कर ३ के भाग देने से एकादि पदपर्यन्त अङ्कों का वर्गयोग हो जाता है । तथा पदपर्यन्त संकलित के वर्गतुल्य एकादि पदपर्यन्त अङ्कों का घन योग होता है ॥ २ ॥

उदाहरण :— तेषामेव च वर्गैक्यं घनैक्यं च वद द्रुतम् ।
कृतिसङ्कलनामार्गे कुशला यदि ते मतिः ॥ १ ॥

उन्हीं (१ से ९ अङ्क तक) का पृथक् वर्गयोग, और उन्हीं का एकादि घन योग बताओ, यदि वर्गयोग घनयोग करने में तुम्हारी बुद्धि कुशल है ।

यथोत्तरचयेऽन्त्यादिधनज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तम्—

व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् स्यादन्त्यधनं मुखयुग्दलितं तत् ।
मध्यधनं पदसंगुणितं तत् सर्वधनं गणितं च तदुक्तम् ॥ ३ ॥

पद में १ घटाकर शेष को चय से गुना करके उसमें आदि संख्या को जोड़ने से अन्त्यधन (अन्तिम अङ्क) होता है । उस (अन्त्यधन) में आदि जोड़कर आधा करने से मध्यधन होता है । उस (मध्यधन) को पद से गुना करने से सर्वधन होता है । उसी को गणित भी कहते हैं ।

उदाहरण :— **आद्ये दिने द्रम्मचतुष्टयं यो दत्वा द्विजेभ्योऽनुदिनं प्रवृत्तः ।**
दातुं सखे पञ्चचयेन पक्षे द्रम्मा वद द्राक् कति तेन दत्ताः ॥ १ ॥

जो दाता—किसी ब्राह्मण को प्रथम दिन ४ द्रम्म देकर, प्रति दिन ५ बढ़ाकर देता रहा तो हे मित्र बताओ कि उसने १५ दिन में कुल कितने द्रम्म का दान किया ? ।

उदाहरण :— **आदिः सप्त चयः पञ्च गच्छोऽष्टौ यत्र तत्र मे ।**
मध्यान्त्यधनसंख्ये के वद सर्वधनं च किम् ॥ २ ॥

जहाँ आदि ७ । चय = ५, और पद = ८ है, वहाँ मध्यधन, अन्त्यधन और सर्वधन क्या होगा ? बताओ ।

मुखज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तम्—

गच्छहृते गणिते वदनं स्याद् व्येकपदघ्नचयार्धविहीने ।

सर्वधन में पद से भाग देकर लब्धि में एकोनपद से गुने हुए चय का आधा घटाने से शेष आदिधन होता है ।

उदाहरण :— **पञ्चाधिकं शतं श्रेढीफलं सप्त पदं किल ।**
चयं त्रयं वयं विद्मो वदनं वद नन्दन ॥ १ ॥

हे नन्दन ! जहाँ १०५ सर्वधन और पद= ७ तथा चय = ३ है वहाँ आदिधन क्या होगा ? बताओ ।

चयज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तम्—

गच्छहृतं धनमादिविहीनं व्येकपदार्धहृतं च चयः स्यात् ॥ ४ ॥

सर्वधन में पद के भाग देकर लब्धि में आदि को घटा कर शेष में एकोनपद के आधे का भाग देने से लब्धि चय होता है।

उदाहरण :— **प्रथममगमदह्ना योजने यो जनेश-**
स्तदनु ननु कयाऽसौ ब्रूहि यातोऽध्ववृद्ध्या ।
अरिकरिहरणार्थं योजनानामशीत्या
रिपुनगरमवाप्तः सप्तरात्रेण धीमन् ! ॥ १ ॥

हे बुद्धिमन् ! किसी राजा ने ८० योजन दूरीपरस्थित अपने शत्रु के नगर को उससे हाथी छीनने के लिये प्रस्थान किया, प्रथम दिन वह दोयोजन चला बाद प्रतिदिन कितने योजन की वृद्धि से चले जो ७ दिन में वह वहाँ पहुँच जाय ! बताओ ।

गच्छज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तम्—

श्रेढीफलादुत्तरलोचनघ्नाच्चयार्धवक्त्रान्तरवर्गयुक्तात् ।
मूलं मुखोनं चयखण्डयुक्तं चयोद्धृतं गच्छमुदाहरन्ति ॥ ५ ॥

सर्वधन को द्विगुणित चय से गुना करके उसमें चय के आधे और आदि के अन्तरवर्ग जोड़ कर मूल लेना फिर उस में आदि को घटा कर चय का आधा जोड़ देना उसमें फिर चय के भाग देने से गच्छ (पद) होता है ॥

उदाहरण :— द्रम्मत्रयं यः प्रथमेऽह्नि दत्त्वा दातुं प्रवृत्तो द्विचयेन तेन ।
शतत्रयं षष्टचधिकं द्विजेभ्यो दत्तं कियद्भिर्दिवसैर्वदाशु ॥ १ ॥

जो दाता प्रथम दिन ३ द्रम्म दान करके आगे प्रति दिन २ बढ़ाकर देनेलगा तो बताओ कि ३९० द्रम्म ब्राह्मणों को कितने दिन में देगा ? ॥

अथ द्विगुणोत्तरादिवृद्धौ फलानयने करणसूत्रम् :—

विषमे गच्छे व्येके गुणकः स्थाप्यः समेऽर्धिते वर्गः ।
गच्छक्षयान्तमन्त्याद् व्यस्तं गुणवर्गजं फलं यत् तत् ॥ ६ ॥
व्येकं व्येकगुणोद्धृतमादिगुणं स्याद् गुणोत्तरे गणितम् ।

जहाँ द्विगुण, त्रिगुण आदि चय हो वहाँ पद यदि विषम संख्या (३, ५, ७ इत्यादि) हो तो उसमें १ घटाकर गुणक लिखे । यदि पद सम हो तो आधा करके वर्गचिह्न लिखना 'इस प्रकार १ घटाने और आधे करने में भी जब विषमाङ्क हो तब गुणकचिह्न, जब समांक हो तब वर्गचिह्न करना एवं जब तक पद के कुलसंख्या समाप्त हो न जाय तब तक करते रहना, फिर अन्त्यचिह्न से उल्टा गुणक और वर्गफल साधन करके आद्यचिह्न तक जो फल हो उसमें १ घटा कर शेष में एकोनगुणक से भाग देना, लब्धि को आदि अङ्क से गुना करने से सर्वधन होता है ॥

उदाहरण :— पूर्वं वराटकयुगं येन द्विगुणोत्तरं प्रतिज्ञातम् ।
प्रत्यहमर्थिजनाय स मासे निष्कान् ददाति कति ॥ १ ॥

किसी दाता ने, प्रथमदिन २ वराटक दान करके उसके बाद प्रतिदिन द्विगुणित करके देना प्रारम्भ किया तो बताओ कि उसने ३० दिन में कितने निष्क दान किये ? ॥

उदाहरण :— आदिर्द्विकं सखे ! वृद्धिः प्रत्यहं त्रिगुणोत्तरा ।
गच्छः सप्तदिनं यत्र गणितं तत्र किं वद ॥ १ ॥

हे सखे ! जहाँ आदि २, त्रिगुणोत्तर चय, और पद = ७ है तो सर्वधन बताओ ॥

समादिवृत्तज्ञानाय करणसूत्रम्—

पादाक्षरमितगच्छे गुणवर्गफलं चये द्विगुणे ॥ ७ ॥
समवृत्तानां संख्या तद्वर्गो वर्गवर्गश्च ।
स्वस्वपदोनौ स्यातामर्धसमानां च विषमाणाम् ॥ ८ ॥

जितने अक्षर चरणवाले छन्द के भेद को जानना हो उतना पद तथा द्विगुण चय मान कर "विषमे गच्छे व्येके" इत्यादि विधि से जो गुणवर्गज फल हो उतने ही उस छन्द के समवृत्त, (समवृत्त सम्बन्धी) भेद समझना। उस भेद संख्या के वर्ग, तथा दूसरे स्थान में वर्ग वर्ग करके रखना, दोनों अपने अपने मूल घटा देने से शेष तुल्य क्रम से उतने अक्षर चरणवाले वृत्त के अर्ध सम तथा विषम वृत्त के भेद होते हैं।

उदाहरण :— समानामर्धतुल्यानां विषमाणां पृथक् पृथक्।
वृत्तानां वद मे संख्यामनुष्टुप् छन्दसि द्रुतम् ॥ १ ॥

अनुष्टुप् (८ अक्षरचरणवाले) छन्द के सम, अर्धसम और विषमवृत्तों के भेद पृथक् पृथक् बताओ ॥१॥

अथ क्षेत्रव्यवहारः।

तत्र भुजकोटिकर्णानामन्यतमे ज्ञातेऽन्यतमयोर्ज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

इष्टो बाहुर्यः स्यात् तत्स्पर्धिन्यां दिशीतरो बाहुः।
त्र्यस्रे चतुरस्रे वा सा कोटिः कीर्त्तिता तज्ज्ञैः ॥ १ ॥
तत्कृत्योर्योगपदं कर्णो दोःकर्णवर्गयोर्विवरात्।
मूलं कोटिः कोटिश्रुतिकृत्योरन्तरात् पदं बाहुः ॥ २ ॥

त्रिभुज या चतुर्भुज में जब एकभुज पर दूसराभुज लम्बरूप हो तो उन दोनों में एक 'भुज' और दूसरा 'कोटि' नाम से कहा जाता है। तथा उन दोनों के वर्गयोग मूल को 'कर्ण' कहते हैं। भुज और कर्ण वर्गान्तर मूल 'कोटि', तथा कोटि और कर्ण का वर्गान्तर मूल 'भुज' होता है ॥ १–२ ॥

उदाहरण :— कोटिश्चतुष्टयं यत्र दोस्त्रयं तत्र का श्रुतिः।
कोटिं दोःकर्णतः कोटिश्रुतिभ्यां च भुजं वद ॥ १ ॥

जहाँ कोटि = ४, भुज = ३ वहाँ कर्ण का मान क्या होगा ? तथा भुज और कर्ण जान कर कोटि बताओ, और कोटिकर्ण जान कर भुज बताओ।

प्रकारान्तरेण तज्ज्ञानाय करणसूत्रं सार्धवृत्तम्—

राश्योरन्तरवर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयोः।
वर्गयोगो भवेदेवं तयोर्योगान्तराहतिः ॥ ३ ॥
वर्गान्तरं भवेदेवं ज्ञेयं सर्वत्र धीमता।

किसी दो राशियों का वर्गयोग या वर्गान्तर जानना हो तो दोनों राशियों के अन्तर के वर्ग में उन्हीं दोनों राशि के द्विगुणित घात जोड़ देने से वर्गयोग हो जाता है। तथा किसी भी दो राशियों के योग और अन्तर का घात उन्हीं दोनों का वर्गान्तर होता है। इस प्रकार सर्वत्र वर्गयोग या वर्गान्तर समझना चाहिये ॥ ३ ॥

उदाहरण :— साङ्घ्रित्रयमितो बाहुर्यत्र कोटिश्च तावती।
तत्र कर्णप्रमाणं किं ? गणक ? ब्रूहि मे द्रुतम् ॥ २ ॥

हे गणक ! जहाँ ($\frac{१३}{४}$) भुज और $\frac{१३}{४}$ कोटि है वहाँ कर्ण प्रमाण क्या होगा ? बताओ।

अस्यासन्नमूलज्ञानार्थमुपायः—

वर्गेण महतेष्टेन हताच्छेदांशयोर्वधात ।
पदं गुणपदक्षुण्णच्छिद्भक्तं निकटं भवेत् ।। ४ ।।

जिस वर्गांक का मूल निकालना हो उसके हर और अंश के घात को किसी बड़े वर्गांक से गुणा करके मूल लेने की क्रिया से मूल निकालना । उसको गुणक के मूल से गुणित हर के भाग देने से लब्धि आसन्न मूल होता है ।। ४ ।।

त्र्यस्रजात्ये भुजे ज्ञाते कोटिकर्णानयने करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

इष्टो भुजोऽस्माद्द्विगुणेष्टनिघ्नादिष्टस्य कृत्यैकवियुक्तयाऽऽप्तम् ।
कोटिः पृथक् सेष्टगुणा भुजोना कर्णो भवेत् त्र्यस्रमिदं तु जात्यम् ।। ५ ।।
इष्टो भुजस्तत्कृतिरिष्टभक्ता द्विःस्थापितेष्टोनयुताऽर्धिता वा ।
तौ कोटिकर्णाविति कोटितो वा बाहुश्रुती चाकरणीगते स्तः ।। ६ ।।

यदि भुज ज्ञात हो तो उसे किसी द्विगुणित इष्ट से गुणा । गुणनफल में इष्ट के वर्ग में १ घटाकर शेष के भाग देने से लब्धि कोटि होती है । उस (कोटि) को इष्ट से गुणा करके गुणनफल में भुज घटाने से कर्ण होता है । यह जात्य त्रिभुज कहलाता है ।

उदाहरण :— भुजे द्वादशके यौ यौ कोटिकर्णावनेकधा ।
प्रकाराभ्यां वद क्षिप्रं तौ तावकरणीगतौ ।। १ ।।

१२ भुज है, तो कोटि और कर्ण के मान (अकरणीगत) उक्त दोनों प्रकार से अनेक प्रकार से बताओ ।।

अथेष्टकर्णात् कोटिभुजानयने करणसूत्रं वृत्तम्—

इष्टेन निघ्नाद्द्विगुणाच्च कर्णादिष्टस्य कृत्यैकयुजा यदाप्तम् ।
कोटिर्भवेत् सा पृथगिष्टनिघ्नी तत्कर्णयोरन्तरमत्र बाहुः ।। ७ ।।

कर्ण ज्ञात हो तो उसको दूना करके किसी कल्पित इष्ट से गुना करना, गुणन फल में इष्ट के वर्ग में १ जोड़ कर भाग देने से लब्धि कोटि होती है । उस (कोटि) को इष्ट से गुना कर जो हो उसका और कर्ण का अन्तर भुज होता है ।।

उदाहरण :— पञ्चाशीतिमिते कर्णे यौ यावकरणीगतौ ।
स्यातां कोटिभुजौ तौ तौ वद कोविद! सत्वरम् ।। १ ।।

८५ कर्ण है तो इसमें अकरणीगत कोटि और भुज के मान अनेक प्रकार से बताओ ।

पुनः प्रकारान्तरेण तत्करणसूत्रं वृत्तम्—

इष्टवर्गेण सैकेन द्विघ्नः कर्णोऽथवा हृतः ।
फलोनः श्रवणः कोटिः फलमिष्टगुणं भुजः ।। ८ ।।

अथवा कल्पित इष्टवर्ग में १ जोड़कर उससे द्विगुणित कर्ण में भाग देने से जो लब्धि हो उसे कर्ण में घटाने से शेष कोटि होती है । तथा उसी लब्धि को इष्ट से गुना करने से भुज होता है ।

अथेष्टाभ्यां भुजकोटिकर्णानयने करणसूत्रं वृत्तम्—

इष्टयोराहतिर्द्विघ्नी कोटिर्वर्गान्तरं भुजः ।
कृतियोगस्तयोरेवं कर्णश्चाकरणीगतः ॥ ९ ॥

दो अङ्कों को इष्ट कल्पना कर उन दोनों के घात को दूना करने से कोटि होती है, तथा उन्हीं दोनों इष्ट का वर्गान्तर भुज, तथा दोनों इष्ट का वर्ग योग कर्ण होता है ।

उदाहरण :— यैर्यैस्त्र्यस्रं भवेज्जात्यं कोटिदोःश्रवणैः सखे ! ।
त्रीनप्यविदितानेतान् क्षिप्रं ब्रूहि विचक्षण ! ॥ १ ॥

हे मित्र ! जिन जिन कोटि, भुज और कर्ण से जात्यत्रिभुज हो ऐसे अज्ञात भुज, कोटि और कर्ण को शीघ्र बताओ ।

कर्णकोटियुतौ भुजे च ज्ञाते पृथक्करणसूत्रं वृत्तम्—

वंशाग्रमूलान्तरभूमिवर्गो वंशोद्धृतस्तेन पृथग्युतोनौ ।
वंशौ तदर्धे भवतः क्रमेण वंशस्य खण्डे श्रुतिकोटिरूपे ॥ १० ॥

वंश के अग्र और मूल के अन्तर 'रूप भुज' के वर्ग में वंश (कर्णकोटि योग) के भाग देने से जो लब्धि हो उसे 'कर्णकोटि योग रूप' वंश में पृथक् पृथक् जोड़ और घटाकर आधा करने से क्रमशः कर्ण और कोटि स्वरूप वंश के दोनों टुकड़े होते हैं ॥ १० ॥

उदाहरणः—यदि समभुवि वेणुर्द्वित्रिपाणिप्रमाणो गणक ! पवनवेगादेकदेशे स भग्नः ।
भुवि नृपमितहस्तेष्वङ्ग लग्नं तदग्रं कथय कतिषु मूलादेष भग्नः करेषु ॥ १ ॥

हे गणक ! किसी समतल भूमि में ३२ हाथ ऊँचा एक बाँस खड़ा था, वायु के वेग से टूट कर उसका अग्र भाग यदि मूल (जड़) से १६ हाथ पर समभूमि में लगा तो बताओ कि वह बाँस कितने हाथ ऊँचे पर से टूटा ?

बहुकर्णयोगे कोटौ च ज्ञातायां पृथक्करणसूत्रं वृत्तम्—

स्तम्भस्य वर्गोऽहिबिलान्तरेण भक्तः फलं व्यालबिलान्तरालात् ।
शोध्यं तदर्धप्रमितैः करैः स्याद्बिलाग्रतो व्यालकलापियोगः ॥ ११ ॥

स्तम्भ (कोटि) के वर्ग में सर्प बिलान्तर (भुजकर्ण के योग) के भाग देकर जो लब्धि हो उसे सर्प बिलान्तर मान (भुजकर्ण योग) में घटा कर आधा करने से बिल के आगे सर्प मयूर के योग स्थान पर्यन्त भूमि (भुज) का मान होता है ॥ ११ ॥

उदाहरण :— अस्ति स्तम्भतले बिलं तदुपरि क्रीडाशिखण्डी स्थितः
स्तम्भे हस्तनवोच्छ्रिते त्रिगुणितस्तम्भप्रमाणान्तरे ।
दृष्ट्वाऽहिं बिलमाव्रजन्तमपतत् तिर्यक् स तस्योपरि
क्षिप्रं ब्रूहि तयोर्बिलात् कतिकरैः साम्येन गत्योर्युतिः ॥ १ ॥

समतल भूमि में ९ हाथ के स्तम्भ (खम्भा) के नीचे एक सर्प का बिल था । खम्भे के ऊपर एक मयूर बैठा था वह खम्भा से २७ हाथ दूरी पर बिल में आते हुए सर्प को देखकर उसपर कर्णमार्ग से

झपट कर गिरा और उसको पकड़ लिया, इस प्रकार यदि दोनों की गति में तुल्यता हुई तो बताओ कि बिल से कितने हाथ पर दोनों का योग हुआ ? ॥ १ ॥

कोटिकर्णान्तरे भुजे च दृष्टे पृथक्करणसूत्रं वृत्तम्—

भुजाद्वर्गितात् कोटिकर्णान्तराप्तं द्विधा कोटिकर्णान्तरेणोनयुक्तम्।
तदर्धे क्रमात् कोटिकर्णौ भवेतामिदं धीमताऽऽवेद्य सर्वत्र योज्यम् ॥ १२ ॥
सखे ! पद्मतन्मज्जनस्थानमध्यं भुजः कोटिकर्णान्तरं पद्मदृश्यम्।
नलः कोटिरेतन्मितं स्याद्यदम्भो वदैवं समानीय पानीयमानम् ॥ १३ ॥

भुज के वर्ग में कोटिकर्ण के अन्तर से भाग देकर लब्धि को दो स्थान में रखकर एक में कोटिकर्ण के अन्तर को घटाकर दूसरे में कोटिकर्णान्तर जोड़कर दोनों को आधा करने से क्रमशः कोटि और कर्ण होते हैं। बुद्धिमान् को चाहिये कि इस विषय को समझ कर सर्वत्र योजना करे ॥ १२ ॥

हे मित्र ! 'आगे कहे हुए' उदाहरण में कमल और उसके डूबने का मध्य स्थान भुज और कमल का दृश्य भाग कोटिकर्णान्तर तथा कमल का उक्त विधि से कोटिमान लाकर जल का प्रमाण बता दो ॥ १३ ॥

उदाहरण :— **चक्रक्रौञ्चाकुलितसलिले क्वापि दृष्टं तडागे**
तोयादूर्ध्वं कमलकलिकाग्रं वितस्तिप्रमाणम्।
मन्दं मन्दं चलितमनिलेनाहतं हस्तयुग्मे
तस्मिन् मग्नं गणककथय क्षिप्रमम्भःप्रमाणम् ॥ १ ॥

हे गणक ! चक्रवाक बक आदि पक्षियों से सुशोभित जल वाले किसी तालाब में कमल कली का अग्रभाग जल से ऊपर अर्ध $\frac{1}{2}$ हस्त था, वह वायु के वेग से धीरे-धीरे झुक कर २ हाथ आगे जाते जाते जल में डूब गया तो बताओ कि उसमें जल का प्रमाण कितना था ?

कोटयेकदेशेन युते कर्णे भुजे च दृष्टे कोटिकर्णज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तम्—

द्विनिघ्नतालोच्छ्रितिसंयुतं यत् सरोऽन्तरं तेन विभाजितायाः।
तालोच्छ्रितेस्तालसरोऽन्तरघ्न्या उड्डीनमानं खलु लभ्यते तत् ॥ १४ ॥

ताल सरोवर के अन्तर से ताल की ऊँचाई को गुणाकर उस (गुणनफल) में द्विगुणित ताल की ऊँचाई से युत जो ताल सरोऽन्तर उसका भाग देने से लब्धि उड्डीनमान होता है ॥ १४ ॥

उदाहरण :— **वृक्षाद्धस्तशतोच्छ्रयाच्छतयुगे वापी कपिः कोऽप्यगा-**
दुत्तीर्याथ परो द्रुतं श्रुतिपथेनोड्डीय किञ्चिद्द्रुमात्।
जातैवं समता तयोर्यदि गतावुड्डीनमानं कियद्-
विद्वंश्चेत् सुपरिश्रमोऽस्ति गणिते क्षिप्रं तदाऽऽचक्ष्व मे॥ १ ॥

हे विद्वन् ! १०० हाथ ऊँचाई वाले वृक्ष पर दो बन्दर बैठे थे उनमें से एक तो वृक्ष से उतर कर २०० हाथ दूर स्थित सरोवर में पानी पीने गया। और दूसरा उस वृक्ष पर से कुछ ऊपर उछल कर कर्ण-मार्ग से ही सरोवर में कूद पड़ा, इस प्रकार दोनों के चलने के मार्ग का प्रमाण तुल्य है तो बताओ कि वह कितना ऊपर उछला ? यदि तुमने गणित में परिश्रम किया है तो शीघ्र कहो ॥ १ ॥

किसी दुष्ट ने पूछा कि—जिस चतुर्भुज में क्रम से ३, ६, २ और १२ भुजों के मान हैं, और त्रिभुज में ३, ६, ९ हैं तो दोनों का क्षेत्रफल क्या होगा ?" इस प्रश्न में दोनों अक्षेत्र हैं, क्योंकि इनमें एक भुज से शेष भुजों का योग अल्प है। इसलिये ऐसा क्षेत्र नहीं हो सकता तो फिर उसका फल क्या होगा ? ॥

त्रिभुजफलानयनार्थं सूत्रमार्याद्वयम्—

त्रिभुजे भुजयोर्योगस्तदन्तरगुणो भुवा हृतो लब्ध्या।
द्विष्ठा भूरूनयुता दलिताऽऽबाधे तयोः स्याताम् ॥ १८ ॥
स्वाबाधाभुजकृत्योरन्तरमूलं प्रजायते लम्बः।
लम्बगुणं भूम्यर्धं स्पष्टं त्रिभुजे फलं भवति ॥ १९ ॥

किसी भी त्रिभुज के क्षेत्रफल जानने का प्रकार—त्रिभुज के दो भुजों के योग को उन्हीं दोनों भुजों के अन्तर से गुना करके भूमिरूप, तृतीय भुज के भाग देने से जो लब्धि हो उसको भूमि (तृतीय भुज) में एक जगह घटाकर और दूसरी जगह जोड़कर आधा करने से "क्रम से लघु भुज और बृहत् भुज की आबाधा होती है। भुजवर्ग में अपनी आबाधा के वर्ग को घटाकर शेष का मूल लम्ब होता है। लम्ब से भूमि (आधार रूप तृतीय भुज) को गुना करके आधा करने से त्रिभुज का फल होता है।

उदाहरण— क्षेत्रे महीमनुमिता त्रिभुजे भुजौ तु यत्रत्रयोदशतिथिप्रमितौ च यस्य।
तत्रावलम्बकमथो कथयावबाधे क्षिप्रं तथा च समकोष्ठमिति फलाख्यम् ॥

जिस त्रिभुज क्षेत्र में भूमि (आधार) १४ तथा १३ और १५ दो भुज हैं, उस त्रिभुज का लम्ब, आबाधा और समकोष्ठ रूप फल के मान बताओ।

उदाहरण— दशसप्तदशप्रमौ भुजौ त्रिभुजे यत्र नवप्रमा मही।
अबधे वद लम्बकं तथा गणितं गणितिकाशु तत्र मे ॥ २ ॥

जिस त्रिभुज में दोनों भुज के मान क्रमशः १० और १७ हैं, तथा आधार (भूमि) ९ है उसके लम्ब, आबाधा और क्षेत्रफल बताओ।

चतुर्भुजत्रिभुजयोरस्पष्टस्पष्टफलानयने सूत्रम्—

सर्वदोर्युतिदलं चतुःस्थितं बाहुभिर्विरहितं च तद्वधात्।
मूलमस्फुटफलं चतुर्भुजे स्पष्टमेवमुदितं त्रिबाहुके ॥ २० ॥

त्रिभुज और चतुर्भुज के क्षेत्रफल ज्ञानार्थ प्रकारान्तर है कि त्रिभुज या चतुर्भुज के सब भुजों का योग कर उसे ४ स्थान में रक्खे, उनमें क्रम से सब भुजों को घटावे जो शेष बचे उनके घात करके जो मूल हो वह त्रिभुज में तो सर्वदा वास्तव फल होता है। परन्तु चतुर्भुज में स्थूल फल होता है।

उदाहरण— भूमिश्चतुर्दशमिता मुखमङ्कसङ्ख्यं बाहू त्रयोदशदिवाकरसम्मितौ च।
लम्बोऽपि यत्र रविसंख्यक एव तत्र क्षेत्रे फलं कथय तत् कथितं यदाद्यैः ॥ १ ॥

जिस चतुर्भुज में भूमि १४, मुख ९ और दोनों भुज क्रम से १३। १२ तथा लम्ब भी १२ हैं तो इसका क्षेत्रफल बताओ, जो आद्याचार्यों ने कहा है।

फले स्थूलत्वनिरूपणार्थं सूत्रम्—

चतुर्भुजस्यानियतौ हि कर्णौ कथं ततोऽस्मिन्नियतं फलं स्यात् ।
प्रसाधितौ तच्छ्रवणौ यदाद्यैः स्वकल्पितौ तावितरत्र न स्तः ॥ २१ ॥
तेष्वेव बाहुष्वपरौ च कर्णावनेकधा क्षेत्रफलं ततश्च ।

चतुर्भुज में यदि कर्णमान निश्चित नहीं हो तो उसमें निश्चित फल नहीं हो सकता है । इसलिये केवल भुजों पर से कर्ण के मान जो आद्याचार्यों ने किये हैं वे सर्वत्र नहीं हो सकते । क्योंकि—उन्हीं भुजों में अनेक फल भी हो सकते हैं ।

अत एव— लम्बयोः कर्णयोर्वैकमनिर्दिश्यापरं कथम् ।
पृच्छत्यनियतत्वेऽपि नियतं चापि तत्फलम् ॥
स पृच्छकः पिशाचो वा वक्ता वा नितरां ततः ।
यो न वेत्ति चतुर्बाहुक्षेत्रस्यानियतां स्थितिम् ॥

इसलिये दोनों लम्ब में एक, अथवा दोनों कर्ण में एक को नहीं कह कर क्षेत्र की अनियतस्थिति में भी जो उसका निश्चित फल पूछता है वह प्रष्टा मूर्ख है, और ऐसी स्थिति में फल कहने के लिये जो उद्यत होता है वह तो पूछनेवाले से भी विशेष कर मूढ़ है, जो चतुर्भुज की अनियत स्थिति को नहीं जानता है ।

समचतुर्भुजायतयोः फलानयने करणसूत्रम्—

इष्टा श्रुतिस्तुल्यचतुर्भुजस्य कल्प्याथ तद्वर्गविवर्जिता या ॥ २२ ॥
चतुर्गुणा बाहुकृतिस्तदीयं मूलं द्वितीयश्रवणप्रमाणम् ।
अतुल्यकर्णाभिहतिर्द्विभक्ता फलं स्फुटं तुल्यचतुर्भुजे स्यात् ॥ २३ ॥
समश्रुतौ तुल्यचतुर्भुजे च तथाऽऽयते तद्भुजकोटिघातः ।
चतुर्भुजेऽन्यत्र समानलम्बेलम्बेन निघ्नं कुमुखैक्यखण्डम् ॥ २४ ॥

अब चतुर्भुज में अनेक प्रकार के कर्ण द्वारा क्षेत्रफल साधन कहते हैं । यदि तुल्यचतुर्भुज हो तो उसमें एक कर्ण का मान अभीष्ट कल्पना करे फिर भुजवर्ग को ४ से गुनाकर उसमें कर्णवर्ग को घटाकर शेष का मूल द्वितीय कर्ण का मान होता है । यदि कर्ण दोनों तुल्य नहीं हों तो दोनों कर्ण के परस्पर गुणन कर उसका आधा तुल्य चतुर्भुज में वास्तव फल होता है तथा यदि तुल्य चतुर्भुज में दोनों कर्ण बराबर हों तो एक भुज को दूसरे भुज से गुना करने से फल होता है तथा आयत क्षेत्र में भी भुज और कोटि का घात क्षेत्रफल होता है । अन्य चतुर्भुज में यदि तुल्यलम्ब हों तो मुख (ऊपर के भुज) और भूमि (नीचे के भुज) के योग के आधा करके लम्ब से गुना करने से क्षेत्रफल होता है ॥ २२—२४ ॥

उदाहरण—क्षेत्रस्य पञ्चकृतितुल्यचतुर्भुजस्य कर्णौ ततश्च गणितं गणक प्रचक्ष्व ।
तुल्यश्रुतेश्च खलु तस्य तथाऽऽयतस्य यद्विस्तृती रसमिताऽष्टमितञ्च दैर्घ्यम् ॥१॥

जिस तुल्य चतुर्भुज में भुजमान २५ है उसमें दोनों कर्ण के मान और उसका क्षेत्रफल बताओ । यदि उसी तुल्य चतुर्भुज में कर्णमान तुल्य हों तो उसका क्षेत्रफल क्या होगा ? तथा जिस आयतचतुर्भुज में भुज ६ और कोटि ८ है उसका क्षेत्रफल बताओ ।

उदाहरण क्षेत्रस्य यस्य वदनं मदनारितुल्यं विश्वम्भरा द्विगुणितेन मुखेन तुल्या।
बाहू त्रयोदशनखप्रमितौ च लम्बः सूर्योन्मितश्च गणितं वद तत्र किं स्यात्॥२॥

जिस चतुर्भुज में मुख ११, भूमि २२, और शेष दोनों भुज १३ और २० हैं तथा यदि १२ लम्ब है तो उसका क्षेत्रफल बताओ।

उदाहरण—पञ्चाशदेकसहिता वदनं यदीयं भूः पञ्चसप्ततिमिता प्रमितोऽष्टषष्ठ्या।
सव्यो भुजो द्विगुणविंशतिसम्मितोऽन्यस्तस्मिन् फलं श्रवणलम्बमिती प्रचक्ष्व॥३॥

जिस चतुर्भुज में मुख ५१, भूमि ७५, तथा एक भुज ६८, द्वितीय भुज ४० है तो इसमें क्षेत्रफल, कर्ण और लम्ब के मान बताओ।

अत्र फलविलम्बश्रुतीनां सम्बन्धसूत्रं वृत्तम्—

ज्ञातेऽवलम्बे श्रवणः श्रुतौ तु लम्बः फलं स्यान्नियतं तु तत्र।
चतुर्भुजान्तस्त्रिभुजेऽवलम्बः प्राग्वद्भुजौ कर्णभुजौ मही भूः॥ २५॥

चतुर्भुज में लम्ब के ज्ञान से कर्ण का ज्ञान होता है। तथा कर्ण ज्ञात हो तो लम्ब का ज्ञान होता है। तब उसका फल निश्चित हो सकता है। इसलिये कर्ण ज्ञात हो तो चतुर्भुज में कर्ण से त्रिभुज बनता है उसमें कर्ण और भुज को दोनों को भुज और चतुर्भुज की भूमि को भूमि कल्पना करके पूर्ववत् "त्रिभुजे भुजयोर्योगः" इत्यादि विधि से लम्ब का मान ज्ञात होता है।

लम्बे ज्ञाते कर्णज्ञानार्थं सूत्रं वृत्तम्—

यल्लम्बलम्बाश्रितबाहुवर्गविश्लेषमूलं कथिताबधा सा।
तदूनभूवर्गसमन्वितस्य यल्लम्बवर्गस्य पदं स कर्णः॥ २६॥

'चतुर्भुज में लम्ब का मान ज्ञात हो तो'—लम्ब और लम्ब के आश्रित जो भुज हों उन दोनों का वर्गान्तरमूल आबाधा होती है उस (आबाधा) को भूमि में घटाकर शेष के वर्ग में लम्ब के वर्ग को जोड़कर जो मूल हो वह कर्ण होता है।

द्वितीयकर्णज्ञानार्थं सूत्रं वृत्तद्वयम्—

इष्टोऽत्र कर्णः प्रथमं प्रकल्प्यस्त्र्यस्रे तु कर्णोभयतः स्थिते ये।
कर्णं तयोः क्ष्मामितरौ च बाहू प्रकल्प्य लम्बावबधे च साध्ये॥ २७॥
आबाधयोरेककुप्स्थयोर्यत् स्यादन्तरं तत्कृतिसंयुतस्य।
लम्बैक्यवर्गस्य पदं द्वितीयः कर्णो भवेत्सर्वचतुर्भुजेषु॥ २८॥

चतुर्भुज में एक कर्ण ज्ञात हो उसी से, अथवा कर्ण ज्ञात न हो तो एक कर्ण का मान कल्पना करके उसके दोनों तरफ जो दो त्रिभुज बनते हैं, उन दोनों में उक्त कर्ण को भूमि और तदाश्रित दो दो भुजों को भुज मानकर दोनों त्रिभुज में लम्ब और आबाधा साधन करना। एक तरफ की दोनों आबाधा के अन्तर के वर्ग में दोनों लम्ब के योग के वर्ग को जोड़कर जो मूल हो वह दूसरा कर्ण होता है। इस प्रकार सब चतुर्भुज में कर्ण का ज्ञान होता है।

अत्रेष्टकर्णकल्पने विशेषोक्तिसूत्रं सार्द्धवृत्तम्—

कर्णाश्रितं स्वल्पभुजैक्यमुर्वीं प्रकल्प्य तच्छेषमितौ च बाहू।
साध्योऽवलम्बोऽथ तथाऽन्यकर्णः स्वोर्व्याः कथञ्चिच्छ्रवणो न दीर्घः ॥ २९ ॥
तदन्यकर्णान्न लघुस्तथेदं ज्ञात्वेष्टकर्णः सुधिया प्रकल्प्यः।

कर्ण के आश्रित जिन दो भुजों का योग अल्प हो उस योग को भूमि और शेष भुजों को भुज कल्पना कर "त्रिभुजे भुजयोर्योगः" इत्यादि प्रकार से लम्ब तथा उसी कर्ण को कर्ण मानकर "इष्टोऽत्र कर्णः" इस प्रकार से द्वितीय कर्णमान साधन करें। इस प्रकार कल्पित लघु भुजयोग तुल्य भूमि से इष्टकर्ण अधिक नहीं हो सकता है। तथा साधित द्वितीय कर्ण से इष्ट कर्ण लघु (अल्प) नहीं हो सकता है। इसलिये इसे जानकर ही इष्ट कर्ण कल्पना करना चाहिये।

विषमचतुर्भुजफलानयनाय करणसूत्रं वृत्तार्द्धम्—

त्र्यस्रे तु कर्णोभयतः स्थिते ये तयोः फलैक्यं फलमत्र नूनम् ॥ ३० ॥

किसी भी चतुर्भुज में कर्ण के दोनों भाग में जो २ त्रिभुज होते हैं, उन दोनों के क्षेत्रफल का योग चतुर्भुज का फल होता है ॥ ३० ॥

समानलम्बस्याबाधादिज्ञानाय करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

समानलम्बस्य चतुर्भुजस्य मुखोनभूमिं परिकल्प्य भूमिम्।
भुजौ भुजौ त्र्यस्रवदेव साध्ये तस्यावधे लम्बमितिस्ततश्च ॥ ३१ ॥
आबाधयोना चतुरस्रभूमिस्तल्लम्बवर्गैक्यपदं श्रुतिः स्यात्।
समानलम्बे लघुदोः कुयोगान्मुखान्यदोःसंयुतिरल्पिका स्यात् ॥ ३२ ॥

'जिस चतुर्भुज में दोनों शीर्ष कोण से भूमि (आधार) पर किये हुए दोनों लम्ब तुल्य हों' उसके मुखमान को भूमि में घटाकर शेष को भूमि कल्पना करें तथा शेष दोनों भुज को भुज मानकर त्रिभुज के समान ही ("त्रिभुजे भुजयोर्योगः" इत्यादि से) आबाधा और लम्ब के मान साधन करे। आबाधा को चतुर्भुज के भूमिमान में घटाकर शेष के वर्ग में लम्बवर्ग जोड़कर मूल लेने से कर्णमान होता है। एवं दोनों आबाधा से दोनों कर्णमान समझना। समान लम्ब चतुर्भुज में एक विशेषता यह होती है कि लघुभुज और भूमि के योग से मुख और बृहद्भुज का योग अल्प ही होता है ॥ ३१–३२ ॥

उदाहरण —

द्विपञ्चाशन्मितव्येकचत्वारिंशन्मितौ भुजौ।
मुखं तु पञ्चविंशत्या तुल्यं षष्ठ्या मही किल ॥
अतुल्यलम्बकं क्षेत्रमिदं पूर्वैरुदाहृतम्।
षट्पञ्चाशत् त्रिषष्ठिश्च नियते कर्णयोर्मिती।
कर्णौ तत्रापरौ ब्रूहि समलम्बे च तच्छ्रुती ॥

जिस चतुर्भुज में एक भुज ५२, द्वितीय भुज ३९, मुख २५ और आधार ६० है। इसको पूर्वाचार्यों ने अतुल्य लम्ब चतुर्भुज कहा है। और इसमें ५६ तथा ६३ ये निश्चित कर्णमान बताये हैं। इसी में अन्य कर्ण के मान बताओ। तथा यदि यही चतुर्भुज तुल्य लम्ब क्षेत्र है तो लम्बमान और उसके कर्णमान बताओ।

एवमनियतत्वेऽपि नियतावेव कर्णावानीतौ ब्रह्मगुप्ताद्यैस्तदानयनं यथा—

कर्णाश्रितभुजघातैक्यमुभयथाऽन्योन्यभाजितं गुणयेत् ।
योगेन भुजप्रतिभुजबधयोः कर्णौ पदे विषमे ॥ ३३ ॥

चतुर्भुज में कर्णमान अनियत होने पर भी ब्रह्मगुप्तादि आचार्य ने नियत कर्णमान का आनयन किया है (उसे कहते हैं)—कर्ण के आश्रित जो दो दो भुज रहते हैं उनमें दो-दो भुजों के घात के योग करके पृथक् दो स्थान में रक्खे, और उन दोनों में परस्पर भाग देवे, उन दोनों को सम्मुख स्थित जो दो दो भुज रहते हैं उनके घात के योग से गुणा करके दोनों के मूल लेने से विषम चतुर्भुज में दोनों कर्ण के मान होते हैं।

अस्मिन् विषये क्षेत्रकर्णसाधने अस्य कर्णानयनस्य प्रक्रियागौरवम् लघुप्रक्रियादर्शनद्वारेणाह—

अभीष्टजात्यद्वयबाहुकोटयः परस्परं कर्णहता भुजा इति ।
चतुर्भुजं यद्विषमं प्रकल्पितं श्रुती तु तत्र त्रिभुजद्वयात्ततः ॥ ३४ ॥
बाह्वोर्वधः कोटिवधेन युक् स्यादेका श्रुतिः कोटिभुजावधैक्यम् ।
अन्या लघौ सत्यपि साधनेऽस्मिन् पूर्वैः कृतं यद्गुरु तन्न विद्मः ॥ ३५ ॥

इच्छानुसार २ जात्यत्रिभुज कल्पना कर उनमें एक के भुज और कोटि को द्वितीय के कर्ण से गुना करे, और द्वितीय के भुज और कोटि को प्रथम के कर्ण से गुना करे तो ये चारों गुणनफल उस विषमचतुर्भुज के चारों भुज होते हैं जो पूर्वाचार्यों ने कहा है। उस चतुर्भुज के कर्ण भी उन्हीं दोनों जात्यत्रिभुज से सिद्ध होते हैं। यथा—दोनों त्रिभुज के परस्पर भुजघात में कोटि के घात जोड़ने से एक कर्ण, तथा परस्पर कोटि भुजघात का योग दूसरा कर्ण होता है। इस प्रकार कर्णसाधन के लाघव प्रकार रहते हुए भी पूर्वाचार्यों ने जो गौरव प्रकार कहा यह समझ में नहीं आता है।

अथ सूचीक्षेत्रोदाहरणम्—

क्षेत्रे यत्र शतत्रयं (३००) क्षितिमितिस्तत्त्वेन्दु (१२५) तुल्यं मुखं।
बाहू खोत्कृतिभिः (२६०) शरातिधृतिभि (१९५) स्तुल्यौ च तत्र श्रुती ॥
एका खाष्टयमैः (२८०) समा तिथि (३१५) गुणैरन्याथ तल्लम्बकौ ।
तुल्यौ गोधृतिभि (१८९) स्तथा जिन (२२४) यमैर्योगाच्छ्रयो लम्बयोः ॥

तत्खण्डे कथयाधरे श्रवणयोर्योगाच्च लम्बावधे
तत्सूची निजमार्गवृद्धभुजयोर्योगाद्यथा स्यात्ततः ।
साबाधं वद लम्बकं च भुजयोः सूच्याः प्रमाणे च के
सर्वं गणितिक ! प्रचक्ष्व नितरां क्षेत्रेऽत्रदक्षोऽसि चेत् ॥ २ ॥

जिस जतुर्भुज में भूमि ३००, मुख १२५, एक भुज २६०, द्वितीय भुज १९५ हैं, और उसमें एक कर्ण २८०, द्वितीय कर्ण ३१५ है, उसी में एक लम्ब १८९ दूसरा २२४ है तो कर्ण और लम्ब के योग से दोनों से नीचे के खण्ड बताओ। तथा दोनों कर्ण के योग से लम्ब और उसके आबाधों के मान बताओ। तथा दोनों भुज को अपने अपने मार्ग में बढ़ाने से ऊपर सूजी रूप योग से भूमि पर आबाधा सहित लम्ब के मान तथा सूची के प्रमाण क्या होंगे ? हे गणितज्ञ ! यदि तुम इस क्षेत्र में कुशल हो तो सब बताओ।

अथ सन्ध्याद्यानयनाय करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

लम्बतदाश्रितबाह्वोर्मध्यं सन्ध्याख्यमस्य लम्बस्य ।
सन्ध्यूना भूः पीठं साध्यं यस्याधरं खण्डम् ॥ ३६ ॥
सन्धिर्द्विष्ठः परलम्बश्रवणाहतः परस्य पीठेन ।
भक्तो लम्बश्रुत्योर्योगात्स्यातामधःखण्डे ॥ ३७ ॥

लम्ब और उससे आश्रित भुज के बीच में जो भूमि का खण्ड है वह उस लम्ब की सन्धि कहलाती है, तथा सन्धि को भूमि में घटाकर जो शेष बचे वह उस लम्ब का पीठ कहलाता है। जिस लम्ब और कर्ण के योग से अधःखण्ड साधन करना हो उसकी सन्धि को २ स्थान में रखना, एक स्थान में दूसरे के पीठ से भाग देने से लब्धि लम्ब का अधःखण्ड होता है। दूसरे स्थान में सन्धि को दूसरे के कर्ण से गुनाकर दूसरे के पीठ द्वारा भाग देने से लब्धि कर्ण का अधःखण्ड होता है।

अथ कर्णयोर्योगादधो लम्बज्ञानार्थं सूत्रं वृत्तम्—

लम्बौ भूघ्नौ निजनिजपीठविभक्तौ च वंशौ स्तः ।
ताभ्यां प्राग्वच्छ्रुत्योर्योगाल्लम्बः कुखण्डे च ॥ ३८ ॥

दोनों लम्ब को पृथक्-पृथक् भूमि से गुनाकर अपने-अपने पीठ के भाग देने से लब्धि अपने-अपने वंश (भूमि के प्रान्त से लम्ब के समानान्तर ऊर्ध्वाधर रेखा रूप) होते हैं। इन दोनों वंशों को जानकर "अन्योऽन्यमूलाग्रगसूत्रयोगात्" इत्यादि पूर्व रीति से कर्ण योग से भूमि पर लम्ब का मान होता है।

अथ सूच्याबाधालम्बभुजज्ञानार्थं सूत्रं वृत्तत्रयम्—

लम्बहतो निजसन्धिः परलम्बगुणः समाह्वयो ज्ञेयः ।
समपरसन्ध्योरैक्यं हारस्तेनोद्धृतौ तौ च ॥ ३९ ॥
समपरसन्धी भूघ्नौ सूच्याबाधे पृथक् स्याताम् ।
हारहृतः परलम्बः सूचीलम्बो भवेद्भूघ्नः ॥ ४० ॥
सूचीलम्बघ्नभुजौ निजनिजलम्बोद्धृतौ भुजौ सूच्याः ।
एवं क्षेत्रक्षोदः प्राज्ञैस्त्रैराशिकात् क्रियते ॥ ४१ ॥

सन्धि को परलम्ब से गुनाकर अपने लम्ब से भाग देकर लब्धि का नाम सम होता है। उस सम और परसन्धि के योग को हार (भाजक) समझना, सम और पर सन्धि को पृथक् भूमि से गुनाकर हार के भाग देने से दोनों लब्धि सूची की आबाधाएँ होती है। परलम्ब को भूमि से गुनाकर हार के भाग देने से सूची लम्ब होता है। क्षेत्रीय भुज को सूची लम्ब से गुनाकर अपने-अपने लम्ब के भाग देने से सूची के भुज के प्रमाण होते हैं। इस प्रकार क्षेत्र के अवयवों के मान का ज्ञान विज्ञजन त्रैराशिक से ही करते हैं॥३९-४१॥

वृत्तेव्यासात्परिधिज्ञानार्थ सूत्रम्—

व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते खबाणसूर्यैः परिधिः स सूक्ष्मः ।
द्वाविंशतिघ्ने विहृतेऽथ शैलैः स्थूलोऽथवा स्याद्व्यवहारयोग्यः ॥ ४२ ॥

व्यासमान को ३९२७ से गुनाकर १२५० के भाग देने से परिधि का मान सूक्ष्म होता है तथा व्यास को २२ से गुनाकर ७ के भाग देने से परिधिका मान कुछ स्थूल आता है, परन्च यह भी व्यवहार में उपयुक्त होता है।

उदाहरण— विष्कम्भमानं किल सप्त यत्र तत्र प्रमाणं परिधेः प्रचक्ष्व।
द्वाविंशतिर्यत् परिधिप्रमाणं तद्व्याससङ्ख्यां च सखे! विचिन्त्य॥

हे मित्र! जिस वृत्तक्षेत्र व्यासका मान ७ है, वहाँ परिधिका मान बताओ। तथा जिसमें २२ परिधि है वहाँ व्यासमान क्या होगा बताओ।

वृत्तगोलयोः फलानयने करणसूत्रं वृत्तम्—

वृत्तक्षेत्रे परिधिगुणितव्यासपादः फलं तत्
क्षुण्णं वेदैरुपरि परितः कन्दुकस्येव जालम्।
गोलस्यैवं तदपि च फलं पृष्ठजं व्यासनिघ्नं
षड्भिर्भक्तं भवति नियतं गोलगर्भे घनाख्यम्॥ ४३॥

परिधि को व्यास से गुणा कर ४ के भाग देने से वृत्त का क्षेत्रफल होता है। उस क्षेत्र फल को ४ से गुना करने से गोल पृष्ठफल होता है, उस गोल पृष्ठफल को व्यास से गुणा कर ६ के भाग देने से गोल का घनफल होता है।

उदाहरण— यद्व्यासस्तुरगैर्मितः किल फलं क्षेत्रे समे तत्र किं
व्यासः सप्तमितश्च यस्य सुमते गोलस्य तस्यापि किम्।
पृष्ठे कन्दुकजालसन्निभफलं गोलस्य तस्यापि किं
मध्ये ब्रूहि घनं फलं च विमलां चेद्वेत्सि लीलावतीम्॥ १॥

जिस वृत्त क्षेत्र में ७ व्यास है उसका सम क्षेत्रफल क्या होगा? और जिस गोल का व्यास ७ है उसका पृष्ठफल क्या होगा? और उसी गोल क्षेत्र का घन फल क्या होगा? यदि तुम लीलावती (पाटी गणित) को जानते हो तो बताओ॥ १॥

अथ प्रकारान्तरेण तत्फलानयने करणसूत्रं सार्द्धवृत्तम्—

व्यासस्य वर्गे भनवाग्निनिघ्ने सूक्ष्मं फलं पञ्चसहस्रभक्ते।
रुद्राहते शक्रहृतेऽथवा स्यात् स्थूलं फलं तद्व्यवहारयोग्यम्॥ ४४॥
घनीकृतव्यासदलं निजैकविंशांशयुग्गोलघनं फलं स्यात्।

अथवा—व्यास के वर्ग को ३९२७ से गुणा करके ५००० के भाग देने से सूक्ष्मक्षेत्रफल होता है तथा वर्ग को ११ से गुणाकर १४ के भाग देने से स्थूल क्षेत्रफल होता है, यह भी व्यवहारोपयुक्त होता है। व्यास के घन के आधे में अपना (उसीका) २१ वाँ भाग जोड़ देने से गोल का घनफल होता है॥४४-४४½॥

शरजीवानयनाय करणसूत्रं सार्द्धवृत्तम्—

ज्याव्यासयोगान्तरघातमूलं व्यासस्तदूनो दलितः शरः स्यात्॥ ४५॥

व्यासाच्छरोनाच्छरसंगुणाच्च मूलं द्विनिघ्नं भवतीह जीवा
जीवार्द्धवर्गे शरभक्तयुक्ते व्यासप्रमाणं प्रवदन्ति वृत्ते ॥ ४६ ॥

जीवा और व्यास के योग और अन्तर के घात का जो मूल हो उसे व्यास में घटा कर शेष का आधा शर होता है तथा व्यास में शर घटा कर शेष को शर से ही गुना कर जो मूल हो उसको दूना करने से जीवा होती है और जीवा के आधे का वर्ग करके उसमें शर का भाग देकर लब्धि में शर को जोड़ने से वृत्त का व्यास मान होता है ॥ ४५–४६ ॥

उदाहरण — दशविस्तृतिवृत्तान्तर्यत्र ज्या षण्मिता सखे।
तत्रेषुं वद बाणज्ज्यां ज्याबाणाभ्यां च विस्तृतिम् ॥ १ ॥

जिस वृत्त का व्यास १० है उसमें यदि जीवा का मान ६ है तो शर का प्रमाण क्या होगा ? तथा शर का ज्ञान हो तो जीवा बताओ। एवं जीवा और शर जानकर व्यास मान बताओ।

अथ वृत्तान्तस्त्र्यस्रादिनवास्रान्तक्षेत्राणां भुजानयनाय सूत्रम्—

त्रिद्व्यङ्काग्निनभश्चन्द्रै- स्त्रिबाणाष्टयुगाष्टभिः।
वेदाग्निबाणखाश्वैश्च खखाभ्राभ्ररसैः क्रमात् ॥ ४५ ॥
बाणेषुनखबाणैश्च द्विद्विनन्देषुसागरैः।
कुरामदशवेदैश्च वृत्तव्यासे समाहते ॥ ४६ ॥
खखखाभ्रार्कसम्भक्ते लभ्यन्ते क्रमशो भुजाः।
वृत्तान्तस्त्र्यस्रपूर्वाणां नवास्रान्तं पृथक् पृथक् ॥ ४७ ॥

जिस वृत्त के असमत्रिभुजादि के भुजमान जानना हो उस वृत्त के व्यास को क्रम से १०३९२३। ८४८५३। ७०५३४। ६००००। ५२०५५। ४५९२२। ४१०३१ इन संख्याओं से पृथक् गुना कर सब गुणनफल पृथक् १२०००० के भाग देने से लब्धि पृथक् पृथक् क्रम से, वृत्तान्तर्गत समत्रिभुज, समचतुर्भुज, समपञ्चभुज, समषड्भुज, समसप्तभुज, समाष्टभुज, समनवभुज क्षेत्र के भुजमान होते हैं ॥ ४५–४७ ॥

उदाहरण — सहस्रद्वितयव्यासं यद्वृत्तं तस्य मध्यतः।
समत्र्यस्रादिकानां मे भुजान् वद पृथक् पृथक् ॥ १ ॥

जिस वृत्त का व्यास २००० है उसमें समत्रिभुज आदि समनवभुज क्षेत्र को पृथक् पृथक् बताओ।

अथ स्थूलजीवाज्ञानार्थं लघुक्रियाकरणसूत्रं वृत्तम्—

चापोननिघ्नपरिधिः प्रथमाह्वयः स्यात् पञ्चाहतः परिधिवर्गचतुर्थभागः।
आद्योनितेन खलु तेन भजेच्चतुर्घ्नव्यासाहतं प्रथममाप्तमिह ज्यका स्यात् ॥ ४८ ॥

चाप को परिधि में घटाकर शेष को चाप से गुना करने से जो हो उसका नाम प्रथम (आद्य) रखना। परिधि के वर्ग के चतुर्थांश को ५ से गुनाकर गुणनफल में आद्य को घटाकर शेष से चतुर्गुणित व्यास से गुने हुए प्रथम में भाग देने से लब्धि जीवा होती है ॥ ४८ ॥

उदाहरणम्— अष्टादशांशेन वृतेः समानमेकादिनिघ्नेन च यत्र चापम्।
पृथक् पृथक् तत्र वदाशु जीवां खार्कैमितं व्यासदलं च यत्र ॥ १ ॥

जिस वृत्त का व्यःसार्ध १२० (अर्थात् व्यास २४०) है उस वृत्त के अष्टादशांश क्रम से १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ से गुणित यदि चापमान हों तो पृथक् पृथक् सब की जीवा बताओ।

अथ चापानयनाय करणसूत्रं वृत्तम्—

व्यासाब्धिघातयुतमौर्विकया विभक्तो जीवाङ्घ्रिपञ्चगुणितः परिधेस्तु वर्गः।
लब्धोनितात् परिधिवर्गचतुर्थभागादाप्तेपदे वृतिदलात् पतिते धनुः स्यात् ॥ ४९ ॥

परिधि के वर्ग को पञ्चगुणित जीवा के चतुर्थांश से गुनाकर गुणनफल में चतुर्गुणित व्यास से युक्त जीवा के भाग देने से लब्धि को परिधिवर्ग के चतुर्थांश में घटाकर शेष का जो मूल हो उसको परिधि के आधे में घटाने से चाप का मान होता है ॥ ४९ ॥

उदाहरण— विहिता इह ये गुणास्ततो वद तेषामधुना धनुर्मितिम्।
यदि तेऽस्ति धनुर्गुणक्रियागणिते गाणितिकातिनैपुणम् ॥ १ ॥

अभी २४० व्यासवाले वृत्त में जो जीवाएँ बनाई हैं हे गणितज्ञ ? यदि तुम्हें गणित में अति निपुणता है तो उनके चापमान बताओ।

अथ खातव्यवहारे करणसूत्रं सार्द्धार्या—

गणयित्वा विस्तारं बहुषु स्थानेषु तद्युतिर्भाज्या।
स्थानकमित्या सममितिरेवं दैर्घ्ये च वेधे च ॥ १ ॥
क्षेत्रफलं वेधगुणं खाते धनहस्तसङ्ख्या स्यात्।

जिस घात में दैर्घ्य (लम्बाई) सर्वत्र समान नहीं हो, अथवा विस्तार मान या वेध (गहराई) के मान भी सर्वत्र समान नहीं हो वहाँ विस्तार को अनेक (२, ३ या अधिक) स्थान में नापकर उनके योग में स्थान मान (जितने स्थान में नापे गये हों उस सङ्ख्या) के भाग देने से विस्तार का सममान होता है। इसी प्रकार दैर्घ्य और वेध का भी सममान बनाना। फिर क्षेत्रफल (सम दैर्घ्य और विस्तार के घात) को सम वेध से गुणा करने से घन हस्तमान होते हैं ॥ १ ॥

उदाहरण— भुजवक्रतया दैर्घ्यं दशेशार्ककरैर्मितम्।
त्रिषु स्थानेषु षट्पञ्चसप्तहस्ता च विस्तृतिः ॥ १ ॥
यस्य खातस्य वेधोऽपि द्विचतुस्त्रिकरः सखे !।
तत्र खाते कियन्तः स्युर्घनहस्तान् प्रचक्ष्व मे ॥ २ ॥

किसी खात में टेढ़े होने के कारण दैर्ध्यमान १०।११, और १२ हाथ हैं। तथा तीन स्थान में विस्तार भी ५, ६, ७ हाथ तीन प्रकार हैं। एवं वेध भी तीन प्रकार २, ३, ४ हाथ हैं तो उस खात में कितने घन हस्त होंगे बताओ ॥

खातान्तरे करणसूत्रं सार्धवृत्तम्—

मुखजतलजतद्युतिजक्षेत्रफलैक्यं हृतं षड्भिः ॥ १ ॥

क्षेत्रफलं सममेवं वेधहतं घनफलं स्पष्टम्।
समखातफलत्र्यंशः सूचीखाते फलं भवति ॥ २ ॥

जिस खात के ऊपर दैर्घ्य के विस्तार से नीचे के दैर्घ्य विस्तार न्यून वा अधिक हो वहाँ ऊपर के क्षेत्रफल तथा नीचे के क्षेत्रफल और ऊपर तथा नीचे के दैर्घ्य विस्तार के योग से जो क्षेत्रफल हो उन तीनों के योग में ६ का भाग देने से समक्षेत्र फल होता है। उसको वेध से गुना करने से घनफल होता है। समखातफल का तृतीयांश सूचीखात का घनफल होता है।

उदाहरण— **मुखे दशद्वादशहस्ततुल्यं विस्तारदैर्घ्यं तु तले तदर्धम्।**
यस्याः सखे! सप्तकरश्च वेधः का खातसंख्या वद तत्र वाप्याम् ॥

जिस खात के ऊपर विस्तार = १० हाथ, दैर्घ्य १२ हाथ है, तथा नीचे विस्तार ५ और दैर्घ्य ६ हाथ है और वेध ७ है, उस खात की घनहस्त संख्या बताओ।

उदाहरण— **खातेऽथ तिग्मकरतुल्यचतुर्भुजे च किं स्यात् फलं नवमितः किल यत्र वेधः।**
वृत्ते तथैव दशविस्तृतिपञ्चवेधे सूचीफलं वद तयोश्च पृथक्-पृथक् मे ॥

जिस तुल्य चतुर्भुज खात में भुजमान १२ और वेध ९ हाथ है, उसका घनफल क्या होगा?। तथा जिस वृत्तरूप खात में व्यास १० और वेध ५ है उसका घनफल क्या होगा?। तथा दोनों क्षेत्र के सूची खात में घनफल कितने-कितने होंगे, ये भी अलग-अलग बताओ।

इति खातव्यवहारः समाप्तः।

अथ चितिव्यवहारे करणसूत्रम्—

उच्छ्रयेण गुणितं चितेः किल क्षेत्रसम्भवफलं घनं भवेत्।
इष्टिकाघनहृते घने चितेरिष्टिकापरिमितिश्च लभ्यते ॥ १ ॥
इष्टिकोच्छ्रयहृदुच्छ्रितिश्चितेः स्युः स्तराश्च दृषदां चितेरपि।

इकट्ठे चिने (जोड़े) हुए ईंट के समूह को चिति कहते हैं उस चिति के क्षेत्रफल को चिति की उँचाई से गुना करने से चिति का घन फल होता है। चिति के घनफल में ईंटे के घन के भाग देने से ईंट की संख्या होती है और चिति की उँचाई के भाग देने से लब्धि स्तर (तह) की संख्या होती है। पत्थल के टुकड़े की चिति का फल भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

उदाहरण— **अष्टादशाङ्गुलं दैर्घ्यं विस्तारो द्वादशाङ्गुलः।**
उच्छ्रितिस्त्र्यङ्गुला यस्यामिष्टिकास्ताश्चितौ किल ॥ १ ॥
यद्विस्तृतिः पञ्चकराष्टहस्तं दैर्घ्यञ्च यस्यां त्रिकरोच्छ्रितिश्च।
तस्यां चितौ किं फलमिष्टिकानां संख्या च का ब्रूहि कति स्तराश्च? ॥२॥

जिस ईंटे की लम्बाई १८ अंगुल, चौड़ाई १२ अंगुल, उँचाई ३ अंगुल है, इस प्रकार के ईंटे की एक चिति है जिसकी विस्तृति (चौड़ाई) ५ हाथ, लम्बाई ८ हाथ और उँचाई ३ हाथ है। उस चिति में ईंटे की संख्या कितनी है ? और कितने स्तर (नीचे से ऊपर तक की पंक्ति) हैं ? बताओ।

इति चितिव्यवहारः।

अथ क्रकचव्यवहारे करणसूत्रं वृत्तम्—

पिण्डयोगदलमग्रमूलयोर्दैर्घ्यसङ्गुणितमङ्गुलात्मकम्।
दारुदारणपथैः समाहतं षट्स्वरेषुविहृतं करात्मकम् ॥ १ ॥

जिस काष्ठ की चिराई का प्रमाण जानना हो उसके अग्र और मूल के मोटाई के योग का आधा करके उसे काष्ठ की लम्बाई से गुना करें गुणनफल को फिर जितनी जगह चीड़े गये हों उतनी संख्या से गुना करें यदि मान अंगुलात्मक हो तो उसमें ५७६ के भाग देने से हस्तात्मक मान समझना। यदि हस्तात्मक मान हो तो उक्त विधि से गुणनफल हस्तात्मक ही होता है ॥ १ ॥

उदाहरण— मूले नखाङ्गुलमितोऽथ नृपाङ्गुलोऽग्रे पिण्डः शताङ्गुलमितं किल यस्य दैर्घ्यम्।
तद्दारुदारणपथेषु चतुर्षु किं स्याद्धस्तात्मकं वद सखे! गणितं द्रुतं मे ॥१ऽऽ॥

जिस काष्ठ के मूल में २० अंगुल, और अग्रभाग में १६ अंगुल मोटाई है तथा लम्बाई १०० अंगुल है उस लकड़ी को यदि ४ जगह चीरे गये तो हस्तात्मक फल क्या होगा ? शीघ्र बताओ।

क्रकचान्तरे करणसूत्रं सार्धवृत्तम्—

छिद्यते तु यदि तिर्यगुक्तवत् पिण्डविस्तृतिहतेः फलं तदा।
इष्टिकाचितिदृषच्चितिखातक्राकचव्यवहृतौ खलु मूल्यम् ॥
कर्मकारजनसम्प्रतिपत्त्या तन्मृदुत्वकठिनत्ववशेन ॥ २ ॥

यदि काष्ठको तिरछा (चौड़ाई) चीरा जाय तो पिण्डमान को विस्तार (चौड़ाई) मान से गुनाकर गुणनफल को दारणपथ संख्या से गुना करने से फल होता है। इस प्रकार ईंटे के समूह, पत्थर के समूह या काष्ठ के चीरने आदि व्यवहार में उन वस्तुओं की मृदुता और कठिनता तथा कार्य करने वाले की योग्यता के अनुसार मूल्य निर्धारित होता है।

उदाहरण— यद्विस्तृतिर्दन्तमिताङ्गुलानि पिण्डस्तस्था षोडश यत्र काष्ठे।
छेदेषु तिर्यङ्नवसु प्रचक्ष्व किं स्यात् फलं तत्र करात्मकं मे ॥ १ ॥

जिस काष्ठ की विस्तृति (चौड़ाई) ३२ अंगुल और मोटाई १६ अंगुल है उसको चौड़ाई में ९ स्थान में छेदन किया जाय तो हस्तात्मक फल क्या होगा ? मुझे बताओ।

इति क्रकचव्यवहारः।

अथ राशिव्यवहारे करणसूत्रं वृत्तम्—

अनणुषु दशमांशोऽणुष्वथैकादशांशः परिधिनवमभागः शूकधान्येषु वेधः।
भवति परिधिषष्ठे वर्गिते वेधनिघ्ने घनगणितकराः स्युर्मागधास्ताश्च खार्यः ॥ १ ॥

(समतल भूमि में ढेर लगाये हुए धान्य (अन्न) की परिधि से उसकी उँचाई समझकर अन्न का परिमाण जानना राशि व्यवहार कहलाता है) स्थूल (मक्का-धान आदि) अन्न की परिधि का दशमांश उँचाई, तथा सूक्ष्म (सरसो, अलसी आदि) अन्न की परिधि का एकादशांश और शूकवाला (यव आदि) अन्न के ढेर की परिधि का नवांश वेध (उँचाई) समझना। परिधि के षष्ठांश का वर्ग करके उसको वेध (उँचाई) से गुना करने से घन हस्त प्रमाण होता है, वही मगध देश में खारी कहलाती है।

उदाहरण— समभुवि किल राशिर्यः स्थितः स्थूलधान्यः
परिधिपरिमितिः स्याद्धस्तषष्टिर्यदीया।
प्रवद गणक! खार्यः किं मिताः सन्ति तस्मि-
न्नथ पृथगणुधान्यैः शूकधान्यैश्च शीघ्रम् ॥ १ ॥

समतल भूमि में रक्खे हुए स्थूलधान्य की परिधि यदि ६० हाथ है तो उसमें कितने घनहस्त (खारी के प्रमाण) होंगे बताओ। तथा सूक्ष्मधान्य और शूकधान्य की परिधि भी यदि ६० हाथ हो तो उनके अलग अलग खारी प्रमाण बताओ।

द्विवेदसत्रिभागैकनिघ्नात् तु परिधेः फलम्।
भित्त्यन्तर्बाह्यकोणस्थराशेः स्वगुणभाजितम् ॥ २ ॥

भित्ति (दीवाल) में लगे हुए धान्य की ढेरी की परिधि को २ से गुनाकर उस पर से जो फल हो उसमें २ के भाग देने से खारी का प्रमाण होता है। घर के अन्दर वाले कोण में लगे हुए धान्य को ढेरी की परिधि को ४ से गुनाकर उस पर से जो फल हो उसमें ४ के भाग देने से खारीमान होता है। एवं बाहर कोण में लगे हुए ढेर की परिधि को $\frac{4}{3}$ से गुनाकर उस पर से पूर्वोक्त विधि से जो घनहस्त हो उसमें $\frac{4}{3}$ का भाग देने से लब्धि खारी का प्रमाण होता है ॥ २ ॥

उदाहरण— परिधिर्भित्तिलग्नस्य राशेस्त्रिंशत्करः किल।
अन्तःकोणस्थितस्यापि तिथितुल्यकरः सखे! ॥ १ ॥
बहिष्कोणस्थितस्यापि पञ्चघ्ननवसम्मितः।
तेषामाचक्ष्व मे क्षिप्रं घनहस्तान् पृथक् पृथक् ॥ २ ॥

भित्त में लगे हुए धान्य की परिधि ३० हाथ है, अन्तःकोण में लगे हुए की परिधि १५ हाथ, तथा बाह्यकोण स्थित धान्य की परिधि ४५ हाथ है तो इनके पृथक् पृथक् घनहस्त मान बताओ।

इति राशिव्यवहारः समाप्तः।

अथ छायाव्यवहारे करणसूत्रम्—

छाययोः कर्णयोरन्तरे ये तयोर्वर्गविश्लेषभक्ता रसाद्रीषवः ।
सैकलब्धेः पदघ्नं तु कर्णान्तरं भान्तरेणोनयुक्तद्दले स्तः प्रभे ॥ १ ॥

दोनों छाया के अन्तर और दोनों कर्ण के अन्तर जो हों उन दोनों के वर्गान्तर से ५७६ में भाग देकर लब्धि में १ जोड़कर जो मूल हो उस मूल से कर्ण के अन्तर को गुनाकर गुणनफल में पृथक् छायान्तर को जोड़ और घटाकर आधा करने से दोनों छाया के मान होते हैं ॥ १ ॥

उदाहरण— नन्दचन्द्रैर्मितं छाययोरन्तरं कर्णयोरन्तरं विश्वतुल्यं ययोः ।
ते प्रभे वक्ति यो युक्तिमान् वेत्यसौ व्यक्तमव्यक्तयुक्तं हि मन्येऽखिलम् ॥

दो छायों का अन्तर १९ और दो कर्ण का अन्तर १३ है ? उन दोनों छाया के मान को जो बतावे वह व्यक्त और अव्यक्तगणित में निपुण है ऐसा मैं समझता हूँ ।

छायान्तरे करणसूत्रम्—

शङ्कुः प्रदीपतलशङ्कुतलान्तरघ्नश्छायाभवेद्विनरदीपशिखोच्चयभक्तः ।

दीपतल और शंकुतल के बीच जो भूमिमान हो उससे शंकु को गुना करे, गुणनफल में शंकून दीपोच्छ्रिति के भाग देने से छाया का मान होता है ॥

उदाहरण— शङ्कुप्रदीपान्तरभूस्त्रिहस्ता दीपोच्छ्रितिः सार्धकरत्रया चेत् ।
शङ्कोस्तदाऽर्काङ्गुलसम्मितस्य तस्य प्रभा स्यात् कियती वदाशु ॥ १ ॥

शङ्कु और दीप के बीच भूमिमान ३ हाथ और दीप की ऊँचाई $\frac{7}{2}$ है तो १२ अङ्गुल अर्थात् ($\frac{1}{2}$ हाथ) शङ्कु की छाया क्या होगी ?

दीपोच्छ्रित्यानयनाय सूत्रम्—

छायाहृते तु नरदीपतलान्तरघ्ने शङ्कौ भवेन्नरयुते खलु दीपकौच्च्यम् ॥ २ ॥

शङ्कु को शङ्कुदीपान्तर भूमि से गुना करके गुणनफल में छाया से भाग देकर लब्धि में शङ्कु को जोड़ने से दीपोच्छ्रिति होती है ॥ २ ॥

उदाहरण— प्रदीपशङ्क्वन्तरभूस्त्रिहस्ता छायाऽङ्गुलैः षोडशभिः समा चेत् ।
दीपोच्छ्रितिः स्यात् कियती वदाशु प्रदीपशङ्क्वन्तरमुच्यतां मे ॥ १ ॥

शङ्कुदीपान्तर भूमि ३ हाथ और छाया १६ अङ्गुल है तो दीप की उँचाई कितनी होगी ? तथा दीप की ऊँचाई जानकर शङ्कुदीपान्तर भूमिमान भी बताओ ॥

प्रदीपशङ्क्वन्तरभूमेरानयनाय सूत्रम्—

विशङ्कुदीपोच्छ्रयसंगुणा भा शङ्कूद्धृता दीपनरान्तरं स्यात् ।

दीपोच्छ्रिति में शङ्कु को घटाकर शेष से छाया को गुनाकर उसमें शङ्कु का भाग देने से लब्धि शङ्कुदीपान्तरभूमिमान होता है ॥

छायाप्रदीपान्तरदीपौच्च्यानयनाय सूत्रम्—

छायाग्रयोरन्तरसंगुणा भा छायाप्रमाणान्तरहृद्भवेद्भूः ॥ ३ ॥
भूशङ्कुघातः प्रभया विभक्तः प्रजायते दीपशिखौच्च्यमेवम् ।
त्रैराशिकेनैव यदेतदुक्तं व्याप्तं स्वभेदैर्हरिणेव विश्वम् ॥ ४ ॥

छाया को छायाग्र के अन्तरभूमान से गुना करके गुणनफल में छायाप्रमाण अन्तर से भाग देने से लब्धि भूमि (छायाग्र से दीपतलपर्यन्त भू) होती है ! फिर भूमि और शङ्कु का घात करना उसमें छाया से भाग देने से दीपशिखा की उँचाई होती है । पीछे जितने गणित कहे गये हैं सब त्रैराशिक से ही व्याप्त हैं अर्थात् सब त्रैराशिक के ही भेद हैं । जैसे विष्णु भगवान् अपने भेद से विश्व को व्याप्त किये हुए हैं ॥३–४॥

उदाहरण— शङ्कोर्भाऽर्कमिताङ्गुलस्य सुमते ! दृष्टा किलाऽष्टाङ्गुला
छायाग्राभिमुखे करद्वयमिते न्यस्तस्य देशे पुनः ।
तस्यैवार्कमिताङ्गुला यदि तदा छायाप्रदीपान्तरं
दीपौच्च्यं च कियद्वद व्यवहृतिं छायाभिधां वेत्सि चेत् ॥ १ ॥

हे सुमते ! द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छाया ८ अङ्गुल थी, फिर उसी शङ्कु को छायाग्र की तरफ २ हाथ बढ़ाकर रखने से दूसरी छाया १६ अङ्गुल हुई तो छायाग्र और दीपतल का अन्तर भूमिमान बताओ । तथा यदि तुम छायाव्यवहार जानते हो तो यह भी बताओ कि दीप की उँचाई कितनी होगी ? ।

यत्किञ्चिद्गुणभागहारविधिना बीजेऽत्र वा गण्यते
तत् त्रैराशिकमेव निर्मलधियामेवावगम्यं विदाम् ।
एतद्यद्बहुधाऽस्मदादिजडधीधीवृद्धिबुद्ध्या बुधै-
स्तद्भेदान् सुगमान् विधाय रचितं प्राज्ञैः प्रकीर्णादिकम् ॥ ५ ॥

बीजगणित या इस (पाटीगणित) में जो कुछ भी गणित कहे गये हैं वे निर्मल बुद्धिवालों के लिये त्रैराशिक ही समझना चाहिए । हमारे ऐसे मन्द बुद्धियों के लिए उसी त्रैराशिक के भेद को सुगम बनाकर अनेक प्रकार पूर्वाचार्यों ने दिखलाये हैं ॥

इति श्रीभास्कराचार्यविरचितायां लीलावत्यां छायाधिकारः समाप्तः ।

अथ कुट्टके करणसूत्रम् —
प्रश्नस्य शुद्धाशुद्धिज्ञानोपायः—

भाज्यो हारः क्षेपकश्चापवर्त्यः केनाप्यादौ सम्भवे कुट्टकार्थम् ।
येनच्छिन्नौ भाज्यहारौ न तेन क्षेपश्चेतद् दुष्टमुद्दिष्टमेव ॥ १ ॥

सम्भव हो तो कुट्टक करणार्थ किसी अङ्क से भाज्य हर और क्षेपक को अपवर्तन देना । जिस अङ्क से भाज्य और हर में अपवर्तन लगै उससे यदि क्षेपक में अपवर्तन नहीं लगे तो उस प्रश्न को ही अशुद्ध समझना चाहिए ॥

द्वयोः संख्ययोर्महत्तमापवर्तनज्ञानाय सूत्रम्—

परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः शेषस्तयोः स्यादपवर्तनं सः ।
तेनापवर्त्तेन विभाजितौ यौ तौ भाज्यहारौ दृढसंज्ञकौ स्तः ॥ २ ॥

जिन दो संख्याओं का महत्तमापवर्तन निकालना हो उन दोनों में परस्पर भाग देने से जो अन्तिम शेष बचे वही दोनों अङ्कों का महत्तमापवर्तन होता है । उससे दोनों में भाग देने से दोनों दृढ़ संज्ञक होते हैं, अर्थात् उन दोनों (हर और भाज्य) में फिर दूसरे अङ्क का अपवर्तन नहीं हो सकता है इसलिये उन हर और भाज्य को दृढ़संज्ञक समझना और उसपर से आगे के सूत्रानुसार गुण और लब्धि समझना चाहिए ॥ २ ॥

गुणलब्धिज्ञानार्थं सूत्रं वृत्तत्रयम्—

मिथो भजेत् तौ दृढभाज्यहारौ यावद्विभाज्ये भवतीह रूपम् ।
फलान्यधोऽधस्तदधो निवेश्यः क्षेपस्तथाऽन्ते खमुपान्तिमेन ॥ ३ ॥
स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम् ।
ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण ॥ ४ ॥
एवं तदैवाऽत्र यदा समास्ताः स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम् ।
यदागतौ लब्धिगुणौ विशोध्यौ स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौ स्तः ॥ ५ ॥

उन दोनों दृढ़ भाज्य और हर में तब तक परस्पर भाग देवे जब तक भाज्य में १ न बचे तथा लब्धियों को क्रम से नीचे नीचे रखता जाय । उसके नीचे क्षेपक और क्षेपक के नीचे शून्य रक्खे, फिर उपान्तिम अङ्क से उसके अपने ऊपर वाले अंक को गुणा करके अन्तिम अंक को जोड़ें और अन्तिम अंक को त्याग देवै, फिर इसी प्रकार उपान्तिम को अन्त्य और उसके ऊपर के अंक को उपान्त्य कल्पना कर उक्त विधि से क्रिया करे, जब तक पंक्ति में दो संख्या न बच जाय । उन दोनों में ऊपरवाले अंक में दृढ़ भाज्य से भाग देने से जो शेष बचे उसे गुणक (प्रश्न का उत्तर) समझना चाहिये । परञ्च इस प्रकार लब्धि और गुणक तभी समझे जब (पहिले भाज्य हर में परस्पर भाग देने में) लब्धि संख्या सम हो, यदि लब्धियों की संख्या विषम हो तो उक्तविधि से साधित लब्धि गुणक को अपने अपने तक्षण् में (अर्थात् भाज्य और हर में) घटाने से शेष तुल्य वास्तव लब्धि और गुणक होते हैं ।

उदाहरणः— एकविंशतियुतं शतद्वयं यद्गुणं गणक ! पञ्चषष्टियुक् ।
पञ्चवर्जितशतद्वयोद्धृतं शुद्धिमेति गुणकं वदाशु तम् ॥ १ ॥

२२१ को जिस संख्या से गुणन करके ६५ जोड़कर १९५ से भाग देने पर निःशेष हो उस गुणक को शीघ्र बताओ ।

कुट्टकान्तरे करणसूत्रम्—

भवति कुट्टविधेर्युतिभाज्ययोः समपवर्त्तितयोरपि वा गुणः ।
भवति यो युतिभाजकयोः पुनः स च भवेदपवर्त्तनसङ्गुणः ॥ ६ ॥

सम्भव हो तो किसी समान अंक से भाज्य और क्षेपक में अपवर्तन देकर भी उक्त विधि से गुणक वास्तव होता है, तथा क्षेप और हर को अपवर्तित करके जो उक्तविधि से गुणक होता है उसको अपवर्तनांक से गुणा करने से वास्तव गुणक समझना चाहिए ॥ ६ ॥

उदाहरण— शतं हतं येन युतं नवत्या विवर्जितं वा विहृतं त्रिषष्ट्या ।
निरग्रकं स्याद्वद मे गुणं तं स्पष्टं पटीयान् यदि कुट्टकेऽसि ॥ ३ ॥

१०० को जिस अंक से गुणा करके ९० जोड़ अथवा घटा देते हैं, उसमें ६३ से भाग देते हैं तो निश्शेष हो जाता है, यदि तुम कुट्टक गणित में पटु हो तो उस गुणक को बताओ ।

कुट्टकान्तरेकरणसूत्रम्— क्षेपजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तौ वियोगजे ।

धनात्मक क्षेप में जो लब्धि और गुणक होते हैं उनको अपने-अपने तक्षण (भाज्य और हर) में घटाने से ऋणक्षेप में लब्धि और गुणक होते हैं !

द्वितीय उदाहरण— यद्गुणा गणक ! षष्ठिरन्विता वर्जिता च दशभिः षडुत्तरैः ।
स्यात् त्रयोदशहृता निरग्रका तं गुणं कथय मे पृथक् पृथक् ॥ १ ॥

हे गणक ! ६० को जिस अंक से गुणा करके १६ जोड़कर या घटाकर उसमें १३ से भाग देने से निश्शेष लब्धि होती है, उस गुणक को बताओ ।

कुट्टकान्तरे करणसूत्रम्

गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम् ॥ ७ ॥
हरतष्टे धनक्षेपे गुणलब्धी तु पूर्ववत् ।
क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः शुद्धौ तु वर्जिता ॥ ८ ॥

"ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः" इत्यादि प्रकार से तक्षण करने में फल तुल्य ही लेना चाहिये, अर्थात् तुल्यांक से गुणित ही भाज्य और हर को ऊर्ध्वांक और अधरांक में घटाना चाहिये ।

यदि क्षेप हर अधिक हो तो उसको हर से शेषित करके मानना उस पर से जो उक्त विधि से गुणक और लब्धि हो उसमें गुणक तो वास्तव ही होता है, परञ्च लब्धि में क्षेपक के हर से शेषित करने में जो लब्धि हो उसको जोड़ने से धन क्षेप में और घटाने से ऋण क्षेप में वास्तव लब्धि होती है ॥

उदाहरण— येन सङ्गुणिताः पञ्च त्रयोविंशतिसंयुताः ।
वर्जिता वा त्रिभिर्भक्ता निरग्राः स्युः स को गुणः ? ॥ १ ॥

५ को जिस गुणक से गुणाकर १३ जोड़ या घटाकर ३ से भाग देने से निःशेष होता है, वह गुणक कौन सा है ? ।

कुट्टकान्तरे करणसूत्रम्—

क्षेपाभावोऽथवा यत्र क्षेपः शुद्ध्येद्धरोद्धृतः ।
ज्ञेयः शून्यं गुणस्तत्र क्षेपो हारहृतः फलम् ॥ ९ ॥

जहाँ क्षेप नहीं हो अथवा क्षेप हर से भक्त होने पर निश्शेष होता हो तो वहाँ गुणक ० (शून्य) समझना । तथा क्षेप में हर के भाग से जो लब्धि हो वही लब्धि होती है ॥ ९ ॥

उदाहरण — येन पञ्च गुणिताः खसंयुताः पञ्चषष्टिसहिताश्च तेऽथवा ।
स्युस्त्रयोदशहृता निरग्रकास्तं गुणं गणक ! कीर्त्तयाशु मे ॥ १ ॥

५ को जिस गुणक से गुना करके शून्य अथवा ६५ जोड़ कर १३ के भाग देने से निःशेष होता है । उस गुणक को बताओ ।

सर्वत्र कुट्टके गुणलब्ध्योरनेकधादर्शनार्थं सूत्रम्—

इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते ते वा भवेतां बहुधा गुणाप्ती ॥

'पूर्वविधि से जो गुणक और लब्धि आवे' उन में इष्टगुणित अपने-अपने तक्षण को जोड़ने से अनेक प्रकार गुणक और लब्धि होती है ॥

स्थिरकुट्टके करणसूत्रम्—

क्षेपे तु रूपे यदि वा विशुद्धे स्यातां क्रमाद्ये गुणकारलब्धी ।
अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्न्यौ स्वहारतष्टे भवतस्तयोस्ते ॥ १० ॥

जहाँ क्षेप में बड़ी संख्या हो वहाँ क्रिया लाघवार्थ १ धनक्षेप, वा १ ऋणक्षेप मानकर गुणक और लब्धि साधन करना । उनको अपने अभीष्ट क्षेप से गुना करने से क्रम से गुणक और लब्धि समझे । यदि गुणित गुण लब्धि, हर और भाज्य से अधिक हो जाय तो उसको हर और भाज्य से शेषित करके गुणक और लब्धि जाने ।

अस्य कुट्टकस्य ग्रहगणिते उपयोगस्तदर्थं किञ्चिदुच्यते—

कल्प्याथ शुद्धिर्विकलावशेषं षष्टिश्च भाज्यः कुदिनानि हारः ।
तज्जं फलं स्युर्विकला गुणस्तु लिप्ताग्रमस्माच्च कला लवाग्रम् ॥ ११ ॥
एवं तदूर्ध्वञ्च तथाऽधिमासावमाग्रकाभ्यां दिवसा रविन्द्वोः ॥ १२ ॥

किसी पद्धति के अनुसार ग्रहों के युगादि पठित भगण और अभीष्ट अहर्गण के द्वारा ग्रहसाधन में लब्ध गत भगण, राशि, अंश कला और विकला तक अवयव लेकर विकला शेष का परित्याग कर दिया जाता है । यदि केवल उस विकला शेष का ज्ञान हो तो युगादि कुदिन के ज्ञान से ग्रहों के भगण राश्यादि अवयव और अहर्गण का ज्ञान कुट्टक विधि से हो सकता है, वही रीति यहाँ दिखलाई गई है । जो उपपत्ति और ग्रन्थकार के गद्य को देखने से स्पष्ट है ॥ ११—१२ ॥

संश्लिष्टकुट्टके करणसूत्रम्—

एको हरश्चेद्‌गुणकौ विभिन्नौ तदा गुणैक्यं परिकल्प्य भाज्यम् ।
अग्रैक्यमग्रं कृत उक्तवद्यः संश्लिष्टसंज्ञः स्फुटकुट्टकोऽसौ ॥ १३ ॥

किसी एक ही राशि के भिन्न-भिन्न प्रकार के गुणक और हर एक ही हो वहाँ दोनों गुणक के योग को गुणक, और शेष योग को ऋण क्षेप कल्पना करके उक्त प्रकार से जो गुणक आवै वही अपेक्षित राशि होती है । यहाँ दो भाज्य का एक ही गुणक आता है इसलिये यह संश्लिष्ट कुट्टक कहलाता है । यहाँ लब्धि वास्तव नहीं आती है तथा उसका प्रयोजन भी नहीं होता । अपेक्षा तो गुणक का ही रहता है जिससे गुणित भाज्य हर से निश्शेष हो ॥ १३ ॥

उदाहरण — कः पञ्चनिघ्नो विहृतस्त्रिषष्ट्या सप्तावशेषोऽथ स एव राशिः।
दशाहतः स्याद्विहृतस्त्रिषष्ट्या चतुर्दशाग्रो वद राशिमानम् ॥ १ ॥

किसी अङ्क को ५ से गुनाकर ६३ के भाग देने से ७ शेष, तथा उसी को १० से गुनाकर ६३ के भाग देने से १४ शेष होता है, उस राशि को बताओ ॥ १ ॥

इति लीलावत्यां कुट्टकव्यहारः।

अथ गणितपाशे निर्दिष्टाङ्कैः संख्याया विभेदे करणसूत्रम्—

स्थानान्तमेकादिचयाङ्कघातः संख्याविभेदा नियतैः स्युरङ्कैः।
भक्तोऽङ्कमित्याङ्कसमासनिघ्नः स्थानेषु युक्तो मितिसंयुतिः स्यात् ॥

संख्या के अङ्क नियत (निर्दिष्ट) हों तो संख्या में अङ्क के जितने स्थान हों उतने स्थानपर्यन्त एक आदि अङ्कों का घात संख्या के भेद होते हैं। उस भेद को अङ्कों के योग से गुना कर स्थानाङ्क संख्या से भाग देकर लब्धि का स्थान तुल्य स्थान में एक एक अङ्क बढ़ा कर रख करके योग करने से समस्त संख्या भेदों का योग होता है।

उदाहरण— द्विकाष्टकाभ्यां त्रिनवाष्टकैर्वा निरन्तरं द्वयादिनवावसानैः।
संख्याविभेदाः कति सम्भवन्ति तत्संख्यकैक्यानि पृथग्वदाशु ॥ १ ॥

२ और ८ से दो स्थानवाली संख्या के कितने भेद होंगे ? तथा ३।९।८ इन तीन अङ्कों से कितने भेद होंगे ? एवं २।३।४।५।६।७।८।९ इन आठ अङ्कों से संख्या के भेद क्या होंगे ? तथा पृथक्-पृथक् भेदों के योग कितने कितने होंगे ? शीघ्र बताओ।

उदाहरण — पाशाङ्कुशाहिडमरूककपालशूलैः खट्वाङ्गशक्तिशरचापयुतैर्भवन्ति।
अन्योऽन्यहस्तकलितैः कति मूर्त्तिभेदाः शम्भोर्हरेरिवगदारिसरोजशङ्खैः ॥

(१) पाश, (२) अङ्कुश, (३) सर्प, (४) डमरू, (५) कपाल, (६) त्रिशूल, (७) खट्वाङ्ग, (८) शक्ति, (९) शर, (१०) धनुष इन दशो अस्त्रों को परस्पर दशो हाथ से अदल बदल कर धारण करने से श्रीमहादेव के रूप के कितने भेद होंगे ?। इसी प्रकार (१) गदा, (२) चक्र, (३) कमल, (४) शङ्ख इन चारों को चारों हाथ में अदल बदल कर रखने से विष्णु भगवान् के कितने भेद होंगे ?।

विशेषसूत्रम्— यावत् स्थानेषु तुल्याङ्कास्तद्भेदैस्तु पृथक्कृतैः।
प्राग्भेदा विहृता भेदास्तत्संख्यैक्यश्च पूर्ववत् ॥ २ ॥

संख्या के जितने स्थान में तुल्य (समान) अङ्क हों उतने स्थान के पृथक् भेद बनाकर उससे पूर्व रीति से साधित समस्त भेद संख्या में भाग देने से वास्तव भेद संख्या होती है, उस संख्या का योग पूर्ववत् समझना चाहिए ॥ २ ॥

उदाहरण — द्विद्व्येकभूपरिमितैः कति संख्यकाः स्यु-

स्तासां युतिश्च गणकाशु मम प्रचक्ष्व ।

अम्भोधिकुम्भिशरभूतशरैस्तथाङ्कै-

श्चेदङ्कपाशमितियुक्तिविशारदोऽसि ॥ १ ॥

चार स्थान की संख्या में २।२।१।१ ये चार अंक हैं तो कितनी संख्या बन सकती है, तथा उनका योग भी हे गणक ! मुझे शीघ्र बताओ । तथा ४ । ८ । ५ । ५ । ५ इन पाँचों अङ्क से पाँच स्थानवाली संख्या के कितने भेद होंगे तथा उनका योग भी बताओ, यदि तुम अङ्कपाश के गणित में चतुर हो ।

अनियतांकैरतुल्यैश्च विभेदे करणसूत्रम्—

स्थानान्तमेकापचितान्तिमाङ्कघातोऽसमाङ्कैश्च मितिप्रभेदाः ।

जहाँ अनियत और अतुल्य अङ्क हों वहाँ स्थान पर्यन्त ९ से आरम्भ करके १ घटाकर अङ्कों का घात संख्या का भेद मान होता है ।

उदाहरण— स्थानषट्कस्थितैरङ्कैरन्योन्यं खेन वर्जितैः ।

कति संख्याविभेदाः स्युर्यदि वेत्सि निगद्यताम् ।। १ ।।

शून्य से अतिरिक्त अन्य छः अङ्कों की संख्या के भेद कितने होंगे ? यदि तुम जानते हो तो बताओ ।

अन्यत्करणसूत्रम्—

निरेकमङ्कैक्यमिदं निरेकस्थानान्तमेकापचितं विभक्तम् ॥ ३ ॥

रूपादिभिस्तन्निहतेः समाः स्युः संख्याविभेदा नियतेऽङ्कयोगे ।

नवान्वितस्थानकसंख्यकाया ऊनेऽङ्कयोगे कथितं तु वेद्यम् ॥ ४ ॥

संक्षिप्तमुक्तं पृथुताभयेन नान्तोऽस्ति यस्माद्गणितार्णवस्य ।

जहाँ संख्या के अंकों का योग निर्दिष्ट हो वहाँ अंकयोग में १ घटाकर शेष को निरेक स्थान पर्यन्त एक-एक घटाकर रखै फिर उनमें १ आदि अंकों का भाग देकर उनका घात करै वही (गुणनफल) संख्या के भेद होते हैं । यहाँ यह भी ध्यान रखना कि स्थान संख्या में ९ जोड़ने से जो अंक हो उससे कम ही निर्दिष्ट अंक योग होना चाहिये । यह (गणित) विस्तर भय से मैंने संक्षेप में कहा है । क्योंकि गणित समुद्र का अन्त नहीं है ।। ३–४ ।।

उदाहरण— पञ्चस्थानस्थितैरङ्कैर्यद्योगस्त्रयोदश ।

कतिभेदा भवेत्संख्या यदि वेत्सि निगद्यताम् ।। १ ।।

५ स्थान की संख्या है, जिनके अंकों का योग १३ है उनके कितने भेद होंगे ? यदि तुम जानते हो तो बताओ ।

इति लीलावत्यामंकपाशः ।

अथ ग्रन्थालङ्करणम्—

न गुणो न हरो न कृतिर्न घनः पृष्ठस्तथापि दुष्टानाम् ।
गर्वितगणकबटूनां स्यात्पातोऽवश्यमङ्कपाशेऽस्मिन् ॥ १ ॥

इस अङ्कपाश में न तो गुणक है, न भाजक है, न वर्ग है, न घन है, तथापि अभिमानी परदोषद्रष्टा अल्पमति गणीतज्ञों (ज्यौतिषियों) को इसके प्रश्न पूछने पर अवश्य ही मस्तक नीचे झुक जाता है ॥ १ ॥

येषां सुजावतिगुणवर्गविभूषिताङ्गी, शुद्धाखिलव्यवहृतिः खलु कण्ठसक्ता
लीलावतीह सरसोक्तिमुदाहरन्ती, तेषां सदैव सुखसम्पदुपैति वृद्धिम्

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणौ लीलावतीसंज्ञः पाट्यध्यायः सम्पूर्णः ।

भाग जाति प्रभाग जाति, गुण कर्म, वर्ग कर्म आदि स्पष्टगणित से भूषित है अङ्ग जिसका, शुद्ध है समस्त व्यवहार (श्रेढ़ी आदि व्यवहार) जिसमें सरस वाणी को कहती हुई यह लीलावती जिन छात्रों को कण्ठस्थ होती है उनकी सुख सम्पत्ति सर्वदा बढ़ती रहती है ।
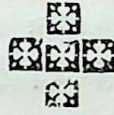
* श्रीभास्करो विजयते *

अथ बीजगणितम् ।

मङ्गलाचरणम्—उत्पादकं यत् प्रवदन्ति बुद्धेरधिष्ठितं सत्पुरुषेण सांख्याः ।

व्यक्तस्य कृत्स्नस्य तदेकबीजमव्यक्तमीशं गणितं च वन्दे ॥ १ ॥

यह पद्य गणेश, प्रकृति, ईश, गणित और पितृ आदि पक्षों में संघटित होता है । यहाँ प्रथम गणेशपक्ष का अर्थ ही दर्शाया गया है ।

अतः प्रथम अर्थ गणेश पक्ष में—मैं जगत के सब व्यक्त पदार्थों के कर्ता, जिस अव्यक्त को पण्डित लोग उस सत्पुरुष से व्याप्त कहते हैं, उस अव्यक्त (अमूर्त-आकाशादि) को व्याप्त करने वाले, अनेक गणों से युत और एकाक्षर बीज मन्त्र वाले बुद्धि के स्वामी गणेश जी की वन्दना करता हूँ, यतः इस अव्यक्त को सिद्धि बुद्धिमात्रैकसाध्य के कारण बुद्धि के स्वामी ऐसा कह कर ही गणेश जी की प्रार्थना करते हैं, क्योंकि आचार्य को यहाँ बुद्धि का विशेष प्रयोजन है ।

इदानीं प्रेक्षावत्प्रवृत्तिहेतुविषयादिचतुष्टयं सङ्गतिं च शालिन्या दर्शयति—

प्रयोजनम्—पूर्वं प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तबीजं प्रायः प्रश्ना नो विनाऽव्यक्तयुक्त्या ।

ज्ञातुंशक्या मन्दधीभिर्नितान्तं यस्मात्तस्माद्वच्मि बीजक्रियां च ॥ २ ॥

अव्यक्त (बीजगणित) है जिस का आदि कारण उस व्यक्त (व्यक्तगणित = लीलावती = पाटी-गणित) को मैंने पहले कह दिया है । किन्तु बीजगणित की युक्तियों के बिना प्रश्नोत्तर करने के प्रकार को पण्डित भी नहीं जान सकते हैं और मन्दबुद्धि तो बिलकुल ही नहीं जान सकते, इसलये बीजक्रिया (बीजगणित) को कहता हूँ ॥ २ ॥

संकलने सूत्रम्—योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा धनर्णयोरन्तरमेव योगः ।

अव्यक्त राशियों को जोड़ने का प्रकार—

दो धन या दो ऋण राशियों का योग करना चाहिए । यदि एक राशि धन और दूसरी ऋण हो तो पूर्वोक्त युक्ति से उन दोनों का अन्तर करने से शेष जो हो वही योगफल होता है ।

उदाहरण — रूपत्रयं रूपचतुष्टयं च क्षयं धनं वा सहितं वदाशु ।

स्वर्णं क्षयं स्वं च पृथक् पृथङ् मे धनर्णयोः सङ्कलनामवैषि ॥ १ ॥

रूप तीन ऋण के साथ रूप चार ऋण का, तीन धन के साथ चार धन का, तीन ऋण के साथ चार धन का या चार धन के साथ तीन ऋण का योगफल क्या होगा यह शीघ्र कहो, यदि धन, ऋण का योग करना जानते हो ।

व्यवकलने सूत्रम्—संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति स्वत्वं क्षयस्तद्युतिरुक्तवच्च ॥ १ ॥

संशोध्यमान (घटने वाली) धनराशि ऋण और ऋण राशि धन हो जाती है ।

उदाहरण — त्रयाद्द्वयं स्वात् स्वमृणादृणं च व्यस्तं च संशोध्य वदाशु शेषम् ।

तीन धन संख्या में से दो धन संख्या को, तीन ऋण संख्या में से दो ऋणसंख्या को, तीन धन संख्या में से दो ऋणसंख्या को और तीन ऋणसंख्या में से दो धनसंख्या को घटा कर शेष क्या रहेगा यह शीघ्र कहो ।

गुणने सूत्रम्—स्वयोरस्वयोः स्वं वधः स्वर्णघाते क्षयो भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम् ।

गुणनविधि में दो राशियां होती है, जिनमें एक का नाम गुण्य और दूसरे का गुणक है । जिसको गुणते हैं उसको गुण्य और जिससे गुणते हैं उसको गुणक कहते हैं । यदि गुण्य गुणक दोनों राशियां धनात्मक या ऋणात्मक हों तो गुणनफल धनात्मक होता है। उन दोनों में से कोई एक धनात्मक और दूसरा ऋणात्मक हो तो गुणनफल ऋणात्मक होता है। भाग क्रिया में भी इसी विधि का अनुशरण करना चाहिए ।

उदाहरण—धनं धनेनर्णमृणेन निघ्नं द्वयं त्रयेण स्वमृणेन किं स्यात् ॥ २ ॥

धन दो को धन तीन से, ऋण दो को ऋण तीन से, ऋण दो को धन तीन से या धन दो को ऋण तीन से गुणा करने से गुणनफल क्या होगा ?

उदाहरण— रूपाष्टकं रूपचतुष्टयेन धनं धनेनर्णमृणेन भक्तम् ।
ऋणं धनेन स्वमृणेन किं स्याद्द्रुतं वदेदं यदि बोबुधीषि ॥ ३ ॥

धन आठ में धन चार का, ऋण आठ में ऋण चार का, धन आठ में ऋण चार का, ऋण आठ में धन चार का भाग देने से लब्धि क्या होगी ? बताओ ।

वर्ग मूले च करणसूत्रम्— कृतिः स्वर्णयोः स्वं स्वमूले धनर्णे ।
न मूलं क्षयस्यास्ति तस्याकृतित्वात् ॥ २ ॥

धनात्मक या ऋणात्मक राशि का वर्ग धनात्मक होता है, किन्तु धनात्मकराशि का वर्गमूल धनात्मक या ऋणात्मक होता है। ऋणराशि का वर्गमूल नहीं होता, क्योंकि वह ऋणात्मक राशि अवर्गात्मक है ।

उदाहरण— धनस्य रूपत्रितस्य वर्गं क्षयस्य च ब्रूहि सखे ममाशु ।
धनात्मकानामधनात्मकानां मूलं नवानां च पृथग्वदाशु ॥ ४ ॥

हे सखे धन तीन और ऋण तीन का वर्ग शीघ्र बताओ । तथा धन नव, ऋण नव का अलग २ शीघ्र मूल बताओ ।

खसंकलनव्यवकले करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति ।

शून्य को किसी राशि में जोड़ने से, शून्य में किसी राशि को जोड़ने से या शून्यको किसी राशि में घटाने से धन ऋण का वैपरीत्य नहीं होता, किन्तु यथा स्थित रहता है । अगर शून्य में कोई राशि घटाई जाय तो धन ऋण का वैपरीत्य हो जाता है। अर्थात् घटाने वाली राशि धन रहे तो ऋण, ऋण रहे तो धन हो जाती है ।

उदाहरण— रूपत्रयं स्वं क्षयगं च खं च किं स्यात् खयुक्तं वद खाच्च्युतं च ।

धन तीन, ऋण तीन, शून्य इन तीनों राशियों में शून्य को जोड़ने से, इन्हीं को शून्य में जोड़ने से या शून्य में इनको घटाने से बताओ क्या फल होगा ?

खगुणादिषु करणसूत्रम्— वधादौ वियत् खस्य खं खेन घाते।
खहारो भवेत् खेन भक्तश्च राशिः ॥ ३ ॥

शून्य को किसी राशि से गुणने से या शून्य से किसी राशि को गुणने से गुणनफल शून्य होता है। शून्य में किसी राशि का भाग देने से लब्धि शून्य मिलती है। किन्तु शून्य से किसी राशि में भाग देने से खहर (शून्य छेद वाली) राशि हो जाती है। उसका मान अनन्त के बराबर होता है।

उदाहरण — द्विघ्नं त्रिहृत् खं खहृतं त्रयं च शून्यस्य वर्गं वद मे पदं च ॥ ५ ॥

शून्य को दो से या दो को शून्य से गुणने से गुणनफल क्या होगा ? एवं शून्य में तीन का भाग देने से या तीन में शून्य का भाग देने से लब्धि क्या मिलेगी ?

तथा शून्य का वर्ग वर्गमूल, घन और घनमूल क्या होगा ?

अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ॥ ४ ॥

पूर्वानीत इस खहर राशि में किसी राशि को जोड़ने से या घटाने से कुछ विकार नहीं होता है। जिस तरह प्रलयकाल में भगवान् परमेश्वर के शरीर में अनेक जीव प्रविष्ट होते हैं और सृष्टिकाल में उनके शरीर से अनेक जीव निकलते हैं, तथापि उस परब्रह्मपरमेश्वर के शरीर नें कुछ भी विकार नहीं होता, अर्थात् ज्यों का त्यों रहते हैं। उसी तरह यह खहर राशि भी है।

अथाव्यक्तकल्पना—

यावत्तावत् कालको नीलकोऽन्यो वर्णः पीतो लोहितश्चैतदाद्याः।
अव्यक्तानां कल्पिता मानसंज्ञास्तत्संख्यानं कर्त्तुमाचार्यवर्यैः ॥ ५ ॥

प्राचीन आचार्यों ने अज्ञात राशियों के मानों का अलग २ बोध तथा गणना के लिये संज्ञा की है। यावत्तावत्, कालक, नीलक, पीतक, लोहितक आदि यहाँ इनके स्थानों में "नामैकदेशेन नामग्रहणं" इस न्याय से लाघव के लिये या, का, नी, पी, लो आदि से गणित करते हैं ॥ ५ ॥

अव्यक्तसंकलनव्यवकलने करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

योगोऽन्तरं तेषु समानजात्योर्विभिन्नजात्योश्च पृथक् स्थितिश्च।

अज्ञात राशियों के योग करने के लिये जो यावत्तावत् आदि वर्ण कल्पना किये हैं, उनमें सजातीय वर्णों का योग और अन्तर होता है, विजातीय वर्णों का नहीं, अर्थात् यावत्तावत् के साथ यावत्तावत् की, नीलक के साथ नीलक इत्यादि का योग और अन्तर होता है।

उदाहरण —स्वमव्यक्तमेकं सखे सैकरूपं धनाव्यक्तयुग्मं विरूपाष्टकं च।
युतौ पक्षयोरेतयोः किं धनर्णे विपर्यस्य चैक्ये भवेत् किं वदाशु ॥ ६ ॥

यावत्तावत् एकरूप एक (१) और यावत्तावत् दो रूप आठ ऋण (२) इन दोनों पक्षों का योग क्या होगा ? तथा पहिले दूसरे पक्षों में धन ऋण चिह्न बदल दिये जायँ, तो योग क्या होगा ?

अन्य उदाहरण — धनाव्यक्तवर्गत्रयं सत्रिरूपं क्षयाव्यक्तयुग्मेन युक्तं च किं स्यात् ।
धनाव्यक्तयुग्माद्दणाव्यक्तषट्कं सरूपाष्टकं प्रोज्झ्य शेषं वदाशु ॥ ७ ॥

रूप तीन से युत धन यावत्तावत् वर्ग तीन और ऋण यावत्तावत् दो इनका योग फल क्या होगा ? धन यावत्तावत् दो में से धन रूप आठ से युत ऋण यावत्तावत् छै को घटाने से शेष शीघ्र बताओ ।

अव्यक्तादिगुणने करणसूत्रं सार्धवृत्तद्वयम्—

स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णो द्वित्र्यादिकानां समजातिकानाम् ॥ ६ ॥
वधे तु तद्वर्गघनादयः स्युस्तद्भावितं चासमजातिघाते ।
भागादिकं रूपवदेव शेषं व्यक्ते यदुक्तं गणिते तदत्र ॥ ७ ॥

रूप वर्ण इन दोनों का घात वर्ण होता है। इसका मतलब यह है कि रूप से वर्ण को या वर्ण से रूप को गुणने से रूप नहीं रहता किन्तु केवल वर्ण ही रहता है ।

गुण्यः पृथग्गुणकखण्डसमो निवेश्यस्तैः
खण्डकैः क्रमहतः सहितो यथोक्त्या ।
अव्यक्तवर्गकरणीगुणनासु चिन्त्यो
व्यक्तोक्तखण्डगुणनाविधिरेवमत्र ॥ ८ ॥

अब 'गुण्यस्त्वधोधो गुणखण्डतुल्यस्तैः खण्डकैः संगुणितो युतो वा" इस पाटीगणितोक्त खण्डगुणन-विधि को स्फुट करते हैं,

जैसे—गुणक के जितने खण्ड किये जायँ उतने स्थानों में अलग २ गुण्य को स्थापन करके प्रथम स्थान में स्थापित गुण्य को प्रथम खण्ड से, द्वितीय स्थान में स्थापित गुण्य को द्वितीय खण्ड से, तृतीय स्थान में स्थापित गुण्य को तृतीय खण्ड से इत्यादि "स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः" इस पूर्वकथित प्रकार से गुणा कर "योगे युतिः स्यात्क्षययोः स्वयोर्वा धनर्णयोरन्तरमेव योगः" इस तरह सभों का योग करने से गुणन फल हो जायगा । तथा अव्यक्त, वर्ग, करणी इन सभों के गुणन में पाटीगणितोक्त खण्डगुणन विधि करना चाहिए ।

उदाहरण— यावत्तावत्पञ्चकं व्येकरूपं यावत्तावद्भिस्त्रिभिः सद्विरूपैः ।
संगुण्य द्राग्ब्रूहि गुण्यं गुणं वा व्यस्तं स्वर्णं कल्पयित्वा तु विद्वन् ॥ ८ ॥

रूप एक से हीन यावत्तावत् पांच को रूप दो से युत यावत्तावत् तीन से गुणा कर गुणनफल क्या होगा ? अथवा धन ऋण को विपरीत कल्पना करके गुणनफल क्या होगा ? शीघ्र कहो ।

भागहारे करणसूत्रं वृत्तम्—

भाज्याच्छेदः शुद्धयति प्रच्युतः सन् स्वेषु स्वेषु स्थानकेषु क्रमेण ।
यैर्यैर्वर्णैः संगुणो यैश्च रूपैर्भागाहारे लब्धयस्ताः स्युरत्र ॥ ९ ॥

यद्यपि पाटीगणित में कथित "भाज्याद्धरः शुद्धयति" इत्यादि प्रकार से यहाँ पर भी भजनविधि चल सकता है: तथापि वर्णों के भजन में कुछ अन्तर होने के कारण फिर उक्त प्रकार से भाग हार का प्रकार लिखते हैं ।

वर्गोदाहरण— रूपैः षड्भिर्वर्जितानां चतुर्णामव्यक्तानां ब्रूहि वर्गं सखे मे ।

हे सखे ऋण रूप छै से वर्जित यावत्तावत् चार का वर्ग क्या होगा ? कहो ॥

वर्गमूले करणसूत्रं वृत्तम्—

कृतिभ्य आदाय पदानि तेषां द्वयोर्द्वयोश्चाभिहतिं द्विनिघ्नीम् ।
शेषात् त्यजेद्रूपपदं गृहीत्वा चेत् सन्ति रूपाणि तथैव शेषम् ॥ १० ॥

अब अव्यक्त राशि के वर्गमूल निकालने का प्रकार कहते हैं, वर्गराशि में जितने अव्यक्त वर्गराशि हों उन सभों का पहले मूल लेकर अलग रक्खे। उन मूलराशियों में से दो दो राशियों के घात को द्विगुणित करके शेष में घटाने से मूल होता है।

अथानेकवर्णषड्विधम्

तत्र संकलनव्यवकलनोदाहरणम्—

यावत्तावत्कालकनीलकवर्णास्त्रिपञ्चसप्तधनम् ।
द्वित्र्येकमितैः क्षयगैः सहिता रहिताः कति स्युस्तैः ॥ १०$\frac{1}{2}$ ॥

धन यावत्तावत् तीन, कालक पांच और नीलक सात, इनको ऋण यावत्तावत् दो कालक तीन और नीलक एक, इनमें जोड़ने और घटाने से शेष क्या होगा ॥

गुणनादि का उदाहरण—यावत्तावत्त्रयमृणं कालकौ नीलकः स्वं
रूपेणाढ्या द्विगुणितमितैस्ते तु तैरेव निघ्नाः ।
किं स्यात् तेषां गुणनभजनफलं गुण्यभक्तं च किं स्याद्
गुण्यस्याथ प्रकथय कृतिं मूलमस्याः कृतेश्च ॥ ११ ॥

धन रूप एक से युत ऋण यावत्तावत् तीन, ऋण कालक दो और धन नीलक एक इनको धन रूप दो से युत ऋण यावत्तावत् छे, ऋण कालक चार और धन नीलक दो इनसे गुणा करने से गुणनफल क्या होगा ? कहो। तथा इसी गुणन फल में गुण्य का भाग देने से लब्धि क्या मिलेगी ? एवं गुण्य का वर्ग और उस वर्ग का मूल क्या होगा ? बताओ।

अथ करणी षड् विधम् ।

तत्र संकलनव्यवकलनयोः करणसूत्रम्—

योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य वधस्य मूलं द्विगुणं लघुं च ।
योगान्तरे रूपवदेतयोः स्तो वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च ॥ ११ ॥
लघ्व्या हृतायास्तु पदं महत्याः सैकं निरेकं स्वहतं लघुघ्नम् ।
योगान्तरे स्तः क्रमशस्तयोर्वा पृथक् स्थितिःस्याद्यदि नास्ति मूलम् ॥१२॥

अत्र पद्यम्— आदौ करण्यावपवर्तनीये तन्मूलयोरन्तरयोगवर्गौ ।
इष्टापवर्ताङ्कहतौ भतौ तौ क्रमेण विश्लेषयुती करण्योः ॥

जिस राशि का पूरा पूरा मूल न मिले। उस मूल के जानने के लिये प्राचीनाचार्यों ने उसका नाम करणी रक्खा है।

जिन दो करणियों के योगान्तर करना हो उनका योग करके उस योगफल को महती फिर उन्हीं करणियों के घात को द्विगुणित करके लघु संज्ञा कल्पना करे। इस तरह आई हुई महती, लघु दोनों करणियों का रूप के समान योग और अन्तर करके। करणियों के गुणन में जो गुण्य, गुणक, हों और भजन में जो भाज्य, भाजक हों, उनको रूप के वर्ग से गुणन भजन, करना चाहिए।

द्वितीय प्रकार—

योज्य, योजक और वियोज्य, वियोजक रूप दो करणियों में जो बड़ी हो उसको महती और जो छोटी हो उसको लघु कल्पना कर फिर महती में लघु का भाग देने से जो लब्धि मिले उसके मूल को दो स्थानों में रखना चाहिए। प्रथम स्थान में एक जोड़ कर, दूसरे स्थान में एक घटाकर जो फल मिले उनके वर्ग को लघु करणी से गुण देने से वे ही उन दोनों के योगान्तर होंगे।

उदाहरण — **द्विकाष्टमित्योस्त्रिभसंख्ययोश्च योगान्तरे ब्रूहि पृथक् करण्योः।**
त्रिसप्तमित्योश्च चिरं विचिन्त्य चेत् षड्विधं वेत्सि सखे करण्याः॥ १२॥

करणी दो करणी आठ का, करणी तीन करणी सत्ताईस का और करणी तीन करणी सात का योग तथा अन्तर अलग २ क्या होगा, अच्छी तरह विचार कर बताओ, अगर करणी षड्विध को जानते हो।

उदाहरण — **द्वित्र्यष्टसंख्या गुणकः करण्यो गुण्यस्त्रिसंख्या च सपञ्चरूपा।**
वधं प्रचक्ष्वाशु विपञ्चरूपे गुणेऽथवा त्र्यर्कमिते करण्यौ॥ १३॥

रूप पाँच युत करणी तीन को करणी दो, करणी तीन, करणी आठ से और रूप पाँच युक्त करणी तीन को रूप पाँच रहित करणी तीन, करणी बारह से गुणा करने से गुणनफल क्या होगा शीघ्र बताओ।

विशेषसूत्रम्— **क्षयो भवेच्च त्र्यरूपवर्गश्चेत् साध्यतेऽसौ करणीत्वहेतोः।**
ऋणात्मिकायाश्च तथा करण्या मूलं क्षयो रूपविधानहेतोः॥ १३॥

ऋण रूप का वर्ग करणी रूप में ऋण होता है और ऋण करणी का मूल रूपात्मक ऋण होता है।

अन्यथोच्यते— **धनर्णताव्यत्ययमीप्सितायाश्छेदे करण्या असकृद्विधाय।**
तादृक्छिदा भाज्यहरौ निहन्यादेकैव यावत् करणी हरे स्यात्॥ १४॥
भाज्यास्तया भाज्यगताः करण्यो लब्धाः करण्यो यदि योगजाः स्युः।
विश्लेषसूत्रेण पृथक् च कार्यास्तथा यथा प्रष्टुरभीप्सिताः स्युः॥ १५॥

विश्लेषसूत्रम्— **वर्गेण योगकरणी विहृता विशुद्धचेत्**
खण्डानि तत्कृतिपदस्य यथेप्सितानि।
कृत्वा तदीयकृतयः खलु पूर्वलब्ध्या
क्षुण्णा भवन्ति पृथगेवमिमाः करण्यः॥ १६॥

द्वितीय उदाहरण में कितने से गुणित भाजक भाज्य में घट सकता है, यह जानना कठिन है अतः "धनर्णता व्यत्ययं" इत्यादि दूसरा प्रकार कहते हैं। भाजक में स्थित करणियों में से किसी एक के धन ऋण चिह्न को बदल कर उस छेद से भाजक और भाज्य को गुण देना चाहिए। इस गुणन क्रिया को तब तक करते रहना चाहिए जब तक छेद में एक ही करणी न हो जाय। जब एक करणी आजाय उस करणी का भाज्य में स्थित करणीयों में भाग देने से जो लब्धि मिले वह इष्ट करणी होगी। अगर लब्ध करणी करणियों के योग आवे तो आगे कहा हुआ विश्लेष सूत्र से प्रश्नकर्ता के इच्छानुसार अलग कर लेना चाहिए॥ १४-१५॥

विश्लेषसूत्र का अर्थ—

जिस वर्गात्मक संख्या के भाग देने से योग करणी निःशेष हो उस के मूल को प्रश्नाकर्ता के इच्छानुसार खण्ड कर उन खण्डों के वर्ग को, योग करणी में वर्ग संख्या का भाग देने से जो लब्धि मिली थी उससे गुण देने से योग करणी के अलग २ खण्ड निकल जायँगे ॥ १६ ॥

उदाहरण — द्विकत्रिपञ्चप्रमिताः करण्यस्तासां कृतिं त्रिद्विकसंख्ययोश्च ।
षट्पञ्चकत्रिद्विकसंमितानां पृथक् पृथङ्मे कथयाशु विद्वन् ॥ १४ ॥
अष्टादशाष्टद्विकसंमितानां कृतीकृतानां च सखे पदानि ॥ $14\frac{1}{2}$ ॥

करणी दो करणी तीन करणी पांच का, करणी तीन करणी दो का, करणी छै करणी पांच करणी तीन करणी दो का, करणी अठारह करणी आठ करणी दो का अलग २ वर्ग और वर्गमूल क्या होगा शीघ्र बताओ ।

करणीमूले सूत्रं वृत्तद्वयम्—

वर्गेकरण्या यदि वा करण्योस्तुल्यानि रूपाण्यथवा बहूनाम् ।
विशोधयेद्रूपकृतेः पदेन शेषस्य रूपाणि युतोनितानि ॥ १७ ॥
पृथक् तदर्धे करणीद्वयं स्यान्मूलेऽथ बह्वी करणी तयोर्या ।
रूपाणि तान्येव कृतानि भूयः शेषाः करण्यो यदि सन्ति वर्गे ॥ १८ ॥

वर्गराशि में स्थित रूप के वर्ग में एक, दो वा अनेक करणी खण्डों को घटा कर शेष के वर्गमूल को रूप में जोड़ना और घटाना चाहिए, उसका आधा करने से मूल की दो करणी हो जायगी। अगर करणी वर्ग राशि में अवशिष्ट करणी रह गई हों तो पूर्वनीत दो करणीयों में से जो बड़ी करणी हो उसको रूप मान कर उक्तवत् क्रिया करें । यहां पर रूपवर्ग में करणी खण्डों को घटाना जो कहा है; वह लघु करणी से आरम्भ करके घटाना चाहिए । क्योंकि इस तरह नहीं घटाने से बड़ी करणी रूप और छोटी मूलकरणी यह नियम न रहेगा । पर कहीं कहीं छोटी करणी रूप और बड़ी मूलकरणी भी होती है ।

अथ वर्गगतर्णकरण्या मूलानयनार्थं सूत्रं वृत्तम्—

ऋणात्मिका चेत् करणी कृतौ स्याद्धनात्मिकां तां परिकल्प्य साध्ये ।
मूले करण्यावनयोरभीष्टा क्षयात्मिकैका सुधियाऽवगम्या ॥ १९ ॥

अगर करणी के वर्गराशि में कोई ऋणकरणी हो तो उसको धन कल्पना करके "वर्गे करण्या यदि वा करण्योस्तुल्यानि रूपाणि" इत्यादि पूर्वसूत्रोक्त प्रकार से दो मूलकरणी लाना चाहिये । इस तरह आनीत उन दो करणीयों में से एक को ऋण कल्पना करे ।अगर वर्गराशि में एक से अधिक करणी ऋणात्मक हों तो मूल करणीयों में से जिस करणी का ऋणात्मक होना सम्भव हो उस को ऋण कल्पना करना चाहिए । एवं जिस वर्गराशि में सब करणियाँ धन हों वहां पर भी एक पक्ष में मूल करणीयों को ऋणात्मक जानना चाहिए ।

उदाहरण— द्विकत्रिपञ्चप्रमिताः करण्यः स्वस्वर्णगा व्यस्तधनर्णगा वा ।
तासां कृतिं ब्रूहि कृतेः पदं च चेत् षड्विधं वेत्सि सखे करण्याः ॥ १६ ॥

करणी दो, करणी तीन, ऋणकरणी पाँच या ऋण करणी दो, ऋणकरणी तीन, धन करणी पाँच का वर्ग और उस का वर्गमूल क्या होगा बताओ, यदि करणी षड्विध जानते हो ।

पूर्वैर्नायमर्थो विस्तीर्योक्तो बालावबोधार्थं तु मयोच्यते—

एकादिसंकलितमितकरणीखण्डानि वर्गराशौ स्युः।
वर्गे करणीत्रितये करणीद्वितयस्य तुल्यरूपाणि॥ २०॥

करणीषट्के तिसृणां दशसु चतसृणां तिथिषु च पञ्चानाम्।
रूपकृतेः प्रोह्य पदं ग्राह्यं चेदन्यथा न सत् क्वापि॥ २१॥

उत्पत्स्यमानयैवं मूलकरण्याऽल्पया चतुर्गुणया।
यासामपवर्त्तः स्याद्रूपकृतेस्ता विशोध्याः स्युः॥ २२॥

अपवर्त्तादपि लब्धा मूलकरण्यो भवन्ति ताश्चापि।
शेषविधिना न यदि ता भवन्ति मूलं तदा तदसत्॥ २३॥

करणी के वर्ग में एक आदि किसी संख्या के संकलित के समान करणी खण्ड होते हैं, अतः करणी वर्ग में यदि तीन करणी खण्ड हों तो मूलानयन के समय रूप वर्ग में दो करणी खण्ड को घटाकर मूल लेना चाहिए। क्योंकि दो का संकलित तीन होता है।यदि वर्ग राशि में छैं करणी खण्ड हो तो तीन करणी खण्डों को घटाकर मूल लेना चाहिए, एवं वर्गराशि में दश करणी खण्ड हों तो रूपवर्ग में चार करणी खण्डों को घटाकर मूल लेना चाहिए। इसी तरह वर्गराशि में पन्द्रह करणी हों तो रूपवर्ग में पाँच करणी खण्डों को घटाकर मूल ग्रहण करना चाहिए। इस तरह जो छोटी मूल करणी उत्पन्न होगी उसको चतुर्गुणित करके उससे जिन करणी खण्डों का अपवर्तन लगे उनको रूप के वर्ग में घटाना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त नियमानुसार रूपवर्ग में करणी खण्डों को घटाने से जो मूल करणी मिलेगी उससे घटाये हुए करणी खण्ड अवश्य निःशेष होंगे। अगर निःशेष न हो तो मूल अशुद्ध है ऐसा जानना चाहिए तथा घटाये हुए करणी के खण्डों में चतुर्गुणित मूल करणी का अपवर्तन देने से जो मूल करणी होगी, यदि वे शेषविधि से न आवें तो वह मूल अशुद्ध जानना चाहिए। अर्थात् रूप के वर्ग में एकादिसंकलितसमान जितने करणी खण्डों का योग घट जाय उनको घटाकर शेष के मूल को रूप में युत ऊन करके आधा करने से, जो दो करणियाँ उत्पन्न हों उनमें छोटी करणी के चतुर्गुणित समसंख्या से उन (घटी) हुई करणियों में भाग देने से जो जो लब्धि मिले वे ही शेषविधि से (वर्गे करण्या यदि वा करण्योस्तुल्यानि रूपाणि) इत्यादि प्रकार से आजाय तो शुद्ध अन्यथा अशुद्ध जानना चाहिए।

उदाहरण— वर्गे यत्र करण्यो दन्तैः सिद्धैर्गजैर्मिता विद्वन्।
रूपैर्दशभिरुपेताः किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात्॥ १७॥

जिस करणी वर्ग में रूप दशके सहित करणी बत्तीस, करणी चौबीस और करणी आठ हैं, उसका क्या मूल होगा बताओ।

उदाहरण— वर्गे यत्रकरण्यस्तिथिविश्वहुताशनैश्चतुर्गुणितैः।
तुल्या दशरूपाढ्याः किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात्॥ १८॥

जिस करणी वर्ग में रूप दश के सहित करणी आठ, करणी बावन, और करणी बारह है, उसका मूल क्या होगा बताओ।

उदाहरणम्— अष्टौ षट्पञ्चाशत् षष्ठिः करणीत्रयं कृतौ यत्र।
रूपैर्दशभिरुपेतं किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात्॥ १९॥

जिस करणी वर्ग राशि में रूप दश के साथ करणी आठ, करणी छप्पन और करणी साठ हैं, उसका मूल क्या होगा।

उदाहरण— **चतुर्गुणाः सूर्यतिथीषुरुद्रनागर्त्तवो यत्र कृतौ करण्यः।**
सत्रिस्वरूपा वद तत्पदं ते यद्यस्ति बीजे पटुताभिमानः ॥ २० ॥

जिस करण वर्गराशि में रूप तेरह से युक्त करणी अड़तालीस, करणी साठ, करणी बीस, करणी चौवालीस, करणी बत्तीस और करणी चौबीस है उसका वर्गमूल क्या होगा बताओ, अगर बीजगणित में पाण्डित्य का अभिमान है।

उदाहरण— **चत्वारिंशदशीतिद्विशतीतुल्याः करण्यश्चेत्।**
सप्तदशरूपयुक्तास्तत्र कृतौ किं पदं ब्रूहि ॥ २१ ॥

जिस करणीवर्ग में रूप सत्तरह से युक्त करणी चालीस, करणी अस्सी और करणी दो सौ है, बताओ इस का मूल क्या होगा।

इति करणीषड्विधम्।

अथ कुट्टकः—

भाज्यो हारः क्षेपकश्चापवर्त्यः केनाप्यादौ सम्भवे कुट्टकार्थम्।
येनच्छिन्नौ भाज्यहारौ न तेन क्षेपश्चेतद्दुष्टमुद्दिष्टमेव ॥ १ ॥

जिस अङ्क से उद्दिष्ट राशि गुणित, इष्ट क्षेप से रहित सहित और भाजक से भाजित होने पर निःशेष हो जाय उसकी कुट्टक संज्ञा मानी गयी है।

इस गणित में जो राशि गुणी जाती है उसको भाज्य, जो जोड़ी या घटाई जाय उसको क्षेप, जिससे भाग दिया जाय उसको हार कहते हैं। तथा वहां पर जो लब्धि आती है उसको लब्धि कहते हैं। कुट्टक के ज्ञान के लिये पहले भाज्य, हार और क्षेप में किसी एक समान संख्या से अपवर्तन देना चाहिए। यदि अपवर्तन देने से भाज्य और हार अपवर्तित हो जाय किन्तु क्षेप उस अङ्क से अपवर्तित न हो तो उस उदाहरण को दुष्ट (अशुद्ध) समझना चाहिये॥

परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः शेषस्तयोः स्यादपवर्त्तनं सः।
तेनापवर्त्तन विभाजितौ यौ तौ भाज्यहारौ दृढसंज्ञितौ स्तः ॥ २ ॥
मिथो भजेत् तौ दृढभाज्यहारौ यावद्विभाज्ये भवतीह रूपम्।
फलान्यधोधस्तदधो निवेश्यः क्षेपस्तथाऽन्ते खमुपान्तिमेन ॥ ३ ॥
स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यज्येन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम्।
ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण ॥ ४ ॥

इसके बाद अपवर्तनाङ्क, दृढभाज्य, दृढहार और दृढक्षेप बनाने के प्रकार को कहते हैं। आपस में दो उद्दिष्ट राशियों के भाग देने से जो शेष बचे वह उनका अपवर्तनाङ्क होता है। अर्थात् उस शेष से उन दोनों राशियों में भाग देने से निःशेष हो जायँगी। अपवर्तनाङ्क से अपवर्तित भाज्य, हार और क्षेप दृढ

संज्ञक कहलाते हैं। अब उन दृढ संज्ञक भाज्य, हार का आपस में परस्पर तब तक भाग देना जब तक भाज्य के स्थान में रूप न हो जाय।

इस तरह जो लब्धि मिलें उन्हें एक के नीचे दूसरी, दूसरी के नीचे तीसरी इस क्रम से लिखना। इनके नीचे क्षेप और क्षेप के नीचे शून्य को लिखना चाहिए। इस तरह अङ्कों की उर्ध्वाधर एक पंक्ति उत्पन्न होगी, इसी का नाम "वल्ली" है।

अब उपान्तिम (अन्त के समीप के अङ्क) से उसके ऊपर वाले अङ्क को गुण देना, उस गुणन फल में अन्त वाले अङ्क को जोड़ देना, बाद अन्त वाले अङ्क को मिटा देना, इस तरह बार बार करने से अन्त में दो राशियाँ आ जायँगी। जब दो राशियाँ आ जाँय तब इस क्रिया को छोड़ देना चाहिए। अब ऊपर वाली राशि को दृढभाज्य से तष्ठित करने से फल लब्धि और नीचे वाली राशि को दृढ हार से तष्टित करने से फल गुण होगा।

एवं तदैवात्र यदा समास्ताः स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम्।
यदागतौ लब्धिगुणौ विशोध्यौ स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौस्तः॥ ५॥

पूर्व कथित प्रकार से आई हुई लब्धियाँ सम संख्यक (दो, चार, छै, आठ आदि) हों तो उक्त प्रकार से आया हुआ गुण और लब्धि यथार्थ होती है। यदि लब्धियाँ विषम (एक, तीन पाँच, सात आदि) हों तो गुण और लब्धि को अपने २ तक्षण (लब्धि को दृढ भाज्य और गुण को दृढ हार) में घटाने से वास्तव गुण और लब्धि होती है॥

भवति कुट्टविधेर्युतिभाज्ययोः समपवर्त्तितयोरथवा गुणः।
भवति यो युतिभाजकयोः पुनः स च भवेदपवर्त्तनसंगुणः॥ ६॥

प्रकारान्तर से गुण लाने का उपाय। अपवर्तन दिये हुए भाज्य और क्षेप से "मिथो भजेत्तौ दृढ-भाज्यहारौ" इस कुट्टकोक्त नियम के अनुसार गुण का ज्ञान होता है, और लब्धि जो ऐसे उदाहरण में आवे उसको अपवर्तनाङ्क से गुणा करने से वास्तव होती हैं। अथवा अपवर्तन का सम्भव होने पर भी न दिया जाय तो भी भाज्य और क्षेप पर से वही गुण आता है। अथवा भाज्य, क्षेप दोनों में अपवर्तन देकर कुट्टकोक्तविधि से गुण आता है, परन्तु लब्धि, भाज्य को गुण से गुण कर क्षेप जोड़ कर हार से भाग देने पर आती है। यदि अपवर्तन का सम्भव हो तो हार और क्षेप में अपवर्तन देकर कुट्टक विधि से जो गुण आवेगा उस को अपवर्तन से गुण देने से वास्तव गुण होगा! यहाँ लब्धि जो आवेगी वही वास्तव होगी।

योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे।
धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे॥ ७॥

धनक्षेप वश जो लब्धि, गुण आवें उसको अपने अपने तक्षण में (गुण को दृढ हार में और लब्धि को दृढ भाज्य में) शोधित करने से ऋण क्षेप में लब्धि, गुण होते हैं। एवं धन भाज्यवश जो लब्धि, गुण आवें उसको तक्षण में घटाने से ऋण भाज्य में लब्धि, गुण होते हैं।

गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्॥

पूर्वोक्त "उर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण" इस प्रकार के अनुसार अपने २ तक्षण से जो लब्धि और गुण तष्टित किया जाता है, उस में समान फल लेना चाहिए।

जैसे दोनों स्थानों में जहाँ थोड़ा तत्क्षण फल मिले उसी के समान दूसरे स्थान में भी फल लेना चाहिए न्यूनाधिक नहीं ।

हरतष्चे धनक्षेपे गुणलब्धी तु पूर्ववत् ॥ ८ ॥
क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः शुद्धौ तु वर्जिता ।

जहाँ पर हार से क्षेप ज्यादा हो वहाँ हार से तष्टित किये क्षेप को क्षेप कल्पना कर के पूर्व कथित नियमानुसार गुण और लब्धि का साधन करना चाहिए । इसमें गुण जो आवे वह वास्तव ही होता है, किन्तु लब्धि को क्षेप से तष्टित करने पर जो फल आवे उससे युक्त करने पर वास्तव होती है ।

ऋण क्षेप में क्षेप को हर से तष्टित करने के बाद "योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे" इसके अनुसार गुण, लब्धि सिद्धि करना चाहिए । इस तरह गुण तो वास्तव ही आवेगा, किन्तु लब्धि, क्षेप से तष्टित करने से जो फल आया हो उसको घटाने से वास्तव होगी । जहाँ पर क्षेप, भाज्य, हार दोनों से न्यून हो वहाँ गुण, लब्धि के तष्टित करने में कहीं फल का वैषम्य (न्यूनाधिक्य) होगा तो इस विधि की प्रवृत्ति न होगी तब "गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्" इसके अनुसार फल ग्रहण करना चाहिए ।

अथ वा भागहारेण तष्टयोः क्षेपभाज्ययोः ।
गुणः प्राग्वत् ततो लब्धिर्भाज्याद्धतयुतोद्धृतात् ॥ ९ ॥

अथवा भाज्य और क्षेप को तष्टित करके कथित रीति से गुण और लब्धि लानी चाहिए । इनमें गुण तो जो आवेगा वही वास्तव होगा, किन्तु लब्धि वास्तव न होगी, वहां पर भाज्य को गुणसे गुणकर, गुणनफल में क्षेप जोड़ कर जो फल मिले उसमें हार से भाग देने से आई हुई लब्धि के समान लब्धि होगी ।

क्षेपाभावोऽथ वा यत्र क्षेपः शुद्धयेद्धरोद्धृतः ।
ज्ञेयः शून्यं गुणस्तत्र क्षेपो हारहृतः फलम् ।
इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते ते वा भवेतां बहुधा गुणाप्ती ॥ १० ॥

जहाँ पर क्षेप न हो अथवा हार के भाग देने से क्षेप निःशेष हो जाय, वहाँ गुण शून्य और क्षेप में हार का भाग देने से जो फल मिले वह लब्धि होगी ।

उदाहरण— **एकविंशतियुतं शतद्वयं यद्गुणं गणकपञ्चषष्टियुक् ।**
पञ्चवर्जितशतद्वयोद्धृतं शुद्धिमेति गुणकं वदाशु तम् ॥ १ ॥

ऐसा कौन गुणक है जिससे दो सौ इक्कीस को गुण देते हैं, और पैंसठ जोड़कर एक सौ पंचान्नबे का भाग देते हैं तो निःशेष हो जाता है ।

उदाहरण— **शतं हतं येन युतं नवत्या विवर्जितं वा विहृतं त्रिषष्टचा ।**
निरग्रकं स्याद्वद मे गुणं तं स्पष्टं पटीयान् यदि कुट्टकेऽसि ॥ २ ॥

ऐसा कौन अङ्क (गुण) है, जिससे एक सौ को गुण देते हैं और उसमें नब्बे जोड़कर तिरसठ का भाग देते हैं तो निःशेष होता हैं ।

उदाहरण— **यद्गुणा क्षयगषष्टिरन्विता वर्तिता च यदि वा त्रिभिस्ततः ।**
स्यात् त्रयोदशहृता निरग्रका तं गुणं गणक मे पृथग् वद ॥ ३ ॥

कौन ऐसा अङ्क है जिससे ऋण साठ को गुण देते हैं, और तीन जोड़ या घटाकर तेरह का भाग देते हैं तो निःशेष हो जाता है ।

ऋणभाज्ये ऋणक्षेपे धनभाज्यविधिर्भवेत्।
तद्वत् क्षेपे ऋणगते व्यस्तं स्याद्दणभाजके॥
धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे।

उद्दिष्ट भाज्य, हार, क्षेप तीनों में कोई एक ऋण, कोई दो ऋण अथवा तीनों ऋण हों तो पहले सबको धन कल्पना कर विशेष क्रिया करनी चाहिए।

उदाहरण — अष्टादशहता केन दशाढ्योवा दशोनिताः।
शुद्धं भागं प्रयच्छन्ति क्षयगैकादशोद्धृताः॥ १०॥

कौन ऐसा अङ्क है, जिससे अठारह को गुणाकर दश जोड़ने या घटाने से जो फल हो उसमें ऋण ग्यारह का भाग देते हैं तो निःशेष हो जाता है।

उदाहरण— येन संगुणिताः पञ्च त्रयोविंशतिसंयुताः।
वर्जिता वा त्रिभिर्भक्ता निरग्राः स्युः स को गुणः॥ ११॥

कौन ऐसा गुण है, जिससे पाँच को गुण कर गुणनफल में तेइस जोड़ या घटा कर तीन का भाग देते हैं तो निःशेष हो जाता है।

येन पञ्च गुणिताः खसंयुताः पञ्चषष्टिसहिताश्च तेऽथवा।
स्युस्त्रयोदशहृता निरग्रकास्तं गुणं गणक कीर्तयाशु मे॥ १२॥

कौन ऐसा गुण है। जिससे पाँच को गुणाकर गुणनफल में शून्य या पैंसठ जोड़कर १३ का भाग देते हैं तो निःशेष हो जाता है।

अथ स्थिर कुट्टके सूत्रं वृत्तम्—

क्षेपं विशुद्धिं परिकल्प्य रूपं पृथक् तयोर्ये गुणकार लब्धी।
अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्नौ स्वहारतष्टेः भवतस्तयोस्ते॥ १३॥

धनक्षेप अथवा ऋणक्षेप एक कल्पना कर पूर्वयुक्त्या गुण और लब्धि का साधन करे उनको अभीष्ट धन या ऋणक्षेप से गुणाकर अपने २ हार से तष्टित करने से धनक्षेप या ऋणक्षेप में गुण लब्धि होगी।

कल्प्याऽथ शुद्धिर्विकलावशेषं षष्टिश्चभाज्यः कुदिनानिहारः॥ १४॥
तज्जं फलं स्युर्विकलागुणस्तुलिप्ताग्रमस्माच्च कलालवाग्रम्।
एवं तदूर्ध्वं च तथाऽधिमासावमाग्रकाभ्यां दिवसा रवीन्द्वोः॥ १५॥

ग्रह के विकला शेष पर से ग्रह और अर्हगण के साधन को दिखलाते है यहां साठ भाज्य, कुदिन हार और विकला शेष ऋण क्षेप है। अतः विकला लब्धि और कलाशेष गुण होगा फिर साठ भाज्य, कुदिन हार और कला शेष ऋण क्षेप है। अतः कला लब्धि और भाग शेष गुण होगा।

अथ संश्लिष्टकुट्टके करणसूत्रं वृत्तम्—

एको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नौ तदा गुणैक्यं परिकल्प्य भाज्यम्।
अग्रैक्यमग्रं कृत उक्तवद्यः संश्लिष्टसंज्ञः स्फुटकुट्टकोऽसौ॥ १६॥

अगर अनेक उदाहरण में हर समान हो और गुण अनेक हों तो उन गुणकों के योग को भाज्य और शेषों के योग को ऋणक्षेप कल्पना करके पूर्वोक्त रीति से जो कुट्टक किया जाय उसको संश्लिष्ट कुट्टक कहते हैं।

उदाहरण— कः पञ्चनिघ्नो विहृतस्त्रिषष्टचा सप्तावशेषोऽथ स एव राशिः ।
दशाहतः स्याद्विहृतस्त्रिषष्टचा चतुर्दशाग्रो वद राशिमेनम् ॥ १३ ॥

कौन ऐसी राशि है जिसको पांच या दश से गुणा कर तिरसठ का भाग देने से सात या चौदह शेष रहता है ।

इति कुट्टकः समाप्तः ।

अथ वर्गप्रकृतिः ।

तत्र रूपक्षेपपदार्थं तावत् करणसूत्राणि सार्धषड्वृत्तानि—

इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णो युक्तो वर्जितो वा स येन ।
मूलं दद्यात् क्षेपकं तं धनर्णं मूलं तच्च ज्येष्ठमूलं वदन्ति ॥ १ ॥

ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकान् न्यस्य तेषां तानन्यान् वाऽधो निवेश्य क्रमेण ।
साध्यान्येभ्यो भावनाभिर्बहूनि मूलान्येषां भावना प्रोच्यतेऽतः ॥ २ ॥

वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यं ह्रस्वं लघ्वोराहतिश्च प्रकृत्या ।
क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग् ज्येष्ठमूलं तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकः स्यात् ॥ ३ ॥

ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वा लघ्वोर्घातो यः प्रकृत्या विनिघ्नः ।
घातो यश्च ज्येष्ठयोस्तद्वियोगो ज्येष्ठं क्षेपोऽत्रापि च क्षेपघातः ॥ ४ ॥

इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यादिष्टभाजिते ।
मूले ते स्तोऽथवा क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे ॥ ५ ॥

इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत् ।
द्विघ्नमिष्टं कनिष्ठं तत् पदं स्यादेकसंयुतौ ।
ततो ज्येष्ठमिहानन्त्यं भावनाभिस्तथेष्टतः ॥ ६ ॥

पहले किसी एक राशि को इष्ट कल्पना कर उसके वर्ग को प्रकृति से गुणा करने से गुणनफल जो मिले उसमें जो अङ्क युत या ऊन करने से मूलप्रद हो वह धन या ऋणक्षेप कहलाता है । मूल जो मिले उसको ज्येष्ठ मूल कहते हैं । इष्ट राशि को ह्रस्व, लघु और कनिष्ठ भी कहते हैं ।

पूर्वसिद्ध ह्रस्व ज्येष्ठ और क्षेप को एक पंक्ति में लिखकर उसके नीचे दूसरी पंक्ति में उसी ह्रस्व ज्येष्ठ और क्षेप को लिखना चाहिए । अब इन दो पंक्तियों के द्वारा भावनावश अनेक ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध होंगे । भावना दो तरह की होती हैं । एक समासभावना और दूसरी अन्तभावना । पदों का महत्त्व जानने के लिये पहले समासभावना को बताते हैं ।

ज्येष्ठ और लघु का जो वज्राभ्यास (तिर्य्यग्गुणन) हो उनका योग ह्रस्व (कनिष्ठ) होता है । अर्थात् ऊपर की पंक्ति में जो कनिष्ठ हो उससे अधःस्थित पंक्ति में स्थित को और नीचस्थ पंक्ति में स्थित कनिष्ठ से ऊपर में स्थित ज्येष्ठ को गुणा कर गुणनफलों का योग करने से योगफल कनिष्ठ होता है । कनिष्ठों के घात को प्रकृति से गुणा कर गुणनफल में ज्येष्ठों के घात को जोड़ने से जो योगफल हो वह ज्येष्ठमूल होगा । और दोनों क्षेपों का घात नूतन क्षेप होगा । इस तरह समास भावना हुई ।

अब अन्तर भावना को कहते हैं। इससे पदों का लघुत्व जाना जाता है। जैसे ज्येष्ठ और कनिष्ठ का परस्पर वज्राभ्यास रूप घात का अन्तर कनिष्ठ होता है कनिष्ठों के घात को प्रकृति से गुणा कर एक स्थान में और ज्येष्ठों के घात को दूसरे स्थान में रखना, इन दोनों का अन्तर करने से ज्येष्ठ मूल होगा। तथा यहां पर भी क्षेपों के घात को क्षेप जानना चाहिए।

अब यहां पर कुछ विशेष बात कहते हैं।

पहले जिस क्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ सिद्ध हुए हैं, अगर वह क्षेप इष्टवर्ग के भाग देने से अभीष्ट क्षेप हो जाय तो कनिष्ठ और ज्येष्ठपद में केवल इष्ट के भाग देने से अभीष्ट कनिष्ठ और ज्येष्ठ पद हो जायगा। अगर इष्ट वर्ग से गुणित क्षेप क्षेप हो जाय तो इष्ट गुणित कनिष्ठ और ज्येष्ठ, कनिष्ठ और ज्येष्ठ होंगे। इष्ट-वर्ग, प्रकृति इन दोनों का अन्तर करके जो हो उससे द्विगुणित इष्ट में भाग देने से रूप क्षेप में कनिष्ठ हो जायगा। फिर उस कनिष्ठ पर से "इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः" इत्यादि सूत्रोक्तनियमानुसार ज्येष्ठ लाना चाहिए। इस तरह कनिष्ठ, ज्येष्ठ के द्वारा भावना वश अनेक कनिष्ठ ज्येष्ठ सिद्ध होंगे।

उदाहरण— **को वर्गोऽष्टहतः सैकः कृतिः स्याद्गणकोच्यताम्।**
एकादशगुणः को वा वर्गः सैकः कृतिर्भवेत्॥ १॥

कौन ऐसा वर्गाङ्क है जिसको आठ या ग्यारह से गुणाकर एक जोड़ देते हैं तो वर्ग होता है।

इति वर्गप्रकृतिः समाप्ता।

अथ चक्रवाले करणसूत्रं वृत्तचतुष्टयम्—

ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान् भाज्यप्रक्षेपभाजकान्।
कृत्वा कल्प्यो गुणस्तत्र तथा प्रकृतितश्च्युते॥ १॥

गुणवर्गे प्रकृत्योनेऽथवाऽल्पं शेषकं यथा।
तत्तु क्षेपहृतं क्षेपो व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते॥ २॥

गुणलब्धिः पदं ह्रस्वं ततो ज्येष्ठमतोऽसकृत्।
त्यक्त्वा पूर्वपदक्षेपाँश्चक्रवालमिदं जगुः॥ ३॥

चतुर्द्व्येकयुतावेवमभिन्ने भवतः पदे।
चतुर्द्विक्षेपमूलाभ्यां रूपक्षेपार्थभावना॥ ४॥

इस चक्रवाल नामक गणित में पहले "इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः" इत्यादि वर्ग प्रकृति में कथित सूत्र के अनुसार कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप लाकर उनको क्रम से भाज्य, क्षेप और भाजक कल्पना करके कुट्टक के अनुसार गुण लाना चाहिए। पर वह गुण इस तरह का होना चाहिये कि जिसके वर्ग को प्रकृति में या प्रकृति ही को उसमें घटाने से शेष थोड़ा रहै। उस शेष में पहले क्षेप का भाग देने से क्षेप होगा। यहाँ पर इतना ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ पर गुणवर्ग प्रकृति में घटेगा वहाँ क्षेप व्यस्त हो जायगा, अर्थात् धन रहे तो ऋण, ऋण रहे तो धन हो जायगा तथा जिस गुण के साथ प्रकृति का अन्तर किया गया है उस गुण की लब्धि कनिष्ठ पद होगा। बाद पूर्वकथित गणित के अनुसार कनिष्ठवश ज्येष्ठ सिद्ध करना चाहिये।

अब इसके बाद पहले लाये हुए कनिष्ठ ज्येष्ठ क्षेपो को छोड़कर नूतन कनिष्ठ ज्येष्ठ क्षेपों के वश कुट्टक रीति से गुण, लब्धि लाकर कनिष्ठ ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध करना चाहिए। इस तरह बार २ क्रिया करने से चार, दो और एक में अभिन्न कनिष्ठ ज्येष्ठ होंगे। यहाँ उदिष्ट चार आदि संख्या और धन क्षेप उपलक्षण मात्र है। अतः इष्ट संख्या के धनक्षेप या ऋणक्षेप में अभिन्नपद होंगे तथा यहाँ पर ४, २ क्षेपों को रूप क्षेप में लाने के लिये भावना करनी चाहिये। अर्थात् जहाँ पर चार क्षेप हो वहाँ पर "इष्टवर्ग हृतः क्षेपः" इस सूत्र के अनुसार कनिष्ठ ज्येष्ठ क्षेपों को सिद्ध करना चाहिये। जहाँ पर दो क्षेप हो वहाँ पर तुल्य भावना से चार क्षेप में कनिष्ठ ज्येष्ठ पदों को सिद्ध कर "इष्टवर्गहृतः क्षेपः:" इस सूत्र के अनुसार रूपक्षेप में कनिष्ठ ज्येष्ठ पदों को सिद्ध करना चाहिये।

उदाहरण—

> का सप्तषष्टिगुणिता कृतिरेकयुक्ता
> का चैकषष्टिगुणिता च सखे सरूपा।
> स्यान्मूलदा यदि कृतिप्रकृतिर्नितान्तं
> त्वच्चेतसि प्रवद तात तता लतावत्॥ १॥

वह कौन सा वर्ग है जिसको सरसठ से या एकसठ से गुणा कर गुणनफल में एक जोड़ देने से वर्ग होता है।

प्रकारान्तरितपदानयनयोः करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

> रूपशुद्धौ खिलोद्दिष्टं वर्गयोगो गुणो न चेत्।
> अखिले कृतिमूलाभ्यां द्विधा रूपं विभाजितम्॥ ५॥
> द्विधा ह्रस्वपदं ज्येष्ठं ततो रूपविशोधने।
> पूर्ववद्वा प्रसाध्येते पदे रूपविशोधने॥ ६॥

रूप ऋण क्षेप में यदि गुण (प्रकृति) किसी दो संख्याओं के वर्गों का योग न हो तो उस उदाहरण को दुष्ट समझना चाहिए। यदि उदाहरण दुष्ट न हो अर्थात् दो संख्याओं के वर्ग योग उसमें हों तो उन मूलों का अलग २ रूप में भाग देने से रूप ऋण क्षेप में दो प्रकार के कनिष्ठ होंगे। उन कनिष्ठों पर से "इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्ग" इत्यादि सूत्र के अनुसार ज्येष्ठ भी दो प्रकार के होंगे अथवा चार आदि वर्गात्मक क्षेप में "इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः" इत्यादि प्रकार से पदों का साधन करके "इष्टवर्गहृतः क्षेपः" इत्यादि प्रकार से रूप ऋण क्षेप में कनिष्ठ ज्येष्ठ पदों का साधन करना चाहिये।

उदाहरण—

> त्रयोदशगुणो वर्गो निरेकः कः कृतिर्भवेत्।
> को वाऽष्टगुणितो वर्गो निरेको मूलदो वद॥ २॥

कौन ऐसा वर्गाङ्क है जिसको तेरह से या आठ से गुणा कर एक घटाते हैं तो वर्ग हो जाता है।

उदाहरण—

> को वर्गः षड्गुणस्त्र्याढ्यो द्वादशाढ्योऽथवा कृतिः।
> युतो वा पञ्चसप्तत्या त्रिशत्या वा कृतिर्भवेत्॥ ३॥

कौन ऐसा वर्ग है जिसको छै से गुणा कर गुणन फल में तीन वा, बारह, वा पचहत्तर, वा तीन सौ जोड़ देते हैं तो वर्ग हो जाता है।

अथेच्छयानीतपदयोः रूपक्षेपपदानयनदर्शने सूत्रम्—

स्वबुद्ध्यैव पदे ज्ञेये बहुक्षेपविशोधने।
तयोर्भावनयाऽऽनन्त्यं रूपक्षेपपदोत्थया ॥ ७॥
वर्गच्छिन्ने गुणे ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत्।

जहां धन क्षेप या ऋण क्षेप ज्यादा हो वहां पर पहले अपनी बुद्धि के अनुसार पद सिद्ध करना। बाद कनिष्ठ, ज्येष्ठ और रूप क्षेप के द्वारा भावना वश अनेक कनिष्ठ, ज्येष्ठ पद होंगे। किन्तु रूप क्षेप सम्बन्धि पद के द्वारा भावना होने के कारण सब जगह क्षेप ज्यों का त्यों रहेगा। अब "स्वबुद्ध्यैव पदे ज्ञेये" इसके प्रकारान्तर को दिखलाते हैं। उदाहरण में आई हुई प्रकृति में किसी वर्गात्मक राशि का अपवर्तन देकर अपवर्तनाङ्क मूल से कनिष्ठ में भाग देने से कनिष्ठ पद होगा। ज्येष्ठ ज्यों का त्यों रहेगा।

उदाहरण— द्वात्रिंशद्गुणितो वर्गः कः सैको मूलदो वद।

कौन ऐसा वर्ग है जिसको बत्तीस से गुणा कर गुणनफल में एक जोड़ देते हैं तो मूलप्रद होता है।

अथ वर्गरूपायां प्रकृतौ भावनाव्यतिरेकेणानेकपदानयने करणसूत्रं वृत्तम्—

इष्टभक्तो द्विधा क्षेप इष्टोनाढ्यो दलीकृतः ॥ ८॥
गुणमूलहृतश्चाद्यो ह्रस्वज्येष्ठे क्रमात् पदे।

उद्दिष्ट क्षेप जो हो उसमें किसी इष्ट का भाग देकर जो लब्धि मिले उसको दो जगह रखे। एक स्थान में इष्ट घटाने से और दूसरे स्थान में जोड़ने से जो फल मिलें उनका आधा करके प्रथम स्थान में प्रकृति के पद का भाग देना तो क्रम से कनिष्ठ, ज्येष्ठ पद हो जायेंगे।

उदाहरण— का कृतिर्नवभिः क्षुण्णा द्विपञ्चाशद्युता कृतिः ॥ ४॥
को वा चतुर्गुणो वर्गस्त्रयस्त्रिंशद्युतः कृतिः।

कौन ऐसा वर्ग है जिसको नव से गुणा कर बावन जोड़ देने से वर्ग होता है। और कौन ऐसी वर्ग राशि है जिसको चार से गुणा कर तेंतीस जोड़ देने से वर्ग होता है।

उदाहरण— त्रयोदशगुणो वर्गस्त्रयोदशविवर्जितः ॥ ५॥
त्रयोदशयुतो वा स्याद्वर्ग एव निगद्यताम्।

कौन ऐसा अङ्क है जिसको तेरह से गुण कर गुणनफल में तेरह जोड़ या घटा देते हैं तो वर्ग होता है।

उदाहरण— ऋणगैः पञ्चभिः क्षुण्णः को वर्गः सैकविंशतिः ॥ ६॥
वर्गः स्याद्वद चेद्वेत्सि क्षयगप्रकृतौ विधिम्।

कौन ऐसा वर्ग है जिसको ऋण पाँच से गुणकर गुणनफल में इक्कीस जोड़ देते हैं तो वर्ग होता है।

उक्तं बीजोपयोगीदं संक्षिप्तं गणितं किल।
अतो बीजं प्रवक्ष्यामि गणकानन्दकारकम् ॥

इति श्रीभास्करीयबीजगणिते वर्गप्रकृतिचक्रवालः।

अथैकवर्णसमीकरणम् ।

यावत्तावत् कल्प्यमव्यक्तराशेर्मानं तस्मिन् कुर्वतोद्दिष्टमेव ।
तुल्यौ पक्षौ साधनीयौ प्रयत्नात् त्यक्त्वा क्षिप्त्वा वाऽपि संगुण्यभक्त्वा ॥ १ ॥
एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षाद्रूपाण्यन्यस्येतरस्माच्च पक्षात् ।
शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषं व्यक्तं मानं जायतेऽव्यक्तराशेः ॥ २ ॥
अव्यक्तानां द्व्यादिकानामपीह यावत्तावद्द्व्यादिनिघ्नं हृतं वा ।
युक्तोनं वा कल्पयेदात्मबुद्ध्या मानं क्वापि व्यक्तमेवं विदित्वा ॥ ३ ॥

दिये हुए उदाहरणों में अज्ञातराशि का मान यावत्तावत् कल्पना कर प्रश्नकर्ता के कथनानुसार गुणन, भजन आदि क्रियाओं के द्वारा समान दो पक्ष सिद्ध करना चाहिए। अगर आलाप के अनुसार क्रिया करने से तुल्य दो पक्ष सिद्ध न हो तो एक पक्ष में कुछ जोड़ या घटाकर अथवा इसको किसी से गुण या भाग देकर समान कर लेना चाहिए।

इस तरह सिद्ध दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष के अव्यक्त को दूसरे पक्ष के अव्यक्त में घटाना और दूसरे पक्ष के रूपों को प्रथम पक्ष के रूपों में घटाना चाहिए।

एवं एक पक्ष में अव्यक्त और दूसरे पक्ष में रूप रह जायगा। अब अव्यक्त के गुणकाङ्क से रूप में भाग देने से जो लब्धि मिलेगी वही एक अव्यक्त राशि का व्यक्त मान होगा। इससे उदिष्ट एक, दो, तीन आदि अव्यक्त संख्या में उत्थापन देने से उद्दिष्ट अव्यक्त मान आजायगा। इसी तरह वर्ग, घन आदि में पूर्वागत व्यक्त मान के वर्ग घन आदि का उत्थापन देने से उद्दिष्ट अव्यक्त मान व्यक्त हो जाता है। जिस उदाहरण में दो, तीन आदि अव्यक्त राशि किसी से गुणित, भाजित, युत या ऊन हों वहाँ पर एक अव्यक्त का मान यावत्तावत् कल्पना करके उक्तविधि से जो व्यक्त मान आवे उसको दो, तीन आदि इष्ट से गुणित, भाजित, युत या ऊन करके यावत्तावत् मान लाना चाहिए। अथवा एक ही का यावत्तावत् औरों का रूप कल्पना करके क्रिया करनी चाहिए। अर्थात् जिस तरह क्रिया का निर्वाह हो उस तरह कल्पना करके अव्यक्त मान को व्यक्त करना चाहिए।

उदाहरण— एकस्य रूपत्रिशती षडश्वा अश्वा दशान्यस्य तु तुल्यमूल्याः ।
ऋणं तथा रूपशतं च तस्य तौ तुल्यवित्तौ च किमश्वमूल्यम् ॥ १ ॥

एक व्यापारी के पास तीन सौ रुपये और छै घोड़े हैं। दूसरे के पास ऋण सौ रूपये और दश घोड़े हैं। पर दोनों के प्रत्येक घोड़े का मूल्य समान है, तथा वे दोनों भी आपस में तुल्य धन वाले हैं, तो कहो घोड़े का मूल्य क्या है ?

उदाहरण— यदाद्यवित्तस्य दलं द्वियुक्तं तत्तुल्यवित्तो यदि वा द्वितीयः ।
आद्यो धनेन त्रिगुणोऽन्यतो वा पृथक् पृथङ्मे वद वाजिमौल्यम् ॥ २ ॥

अगर पहले व्यापारी के आधे धन में दो जोड़ देते हैं तो दूसरे का सर्वधन होता है। अथवा दूसरे से पहले का तिगुना धन है तो घोड़े का मूल्य क्या होगा ?

उदाहरण— माणिक्यामलनीलमौक्तिकमितिः पञ्चाष्टसप्त क्रमा-
देकस्यान्यतरस्य सप्तनवषट् तद्रत्नसंख्या सखे ।
रूपाणं नवतिर्द्विषष्टिरनयोस्तौ तुल्यवित्तौ तथा
वीजज्ञ प्रतिरत्नजाति सुमते मौल्यानि शीघ्रं वद ॥ ३ ॥

एक व्यापारी के पास पाँच माणिक्य, आठ नीलमणि, सात मोती, और नव्वे रुपये हैं। दूसरे के पास सात माणिक्य, नव नीलमणि, छै मोती और वासठ रुपये हैं पर दोनों का धन बराबर है, तो प्रत्येक रत्नों का मूल्य शीघ्र बताओ ?

उदाहरण— एको ब्रवीति मम देहि शतं धनेन
त्वत्तो भवामि हि सखे द्विगुणस्ततोऽन्यः।
ब्रूते दशार्पयसि चेन्मम षडगुणोऽहं
त्वत्तस्तयोर्वद धने मम किं प्रमाणे ॥ ४ ॥

एक व्यापारी दूसरे से कहता है कि तुम सौ रुपये मुझे दो तो तुमसे धन में मैं दूना हो जाऊँ। दूसरा कहता है कि अगर तुम दश रुपये मुझे दो तो मैं तुमसे धन में छै गुणा हो जाऊँ, तो बताओ उन दोनों के पास में धन के प्रमाण क्या है ?

उदाहरण— माणिक्याष्टकमिन्द्रनीलदशकं मुक्ताफलानां शतं
यत्ते कर्णविभूषणे समधनं क्रीतं त्वदर्थे मया।
तद्रत्नत्रयमौल्यसंयुतिमितिस्त्र्यूनं शतार्धं प्रिये
मौल्यं ब्रूहि पृथग्यदीह गणिते कल्याऽसि कल्याणिनि ॥ ५ ॥

किसी ने कर्णभूषण के लिए तुल्य कीमत से आठ माणिक्य, दश नीलमणि और सौ मोती खरीदे। एक एक करके तीनों रत्नों के मूल्य का योग ४७ होता है, तो प्रत्येक रत्नों का मूल्य क्या होगा ?

उदाहरण— पञ्चांशोऽलिकुलात् कदम्बमगमत् त्र्यंशः शिलीन्ध्रं तयो-
र्विश्लेषस्त्रिगुणो मृगाक्षि कुटजं दोलायमानोऽपरः।
कान्ते केतकमालतीपरिमलप्राप्तैककालप्रिया—
दूताहूत इतस्ततो भ्रमति खे भृङ्गोऽलिसंख्यां वद ॥ ६ ॥

कहीं पर एक भ्रमर का समुदाय था जिसका पञ्चमांश कदम्ब को गया, तृतीयांश शिलीन्ध्र पुष्प पर गया, उन भागों के त्रिगुण अन्तर के तुल्य कुटज पर गया, तथा केवल एक भ्रमर केतकी और माल्ती के एक काल में प्राप्त सुगन्ध रूप प्रिया के दूत से बुलाया गया आकाश में इधर उधर भ्रमण कर रहा है तो भ्रमरों की संख्या कहो।

उदाहरण— पञ्चकशतदत्तधनात् फलस्य वर्गं विशोध्य परिशिष्टम्।
दत्तं दशकशतेन तुल्यः कालः फलं च तयोः ॥ ७ ॥

सैकड़े पांच रुपये के व्याज पर दिये धन का जो व्याज आया उसके वर्ग को मूलधन में घटा कर जो शेष बचा उसको सैकड़े दश के व्याज पर दिया दोनों मूल धनों का काल और व्याज समान है तो मूल धन क्या है।

उदाहरण— एकशतदत्तधनात् फलस्य वर्गं विशोध्य परिशिष्टम्।
पञ्चकशतेन दत्तं तुल्यः कालः फलं च तयोः ॥ ८ ॥

एक रुपये सैकड़े के व्याज पर दिये धन का जो व्याज मिला, मूलधन में उसके वर्ग घटा कर जो शेष धन रहा उसको पाँच रुपये सैकड़े के व्याज पर दे दिया। दोनों का काल और व्याज समान है तो दोनों धनों का मान बताओ।

एवं स्वबुद्ध्यैवेदं सिद्ध्यति किं यावत्तावत्कल्पनया। अथवा बुद्धिरेव बीजम्। तथा च गोले मयोक्तम्—

"नैव वर्णात्मकं बीजं न बीजानि पृथक् पृथक्।
एकमेव मतिर्बीजमनल्पा कल्पना यतः" ॥

इससे बीजगणित की प्रशंसा करते हैं—

बुद्धि ही बीजगणित है। इसको मैंने गोलाध्याय में लिख दिया है।

बीजगणित वर्णात्मक (यावत्तावत्. कालक आदि वर्ण स्वरूप) नहीं है। तथा बीजगणित में आये हुए अनेक भाग भी अलग २ नहीं है। अर्थात् एकवर्ण समीकरण, अनेकवर्णसमीकरण आदि भेदों से अलग २ नहीं है। किन्तु एक बुद्धि ही बीज है, जिससे नाना तरह की कल्पनाएँ उत्पन्न होती हैं।

उदाहरण— माणिक्याष्टकमिन्द्रनीलदशकं मुक्ताफलानां शतं
सद्वज्राणि च पञ्च रत्नवणिजां येषां चतुर्णां धनम्।
संगस्नेहवशेन ते निजधनाद्दत्त्वैकमेकं मिथो
जातास्तुल्यधनाः पृथग् वद सखे तद्रत्नमौल्यानि मे ॥ ९ ॥

आठ मणिक्य, दश नीलमणि, सौ मोती और पाँच हीरा ये क्रम से चार जौहरियों के पास में धन थे। वे सब साथी होने के कारण स्नेहवश अपने-अपने धन से एक २ रत्न आपस में दिये तो समधन हो गये। इन रत्नों का मूल्य अलग २ बताओ।

उदाहरण— पञ्चकशतेन दत्तं मूलं सकलान्तरं गते वर्षे।
द्विगुणं षोडशहीनं लब्धं मूलं समाचक्ष्व ॥ १० ॥

पाँच रुपये सैकड़े के व्याज पर दिया गइया धन एक वर्ष के बाद व्याजस हित मूलधन द्विगुणित सोलह हीन मूल धन के बरावर होता है तो मूल धन क्या होगा ?

उदाहरण— यत् पञ्चकद्विकचतुष्कशतेन दत्तं
खण्डैस्त्रिभिर्नवतियुक् त्रिशतीधनं तत्।
मासेषु सप्तदशपञ्चसु तुल्यमाप्तं
खण्डत्रयेऽपि सफलं वद खण्डसंख्याम् ॥ ११ ॥

तीनसौनम्बे रुपयों को तीन खण्ड करके प्रथम खण्ड को सैकड़े पांच रुपये के व्याज पर, द्वितीय खण्ड को सैकड़े दो रुपये के व्याज पर और तृतीय खण्ड को सैकड़े चार रुपये के व्याज पर दिया।

तथा पहला खण्ड का सात महीने वाद मूल धन सहित व्याज जितना होता है उतना ही दश महीने के वाद व्याज सहित दूसरा खण्ड और पांच महीने के वाद व्याज सहित तीसरा खण्ड होता है तो उन तीनों खण्डों का अलग २ मान बताओ ?

उदाहरण— पुरप्रवेशे दशदो द्विसंगुणं विधाय शेषं दशभुक् च निर्गमे।
ददौ दशैवं नगरत्रयेऽभवत् त्रिनिघ्नमाद्यं वद तत् कियद्धनम् ॥ १२ ॥

कोई एक व्यापारी कुछ धन लेकर किसी नगर से व्यापार के लिये गया। वहां द्वारप्रवेश के समय दश रुपये टेक्स दिया, फिर उस नगर में शेषधन को व्यापार से दूनाकर उसमें से दश रुपये भोजन में व्यय

किया। और लौटते समय दश रुपये फिर नगर का टेक्स दिया इस प्रकार तीन नगरों में व्यापार कर अपने घर लौट आया, तो उसका धन पहले से त्रिगुणित हो गया। बताओ कितनाधन लेकर वह व्यापार के लिये गया था।

उदाहरण— सार्धं तण्डुलमानकत्रयमहो द्रम्मेण मानाष्टकं
मुद्गानां च यदि त्रयोदशमिता एता वणिक् काकिणीः।
आदायार्पय तण्डुलांशयुगलं मुद्गैकभागान्वितं
क्षिप्रं क्षिप्रभुजो व्रजेमहि यतः सार्थोऽग्रतो यास्यति॥ १३॥

एक पथिक किसी वनिये से कहता है कि हे वणिक् एक द्रम्म में साढे तीन सेर चावल और आठ सेर मूंग आता है, इस भाव पर तेरह काकिणी में दो भाग चावल और एक भाग मूंग दो, मुझे शीघ्र भोजन कर जाना है, क्योंकि मेरा साथी आगे चला जायगा। तो बताओ उनके दाम और भाग कितने हैं।

उदाहरण— स्वार्धपञ्चांशनवमैर्युक्ताः के स्युः समास्त्रयः।
अन्यांशद्वयहीनाश्च षष्टिशेषाश्च तान् वद॥ १४॥

कोई तीन राशियाँ है, जिनमें पहलीराशि अपने आधे से, दूसरी अपने पञ्चमांश से और तीसरी राशि अपने नवमांश से युक्त करने से समान हो जाती है। तथा पहलीराशि दूसरे के पञ्चमांश से, तीसरे के नवमांश से घटाने से साठ के तुल्य हो जाती है। दूसरी राशि पहले के आधे से और तीसरे के नवमांश से घटाने से साठ हो जाती है। तीसरी राशि पहले के आधे से और दूसरे के पञ्चमांश से घटाने से साठ हो जाती है, बताओ वे कौन राशियाँ है।

उदाहरण— त्रयोदश तथा पञ्च करण्यो भुजयोर्मिती।
भूरज्ञाता च चत्वारः फलं भूमिं वदाशु मे॥ १५॥

जिस त्रिभुज क्षेत्र में एक भुज का मान करणी पाँच और दूसरे का करणी तेरह है। भूमि अज्ञात है, तथा क्षेत्रफल चार है वहाँ भूमि का क्या मान होगा शीघ्र बताओ।

उदाहरण— दशपञ्चकरण्यन्तरमेको बाहुः परश्च षट्करणी।
भूरष्टादशकरणी रूपोना लम्बमानमाचक्ष्व॥ १६॥

जिस त्रिभुज क्षेत्र में दश और पाँच करणियों का अन्तर एक भुज है। छै करणी सम दूसरा भुज है तथा रूपोन अठारह करणी भूमि है, वहाँ लम्बमान क्या होगा?

उदाहरण— असमानसमच्छेदान् राशींस्ताँश्चतुरो वद।
यदैक्यं यद्घनैक्यं वा येषां वर्गैक्यसंमितम्॥ १७॥

अतुल्य और समच्छेद वाली चार राशियाँ कौन सी हैं, जिनका योग या घनों का योग उनके वर्गों के योग के समान होता है।

उदाहरण— त्र्यस्रक्षेत्रस्य यस्य स्यात् फलं कर्णेन संमितम्।
दोः कोटिश्रुतिघातेन समं यस्य च तद्वद॥ १८॥

जिस त्रिभुज क्षेत्र में कर्ण के समान या भुज, कोटि, कर्ण तीनों के घाततुल्य फल है। उसके भुज आदि सब अवयवों को अलग २ कहो?

उदाहरण— यतौ वर्गोऽन्तरे वर्गौ ययोर्घाते घनो भवेत्।
तौ राशी शीघ्रमाचक्ष्व दक्षोऽसि गणिते यदि ॥ १९ ॥

जिन दो राशियों का योग या अन्तर किसी राशि के वर्ग के समान होता है और उनका घात घन होता है, वे कौन सी राशियां हैं।

उदाहरण— घनैक्यं जायते वर्गो वर्गैक्यं च ययोर्घनः।
तौ चेद्वेत्सि तदाऽहं त्वां मन्ये बीजविदां वरम् ॥ २० ॥

वे दो राशियाँ कौन सी हैं, जिनका घनयोग वर्ग और वर्गयोग धन होता है। इनको अगर कहो तो बीजगणित जानने वालों में तुमको मैं श्रेष्ठ मानूँ।

उदाहरण— यत्र्यस्रक्षेत्रे धात्री मनुसंमिता सखे।
एकः पञ्चदशान्यस्त्रयोदश वदावलम्बकं तत्र ॥ २१ ॥

·जिस त्रिभुज क्षेत्र में एक भुज पन्द्रह, दूसरा भुज तेरह और भूमान चौदह है, वहां लम्बमान क्या होगा ?

उदाहरण— यदि समभुवि वेणुर्द्वित्रिपाणिप्रमाणो
गणक पवनवेगादेकदेशे स भग्नः।
भुवि नृपमितहस्तेष्वङ्ग लग्नं तदग्रं
कथय कतिषु मूलादेष भग्नः करेषु ॥ २२ ॥

समान भूमि पर बत्तीस हाथ लम्बा एक बांस था। वायु के वेग से एक जगह टूट कर उसका अग्र भाग मूल से सोलह हाथ की दूरी पर जाकर लगा तो बताओ वह मूल से कितने हाथ पर टूटा।

उदाहरण— चक्रक्रौञ्चाकुलितसलिले क्वापि दृष्टं तडागे
तोयादूर्ध्वं कमलकलिकाग्रं वितस्तिप्रमाणम्।
मन्दं मन्दं चलितमनिलेनाहतं हस्तयुग्मे
तस्मिन् मग्नं गणक कथय क्षिप्रमम्भःप्रमाणम् ॥ २३ ॥

किसी तालाब में जल से एक बित्ता ऊँचा कमल के कलिकाग्र को देखा। वह मन्द २ वायु के वेग से अपने स्थान से दो हाथ पर जाकर डूब गया तो हे गणक कहो कि उस तालाब में कितना गहरा जल है।

उदाहरण— वृक्षाद्धस्तशतोच्छ्रयाच्छतयुगे वापीं कपिः कोऽप्यगा-
दुत्तीर्याथ परो द्रुतं श्रुतिपथात् पोड्डीय किञ्चिद्द्रुमात्।
जातैवं समता तयोर्यदि गतावुड्डीनमानं कियद्-
विद्वँश्चेत् सुपरिश्रमोऽस्ति गणिते क्षिप्रं तदाऽऽचक्ष्व मे ॥ २४ ॥

सौ हाथ ऊँचे ताल के वृक्ष पर दो बन्दर बैठे थे, उनमें से एक उतर कर वृक्ष के जड़ से दो सौ हाथ के दूरी पर एक तालाब को गया, और दूसरा कुछ उछल कर कर्ण मार्ग से उसी तालाब को गया, इस तरह दोनों की गति समान है तो शीघ्र बताओ कि वह कितना उछला ?

उदाहरण — पञ्चदशदशकरोच्छ्रयवेण्वोरज्ञातमध्यभूमिकयोः ।
इतरेतरमूलाग्रगसूत्रयुतेर्लम्बमानमाचक्ष्व ॥ २५ ॥

किसी समान भूमि पर पन्द्रह और दश हाथ ऊँचे दो बाँस हैं, इनके मध्य की भूमि अज्ञात है और उन दोनों के मूल, अग्र में परस्पर सूत्र बाँधे हैं (एक के मूल से दूसरे के अग्र पर्य्यन्त, दूसरे के मूल से पहले के अग्रपर्य्यन्त सूत्र बाँधे हैं), इस तरह दोनों सूत्रों के योगबिन्दु से भूमि के ऊपर जो लम्ब किया जायगा उसका मान क्या होगा बताओ ।

अथैकवर्णमध्यमाहरणम् ।

अव्यक्तवर्गादिसमीकरणम् ।

मध्यमाहरणमिति व्यावर्णयन्त्याचार्याः । यतोऽत्र वर्गराशावेकस्य मध्यमस्याहरणमिति ।

अत्र सूत्रम्— अव्यक्तवर्गादि यदाऽवशेषं पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किंचित् ।
क्षेप्यं तयोर्येन पदप्रदः स्यादव्यक्तपक्षोऽस्य पदेन भूयः ॥ १ ॥
व्यक्तस्य मूलस्य समक्रियैवमव्यक्तमानं खलु लभ्यते तत् ।
न निर्वहश्चेद्धनवर्गवर्गेष्वेवं तदा ज्ञेयमिदं स्वबुद्ध्या ॥ २ ॥
अव्यक्तमूलर्णगरूपतोऽल्पं व्यक्तस्य पक्षस्य पदं यदि स्यात् ।
ऋणं धनं तच्च विधाय साध्यमव्यक्तमानं द्विविधं क्वचित् स्यात् ॥ ३ ॥

जहाँ समीकरण के एक पक्ष में अव्यक्त वर्ग आदि शेष रहे, वहाँ उक्त रीति से अव्यक्त का ज्ञान असम्भव हो जायगा, अतः वहाँ के लिये मध्यमाहरण की युक्ति को कहते हैं ।

जैसे समशोधन करने के अन्तर एक पक्ष में अव्यक्त वर्ग आदि और दूसरे पक्ष में रूप मात्र हो तो दोनों पक्षों को किसी एक इष्ट से गुणना, भाग देना, उनमें कुछ जोड़ना या घटाना जिससे अव्यक्तपक्ष मूलद हो जाय एवं व्यक्त पक्ष भी मूलद हो जायगा, क्योंकि समान दो पक्षों में समान योग, वियोग आदि करने पर भी उसका समत्व नष्ट नहीं होता है । इस तरह दोनों पक्षों के मूलग्रहण करने पर एक पक्ष में अव्यक्त और दूसरे पक्ष में व्यक्तमान रह जायगा, फिर पूर्व कथित एकवर्णसमीकरण के द्वारा अव्यक्त मान का व्यक्त मान लाना चाहिए ।

यदि एक पक्ष में धन वर्गवर्ग आदि रहने के कारण मूल न मिले तो अपनी बुद्धि के अनुसार कल्पना कर व्यक्त मान जानना चाहिए । जहाँ अव्यक्त पक्ष के मूल में रूप ऋणात्मक हो और उससे व्यक्तपक्ष के मूल अल्प हो तो उसको ऋण, धन कल्पना कर अव्यक्तराशि का मान सिद्ध करने से दो तरह का अव्यक्त मान होगा ।

श्रीधराचार्यसूत्रम् — "चतुराहतवर्गसमै रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत् ।
अव्यक्तवर्गरूपैर्युक्तौ पक्षौ ततो मूलम् ॥"

दोनों पक्षों के मूल ग्रहण करने के लिये चतुर्गुणित अव्यक्तवर्गाङ्क से गुण देना और गुणन के पहले जो अव्यक्ताङ्क है उसके वर्ग के समान रूप जोड़ देने से दोनों पक्ष वर्गात्मक हो जायगा ।

उदाहरण— अलिकुलदलमूलं मालतीं यातमष्टौ
निखिलनवमभागाश्चालिनी भृङ्गमेकम् ।
निशि परिमललुब्धं पद्ममध्ये निरुद्धं
प्रति रणति रणन्तं ब्रूहि कान्तेऽलिसंख्याम् ॥ १ ॥

एक भ्रमर का समूह था जिसके आधे का मूल मालती पुष्प के ऊपर गया, तथा आठ से गुणा हुआ सम्पूर्ण का नवमाँ भाग मालती पुष्प पर गया। रात्रि में सुगन्धि से लुब्ध होकर कमल के गर्भ में बन्द शब्द करते हुए एक भ्रमर के प्रति कोई भ्रमरी शब्द कर रही है तो बताओ भ्रमरों की संख्या क्या है ?

उदाहरण— पार्थः कर्णवधाय मार्गणगणं क्रुद्धो रणे संदधे
तस्यार्धेन निवार्य तच्छरगणं मूलैश्चतुर्भिर्हयान् ।
शल्यं षड्भिरथेषुभिस्त्रिभिरपि च्छत्रं ध्वजं कार्मुकं
चिच्छेदास्य शिरः शरेण कति ते यानर्जुनः संदधे ॥ १ ॥

कर्ण को मारने के लिये अर्जुन ने जो बाण धारण किये, उनके आधे से कर्ण के बाणों को रोका और उनके चतुर्गुणित मूल से उनके घोड़ों को रोका, छे बाण से शल्य नामक सारथि को मारा, तीन बाणों से छत्र, ध्वज और धनुष को काटा, एक बाण से कर्ण का शिर काटा तो बताओ अर्जुन ने कितने बाण धारण किये थे।

उदाहरण— व्येकस्य गच्छस्य दलं किलादिरादेर्दलं तत्प्रचयः फलं च ।
चयादिगच्छाभिहतिः स्वसप्तभागाधिका ब्रूहि चयादिगच्छान् ॥ ३ ॥

जिस उदाहरण में एकोनगच्छ का आधा आदि, आदि का आधा चय और अपने सातवें भाग से अधिक चय, आदि, गच्छ इन तीनों का घातफल है, तो बताओ चय, आदि, गच्छ क्या होगा ?

उदाहरण— कः खेन विहृतो राशिराद्ययुक्तो नवोनितः ।
वर्गितः स्वपदेनाढ्यः खगुणो नवतिर्भवेत् ॥ ४ ॥

कौन ऐसी राशि है जिसको शून्य से भाग देकर जो फल मिले उसको उसी राशि में जोड़ कर जो फल मिले उसमें नव घटा कर वर्ग करना, उस वर्ग में उसका मूल जोड़ देना उसको शून्य से गुणा करने से नब्बे हो जाता है।

उदाहरण— कः स्वार्धसहितो राशिः खगुणो वर्गितो युतः ।
स्वपदाभ्यां खभक्तश्च जाताः पञ्चदशोच्यताम् ॥ ५ ॥

कौन ऐसी राशि है, जिसमें अपना आधा जोड़ कर शून्य से गुण देते हैं, फिर उसके वर्ग में उसका दूना मूल जोड़ कर शून्य का भाग देते हैं तो पन्द्रह होता है।

उदाहरण— राशिर्द्वादशनिघ्नो राशिघनाढ्यश्च कः समो यः स्यात् ।
राशिकृतिः षड्गुणिता पञ्चत्रिंशद्युता विद्वन् ॥ ६ ॥

वह कौन सी राशि है, जिसको बारह से गुणा कर गुणनफल में राशिघन जोड़ देते हैं तो पैंतीस से युक्त छै गुणा राशि के वर्ग के समान होता है।

उदाहरण— को राशिर्द्विशतीक्षुण्णो राशिवर्गयुतो हतः।
द्वाभ्यां तेनोनितो राशिवर्गवर्गोऽयुतं भवेत्॥
रूपोनं वद तं राशिं वेत्सि बीजक्रियां यदि॥ ७॥

कौन ऐसी राशि है, जिसको दो सौ से गुणने से जो गुणनफल हो उसमें राशि का वर्ग जोड़ कर फिर उसको दो से गुणा कर गुणनफल को राशि के वर्ग वर्ग में घटा देने से शेष एकोन अयुत के समान होता है।

उदाहरण— वनान्तराले प्लवगाष्टभागः संवर्गितो वल्गति जातरागः।
फूत्कारनादप्रतिनादहृष्टा दृष्टा गिरौ द्वादश ते कियन्तः॥ ८॥

किसी जङ्गल में बन्दरों का एक समुदाय है, जिसका अष्टमांश का वर्ग तुल्य आनन्द पूर्वक शब्द कर रहा है और बारह बन्दर वहीं पर्वतपर आपस में एक दूसरे के साथ फूत्कार शब्द द्वारा आनन्दित हो रहे हैं तो बताओ वे कितने हैं।

उदाहरण— यूथात् पञ्चांशकस्त्र्यूनो वर्गितो गह्वरं गतः।
दृष्टः शाखामृगः शाखामारूढो वद ते कति॥ ९॥

बन्दरों के समुदाय से पञ्चमांश में तीन घटा कर जो शेष बचा उसके वर्ग तुल्य पर्वत की कन्दरा को चला गया, और एक बन्दर वृक्ष की डाल पर देखा गया तो कहो वे कितने थे।

उदाहरण— कर्णस्य त्रिलवेनोना द्वादशाङ्गुलशङ्कुभा।
चतुर्दशाङ्गुला जाता गणक ब्रूहि तां द्रुतम्॥ १०॥

किसी जात्यत्रिभुज में छाया भुज, द्वादश अङ्गुल शङ्कु कोटि और छायाकर्ण कर्ण है। अगर वहां कर्ण के तीसरे भाग से ऊन द्वादशाङ्गुल की छाया चौदह अङ्गुल की होती है, तो शीघ्र बताओ द्वादशाङ्गुल की छाया क्या होगी।

उदाहरण— चत्वारो राशयः के ते मूलदा ये द्विसंयुताः।
द्वयोर्द्वयोर्यथासन्नघाताश्चाष्टादशान्विताः॥ ११॥
मूलदाः सर्वमूलैक्यादेकादशयुतात् पदम्।
त्रयोदश सखे जातं बीजज्ञ वद तान् मम॥ १२॥

वे चार राशियाँ कौन सी हैं, जिनमें दो जोड़ देने से मूलद होती हैं और उनमें आसन्नवर्ती दो दो के घातों में अठारह जोड़ देने से मूलद होती है। पहले को दूसरे से, दूसरे को तीसरे से, तीसरे को चौथे से गुणा करने से जो गुणनफल हो उनमें अलग २ अठारह जोड़कर मूल लेने से तेरह मिलता है।

उदाहरण— क्षेत्रे तिथिनखैस्तुल्ये दोःकोटी तत्र का श्रुतिः।
उपपत्तिश्च रूढस्य गणितस्यास्य कथ्यताम्॥ १३॥

जिस त्रिभुजक्षेत्र में भुज पन्द्रह और कोटि बीस है वहाँ कर्ण का मान क्या होगा। तथा भुज, कोटि के वर्गयोग का मूल कर्ण होता है इस प्रसिद्ध गणित की युक्ति क्या है? कहो।

एतत्करणसूत्रम्— दोःकोटयन्तरवर्गेण द्विघ्नो घातः समन्वितः।
वर्गयोगसमः स स्याद्द्वयोरव्यक्तयोर्यथा॥ १४॥

दो अव्यक्त राशियों की तरह भुज और कोटी का द्विगुणित घात से युत उनका अन्तर वर्ग, वर्गयोग के समान होता है।

उदाहरण— भुजात् त्र्यूनात् पदं व्येकं कोटिकर्णान्तरं सखे।
यत्र तत्र वद क्षेत्रे दोःकोटिश्रवणान्मम ॥ १५ ॥

जिस त्रिभुज क्षेत्र में तीन से हीन भुज का मूल ग्रहण करने से जो हो उसमें रूप घटा देने से कोटि-कर्णान्तर होता है, वहाँ भुज, कोटि, कर्ण इन तीनों का अलग २ मान क्या होगा।

अस्य सूत्रम्— वर्गयोगस्य यद्राश्योर्युतिवर्गस्य चान्तरम्।
द्विघ्नघातसमानं स्याद्द्वयोरव्यक्तयोर्यथा ॥ १६ ॥

दो अव्यक्त राशियों की तरह दो राशियों का वर्गयोग और योगवर्ग का जो अन्तर होता है, वह उनके द्विगुणित घात के समान होता है।

अन्यत् करणसूत्रम्— चतुर्गुणस्य घातस्य युतिवर्गस्य चान्तरम्।
राश्यन्तरकृतेस्तुल्यं द्वयोरव्यक्तयोर्यथा ॥ १७ ॥

उद्दिष्ट दो राशियों का योगवर्ग, चतुर्गुणितघात इन दोनों का अन्तर उनके अन्तरवर्ग के समान होता है, जिस तरह दो अव्यक्त राशियों का होता है।

उदाहरण— चत्वारिंशद्युतिर्येषां दोःकोटिश्रवसां वद।
भुजकोटिवधो येषु शतं विंशतिसंयुतम् ॥ १८ ॥

भुज, कोटि, कर्ण इन तीनों का योग चालीस हैं, और भुज, कोटि का घात एक सौ बीस है। वहां भुज, कोटि, कर्ण अलग २ क्या होगा।

उदाहरण— योगो दोःकोटिकर्णानां षट्पञ्चाशद्वधस्तथा।
षट्शती सप्तभिः क्षुण्णा ४२०० येषां तान्मे पृथग्वद ॥ १९ ॥

भुज, कोटि, कर्ण इन तीनों का योग ५६ और घात ४२०० हैं तो उनको अलग २ कहो।

अथानेकवर्णसमीकरणं बीजम्। यत्र सूत्रं सार्धवृत्तत्रयम्—

आद्यं वर्णं शोधयेदन्यपक्षादन्यान् रूपाण्यन्यतश्चाद्यभक्ते।
पक्षेऽन्यस्मिन्नाद्यवर्णोन्मितिः स्याद्वर्णस्यैकस्योन्मितीनां बहुत्वे ॥ १ ॥
समीकृतच्छेदगमे तु ताभ्यस्तदन्यवर्णोन्मितयः प्रसाध्याः।
अन्त्योन्मितौ कुट्टविधेर्गुणाप्ती ते भाज्यतद्भाजकवर्णमाने ॥ २ ॥
अन्येऽपि भाज्ये यदि सन्ति वर्णास्तन्मानमिष्टं परिकल्प्य साध्ये।
विलोमकोत्थापनतोऽन्यवर्णमानानि भिन्नं यदि मानमेवम् ॥ ३ ॥
भूयः कार्यः कुट्टकोऽत्रान्त्यवर्णं तेनोत्थाप्योत्थापयेद्व्यस्तमाद्यान् ॥

जिस उदाहरण में दो, तीन, चार आदि अव्यक्त राशियां हो वहां उनके मान यावत्तावत्, कालक, नीलक, पीतक, लोहितक, हरितक, श्वेतक, चित्रक, कपिलक, पिङ्गलक, धूम्रक, पाटलक, शबलक, श्यामलक, मेचक आदि कल्पना कर प्रश्नकर्ता के कथनानुसार दो, तीन आदि समान पक्षयुगल सिद्ध करना चाहिए। एवं सिद्ध पक्षयुगलों के एक पक्ष के आदि वर्ण को अन्यपक्ष में और अन्यपक्ष के रूप सहित वर्णों को दूसरे पक्ष में घटाना।

अब आद्य पक्ष में स्थित अव्यक्त गुणकाङ्क से दूसरे पक्ष में भाग देने से आद्यवर्ण का मान हो जायगा। एवं आद्यवर्ण का अनेक मान आवे तो उनसे समीकरण के वश अन्यवर्ण का मान होगा। इसका भी अनेक मान आवे तो फिर समीकरण द्वारा उससे अगले वर्ण का मान लाना चाहिए। इस प्रकार अन्त्य में जो मान आवे उस पर से कुट्टक के द्वारा गुण लब्धि लानी चाहिए। अर्थात् भाज्य गत वर्णांक को भाजक गत वर्णाङ्क को भाजक और रूप को क्षेप कल्पना कर कुट्टक के द्वारा गुण लब्धि लानी चाहिए, इनमें गुण, भाज्य गतवर्ण का और लब्धि भाजक गतवर्ण का मान हो जायगा। अगर अन्त्य वर्ण के मान में और अव्यक्त हो तो इष्ट कल्पना करके अपने २ मान से उन वर्णों में उत्थापन देने से जो अङ्क मिले उसको रूप में जोड़ या घटा कर क्षेप कल्पना करना चाहिए। फिर उस पर से कुट्टक रीत्या गुण लब्धि लानी चाहिए। एवं भाज्य और भाजक गत वर्ण के मान हो जायगा। अब विलोम रीति से उत्थापन वश इस भाज्य, भाजक से भिन्न वर्ण का मान लाना चाहिए।

जैसे आये हुए मान के दृढ भाज्य, भाजक को इष्ट वर्णा से गुणा करने से जो हो उसको क्षेप कल्पना करना चाहिए। फिर क्षेप सहित अपने २ मान से पूर्ववर्ण के मान में उत्थापन देकर अपने २ छेद का भाग देने से जो लब्धि आवे वह पूर्ववर्ण के मान हो जायगा इस तरह आगे के वर्ण का मान जानने से उससे पूर्ववर्ण का मान सुखपूर्वक ज्ञात होता है, जैसे पीतक के मान से नीलक का, नीलक के मान से कालक का और कालक के मान से यावत्तावत् का मान ज्ञात होता है। अतः अन्वर्थक नाम विलोम उत्थापन है।

अगर विलोम उत्थापन करने से पूर्ववर्ण का मान भिन्न आवे तो फिर कुट्टक द्वारा आये हुए गुण लब्धि को संक्षेप करके भाज्य, भाजक गतवर्ण का मान जानना चाहिए संक्षेप गुण से अन्त्य वर्ण के मान में जो वर्ण हो उसमें उत्थापन देकर फिर आद्य से विलोम उत्थापन देना चाहिए। यहां जिस वर्ण में पहले उत्थापन देने से भिन्न मान आया था वह आद्य कहलाता है। जिस वर्ण का व्यक्त या अव्यक्त जो मान आया है उसको व्यक्ताङ्क से गुण देने से उस वर्ण का निरसन (दूरी करण) होता है अतः इसका नाम उत्थापन है।

उदाहरण— { **माणिक्यामलनीलमौक्तिकमितिरिति॥ १॥** (पृ. १७४ देखें)।
{ **एको ब्रवीति मम देहि शतमिति॥ २॥**(पृ. १७५ देखें)।

उदाहरण— **अश्वाः पञ्चगुणाङ्गमङ्गलमिता येषां चतुर्णां धना-**
न्युष्ट्राश्च द्विमुनिश्रुतिक्षितिमिता अष्टद्विभूपावकाः।
तेषामश्वतरा वृषा मुनिमहीनेत्रेन्दुसंख्याः क्रमात्
सर्वे तुल्यधनाश्च ते वद सपद्यश्वादिमौल्यानि मे॥ ३॥

चार व्यापारी हैं, इनमें पहिले के पास पांच घोड़ा, दो ऊँट, आठ खच्चर और सात बैल हैं। दूसरे के पास तीन घोड़ा, सात ऊँट, दो खच्चर और एक बैल हैं। तीसरे के पास छै घोड़ा, चार ऊँट, एक खच्चर और दो बैल हैं, तथा चौथे के पास आठ घोड़ा, एक ऊँट, तीन खच्चर और एक बैल हैं, ये चारो व्यापारी धन में समान हैं तो बताओ घोड़ा आदि का क्या मूल्य है।

उदाहरण— **त्रिभिः पारावताः पञ्च पञ्चभिः सप्त सारसाः।**
सप्तभिर्नव हंसाश्च नवभिर्बर्हिणां त्रयम्॥ ४॥

द्रम्मैरवाप्यते द्रम्मशतेन शतमानय ।
एषां पारावतादीनां विनोदार्थं महीपतेः ॥ ५ ॥

किसी ने किसी से कहा कि तीन द्रम्म के पाँच कबूतर, पाँच द्रम्म के सात सारस, सात द्रम्म के नव हंस और नव द्रम्म के तीन मोर आते हैं तो राजा के विनोद के लिये सौ द्रम्म में सौ कबूतर आदि पक्षी खरीद लाओ, तो बताओ उन पक्षियों की और उनके मोल की संख्या क्या है ?

उदाहरण— षड्भक्तः पञ्चाग्रः पञ्चविभक्तो भवेच्चतुष्काग्रः ।
चतुरुद्धृतस्त्रिकाग्रो द्व्यग्रस्त्रिसमुद्धृतः कः स्यात् ॥ ६ ॥

वह कौन राशि है, जिसमें छै का भाग देने से पाँच शेष, पाँच का भाग देने से चार शेष, चार का भाग देने से तीन शेष और तीन का भाग देने से दो शेष रहता है ?

उदाहरण— स्युः पञ्चसप्तनवभिः क्षुण्णेषु हृतेषु केषु विंशत्या ।
रूपोत्तराणि शेषाण्यवाप्तयश्चापि शेषसमाः ॥ ७ ॥

वे तीन राशि कौन हैं, जिनको क्रम से पाँच, सात और नव से गुणा कर बीस का भाग देने से रूपोत्तर शेष और शेष के समान लब्धि आती है ।

उदाहरण— एकाग्रो द्विहृतः कः स्याद् द्विकाग्रस्त्रिसमुद्धृतः ।
त्रिकाग्रः पञ्चभिर्भक्तस्तद्वदेव हि लब्धयः ॥ ८ ॥

वह कौन राशि है, जिसमें दो का भाग देने से एक शेष, तीन का भाग देने से दो शेष और पाँच का भाग देने से तीन शेष रहता है । इसी तरह लब्धि में भी भाग देने से शेष रहता है ।

उदाहरण— कौ राशी वद पञ्चषट्कविहृतावेकद्विकाग्रौ ययो-
द्व्यग्रं त्र्युद्धृतमन्तरं नवहृतां पञ्चाग्रका स्याद्युतिः ।
घातः सप्तहृतः षडग्र इति तौ षट्काष्टकाभ्यां विना
विद्वन् कुट्टकवेदिकुञ्जरघटासंघट्टसिंहोऽसि चेत् ॥ ९ ॥

वे कौन दो राशि हैं, जिनमें पाँच और छै का भाग देने से एक तथा दो शेष बचता है, उनके अन्तर में तीन का भाग देने से दो शेष रहता है, उनके योग में नव का भाग देने से पाँच शेष रहता है, और उन दोनों राशियों के घात में सात का भाग देने से छै शेष रहता है, कुट्टक जानने वाले हस्तियों के समूह को विदारण करने में सिंह के समान हो तो वे दोनों राशियां छै और आठ से भिन्न बताओ ।

उदाहरण— नवभिः सप्तभिः क्षुण्णः को राशिस्त्रिशता हृतः ।
यदग्रैक्यं फलैक्याढ्यं भवेत् षड्विंशतेर्मितम् ॥ १० ॥

वह कौन राशि है जिसमें अलग २ नव और सात से गुणा कर दोनों गुणनफलों में तीस का भाग देने से शेष और लब्धि का योगफल छब्बीस के बराबर आता है ।

उदाहरण— कस्त्रिसप्तनवक्षुण्णो राशिस्त्रिशद्विभाजितः ।
यदग्रैक्यमपि त्रिंशद्धृतमेकादशाग्रकम् ॥ ११ ॥

वह कौन राशि है, जिसको अलग २ तीन, सात और नव से गुणा कर गुणनफल में तीस का भाग देने से जो शेष रहता है, उसमें तीस का भाग देने से ग्यारह शेष रहता है ।

उदाहरण— कस्त्रयोविंशतिक्षुण्णः षष्टयाऽशीत्या हृतः पृथक्।
यदग्रैक्यं शतं दृष्टं कुट्टकज्ञ वदाशु तम् ॥ १२ ॥

वह कौन राशि है जिसको तेईस से गुणाकर गुणनफल में अलग अलग साठ और अस्सी का भाग देने से शेष जो बचे उनका योग सौ के बराबर होता है।

अत्र सूत्रं वृत्तम्— यत्रैकाधिकवर्णस्य भाज्यस्थस्येप्सिता मितिः।
भागलब्धस्य नो कल्प्या क्रिया व्यभिचरेत् तथा॥

यहां भाज्य में जो एकाधिक वर्ण है, उनमें एक का यथेष्ट व्यक्तमान कल्पना नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस तरह कल्पना करने से क्रिया व्यभिचरित होती है।

उदाहरण— कः पञ्चगुणितो राशिस्त्रयोदशविभाजितः।
यल्लब्धं राशिनायुक्तं त्रिंशज्जातं वदाशु तम् ॥ १३ ॥

वह कौन राशि है जिसको पांच से गुणा कर तेरह का भाग देने से जो लब्धि हो, उसमें राशि को जोड़ने से तीस होता हैं।

उदाहरण— षडष्टशतकाः क्रीत्वा समार्घेण फलानि ये।
विक्रीय च पुनः शेषमेकैकं पञ्चभिः पणैः।
जाताः समपणास्तेषां कः क्रयो विक्रयश्च कः॥ १४ ॥

अ, क, ग, ये तीन व्यापारी हैं, जिनके पास में क्रम से ६, ८ और १०० पण धन है। उन्होंने कुछ फल तुल्य भाव से खरीद कर तुल्य ही भाव से बेंच दिये तथा शेष फल को पाँच २ पण में बेच दिये तो सबके पास में तुल्य पण हो जाते हैं, बताओ क्रय, विक्रय क्या है।

अथानेकवर्णमध्यमाहरणभेदाः।

तत्र सूत्रं सार्धवृत्तत्रयम्—

वर्गाद्यं चेत् तुल्यशुद्धौ कृतायां पक्षस्यैकस्योक्तवद्वर्गमूलम्।
वर्गप्रकृत्याऽपरपक्षमूलं तयोः समीकारविधिः पुनश्च ॥ १ ॥
वर्गप्रकृत्या विषयो न चेत् स्यात् तदाऽन्यवर्णस्य कृतेः समं तम्।
कृत्वा परं पक्षमथान्यमानं कृतिप्रकृत्याऽऽद्यमितिस्तथा च ॥ २ ॥
वर्गप्रकृत्या विषयो यथा स्यात् तथा सुधीभिर्बहुधा विचिन्त्यम्।
बीजं मतिर्विविधवर्णसहायनी हि मन्दावबोधविधये विबुधैर्निजाऽऽद्यैः।
विस्तारिता गणकतामरसांशुमद्भिर्या सैव बीजगणिताह्वयतामुपेता ॥ ३ ॥

दोनों पक्षों के समशोधन करने से जहाँ अव्यक्त वर्ग आदि शेष रहे वहाँ प्रथमपक्ष का मूल पूर्वोक्त "पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किञ्चित्" इत्यादि प्रकार से और अन्यपक्ष का मूल वर्गप्रकृति से लेना चाहिए! इस तरह वर्गप्रकृति लक्षण युक्त होने पर ही अन्य पक्ष का मूल आ सकता है अन्यथा अन्य वर्ग के साथ उसका सणीकरण करके वर्गप्रकृति लक्षणात्मक बना कर मूल ग्रहण करना चाहिए। यहाँ पर कनिष्ठ

प्रकृतिवर्ण का मान और ज्येष्ठ उस पक्ष का मूल होगा। अब दोनों पक्षों के मूलों का समीकरण करके अव्यक्त वर्ण का मान सिद्ध करना चाहिए। अगर पूर्वोक्त युक्ति करने पर भी अन्यपक्ष में वर्गप्रकृति लक्षण न आवे तो जिस तरह वर्गप्रकृति का विषय हो सके अपनी बुद्धि से करना चाहिए।

सूत्रं वृत्तद्वयम्—

एकस्य पक्षस्य पदे गृहीते द्वितीयपक्षे यदि रूपयुक्तः।
अव्यक्तवर्गोऽत्र कृतिप्रकृत्या साध्ये तथा ज्येष्ठकनिष्ठमूले।। ४।।
ज्येष्ठं तयोः प्रथमपक्षपदेन तुल्यं
कृत्वोक्तवत् प्रथमवर्णमितिस्तु साध्या।
ह्रस्वं भवेत् प्रकृतिवर्णमितिः सुधीभि-
रेवं कृतिप्रकृतिरत्र नियोजनीया।। ५।।

दोनों पक्षों का समशोधन करने के बाद जहाँ अव्यक्तवर्ग आदि शेष रहे, वहाँ "पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किञ्चित्" इस पूर्व कथित सूत्र के अनुसार एक पक्ष का मूल ग्रहण करने से यदि द्वितीयपक्ष में रूप सहित अव्यक्तवर्ग हो तो वर्गप्रकृति से मूल लेना चाहिये।

उदाहरण— को राशिर्द्विगुणो राशिवर्गैः षड्भिः समन्वितः।
मूलदो जायते बीजगणितज्ञ वदाशु तम्।। १।।

वह कौन राशि है, जिसको द्विगुणित करके उसी में षड्गुणित राशि वर्ग जोड़ देते हैं तो वर्गात्मक होती है।

उदाहरण— राशियोगकृतिर्मिश्रा राश्योर्योगघनेन चेत्।
द्विघ्नस्य घनयोगस्य सा तुल्या गणकोच्यताम्।। २।।

वे दो राशि कौन हैं जिनके योग घन से जोड़ा हुआ योगवर्ग, द्विगुणित घनयोग के तुल्य होता है।

सूत्रम्— द्वितीयपक्षे सति सम्भवे तु कृत्याऽपवर्त्यात्र पदे प्रसाध्ये।
ज्येष्ठं कनिष्ठेन तदा निहन्याच्चेद्वर्गवर्गेण कृतोऽपवर्त्तः।। ६।।
कनिष्ठवर्गेण तदा निहन्याज्ज्येष्ठं ततः पूर्ववदेव शेषम्।

अगर द्वितीय पक्ष में अव्यक्त वर्ग के साथ अव्यक्तवर्गवर्ग हो या अव्यक्तवर्गवर्गवर्ग हो तो अपवर्तन देकर ज्येष्ठ और कनिष्ठ साधना करना चाहिए।

उदाहरण— यस्य वर्गकृतिः पञ्चगुणा वर्गशतोनिता।
मूलदा जायते राशिं गणितज्ञ वदाशु तम्।। १।।

वह कौन राशि है, जिसके पञ्चगुणित वर्ग वर्ग में सौ गुणित राशिवर्ग घटा देने से वर्ग होता है।

उदाहरण— कयोः स्यादन्तरे वर्गो वर्गयोगो ययोर्घनः।
तौ राशी कथयाभिन्नौ बहुधा बीजवित्तम।। २।।

कौन दो वे राशि हैं, जिनका अन्तर वर्ग और वर्गयोग घन होता है।

अन्यत् सूत्रम्— साव्यक्तरूपो यदि वर्णवर्गस्तदाऽन्यवर्णस्य कृतेः समं तम् ॥ ७ ॥
कृत्वा पदं तस्य तदन्यपक्षे वर्गप्रकृत्योक्तवदेव मूले ।
कनिष्ठमाद्येन पदेन तुल्यं ज्येष्ठं द्वितीयेन समं विदध्यात् ॥ ८ ॥

यदि अव्यक्त और रूप से सहित अव्यक्त वर्ग हो तो उसको अन्यवर्ण के वर्ग के तुल्य करके प्रथम पक्ष का मूल लेना, तथा द्वितीय पक्ष का वर्गप्रकृति से कनिष्ठ, ज्येष्ठ लाकर प्रथमपक्ष के मूल को कनिष्ठ के साथ और द्वितीय पक्ष के मूल को ज्येष्ठ के साथ समीकरण करना चाहिए ।

उदाहरण— त्रिकाद्युत्तरश्रेढ्यां गच्छे क्वापि च यत् फलम् ।
तदेव त्रिगुणं कस्मिन्नन्यगच्छे भवेद्वद ॥ १ ॥

किसी श्रेढ़ी में तीन आदि दो चय हैं, वहाँ किसी अनिश्चित गच्छ में जो फल आता है उसको त्रिगुणित तुल्य फल पूर्व तुल्य आदि और चय होने पर कितने गच्छ में होगा ।

अन्यत् सूत्रम्— सरूपके वर्णकृती तु यत्र तत्रेच्छयैकां प्रकृतिं प्रकल्प्य ।
शेषं ततः क्षेपकमुक्तवच्च मूले विदध्यादसकृत् समत्वे ॥ ९ ॥
सभाविते वर्णकृती तु यत्र तन्मूलमादाय च शेषकस्य ।
इष्टोद्धृतस्येष्टविवर्जितस्य दलेन तुल्यं हि तदेव कार्यम् ॥ १० ॥

प्रथम पक्ष का मूल मिलता हो किन्तु द्वितीय पक्ष में रूप के साथ दो वर्णवर्ग हो वहाँ अपनी इच्छा से किसी एक वर्ण को प्रकृति और शेष को क्षेप कल्पना करके उक्त प्रकार से कनिष्ठ और ज्येष्ठ का साधन करना चाहिये। इस तरह अव्यक्त कनिष्ठ, ज्येष्ठ आने से राशि मान भी अव्यक्त ही होगा। अगर आलाप के अनुसार फिर समीकरण करना हो तो राशि का अव्यक्त मान ठीक है। फिर समीकरण न करना हो तो दो, तीन चार आदि वर्णों के समान अन्य वर्ण का भी व्यक्त मान कल्पना कर लेना चाहियें। इस तरह करने पर अव्यक्त वर्ग सरूप आवेगा, तब उक्त प्रकार से राशि का व्यक्तमान सिद्ध करना चाहिए ।

उदाहरण— तौ राशी वद यत्कृत्योः सप्ताष्टगुणयोर्युतिः ।
मूलदा स्याद्वियोगस्तु मूलदो रूपसंयुतः ॥ १ ॥

वे कौन दो राशियाँ हैं, जिनके वर्ग को क्रम से सात, आठ से गुणा कर योग करने से और अन्त में एक जोड़ देने से मूलद होती हैं ।

उदाहरण— घनवर्गयुतिर्वर्गो ययो राश्योः प्रजायते ।
समासोऽपि ययोर्वर्गस्तौ राशी शीघ्रमानय ॥ २ ॥

वे दो कौन राशियाँ हैं, जिनके क्रम से घन और वर्ग का योग तथा केवल राशियों का योग करने से वर्गात्मक होती हैं ।

उदाहरण— ययोर्वर्गयुतिर्घातयुता मूलप्रदा भवेत् ।
तन्मूलगुणितो योगः सरूपश्चाशु तौ वद ॥ ३ ॥

कौन वे दो राशियाँ हैं, जिनके वर्गयोग में राशिघात युत करने से मूलप्रद होती हैं। और राशियोग को पूर्वमूल से गुणकर एक युक्त करने से मूलप्रद होती हैं ।

एवं सहस्रधा गूढा मूढानां कल्पना यतः ।
कृपया कल्पनोपायस्तेषामेव च कथ्यते ॥

इस तरह अनेक प्रकार से राशि की कल्पना हो सकती है। किन्तु मन्दबुद्धियों के लिये यह कल्पना कठिन है, इसलिये क्रिया के द्वारा राशि कल्पना करने की युक्ति को कहते हैं।

अथ सूत्रं वृत्तद्वयम् —

सरूपमव्यक्तमरूपकं वा वियोगमूलं प्रथमं प्रकल्प्य ।
योगान्तरक्षेपकभाजिताद्यद्वर्गान्तरक्षेपकतः पदं स्यात् ॥ ११ ॥
तेनाधिकं तत्तु वियोगमूलं स्याद्योगमूलं तु तयोस्तु वर्गौ ।
स्वक्षेपकोनौ हि वियोगयोगौ स्यातां ततः संक्रमणेन राशी ॥ १२ ॥

पहले रूप युक्त या रहित अव्यक्त को वियोग मूल कल्पना करनी चाहिए तथा योगान्तर क्षेप से वर्गान्तर क्षेप में भाग देकर जो मूल मिले उसको वियोग मूल में जोड़ देने से योग मूल होगा। अब उन योग वियोग मूलों के वर्ग में क्षेप घटा देने से शेष क्रम से योग, वियोग होंगे। इस तरह योग, वियोग के ज्ञान से संक्रमण गणित के द्वारा राशि जाननी चाहिए।

उदाहरण— राश्योर्योगवियोगकौ त्रिसहितौ वर्गौ भवेतां ययो-
र्वर्गैक्यं चतुरूनितं रवियुतं वर्गान्तरं स्यात् कृतिः ।
साल्पं घातदलं घनः पदयुतिस्तेषां द्वियुक्ता कृति-
स्तौ राशी वद कोमलामलमते षट् सप्त हित्वाऽपरौ ॥ ६ ॥

वे दो कौन राशि हैं जिनके योग और अन्तर में तीन जोड़ देने से वर्ग होता है। वर्गों के योग में चार घटा देने से वर्ग होता है। वर्गों के अन्तर में बारह जोड़ देने से वर्ग होता है। घात के आधे में लघु-राशि जोड़ देने से घन होता है। इस तरह आये हुए पांचों मूलों के योग में दो जोड़ देने से वर्ग होता है।

उदाहरण— राश्योययोः कृतियुतिवियुतो चैकेन संयुते वर्गौ ।
रहिते वा तौ राशी गणयित्वा कथय यदि वेत्सि ॥ ४ ॥

वे दो कौन राशि हैं, जिनके वर्गयोग और वर्गान्तर में एक युत अथवा ऊन करने से वर्ग होता है।

यत्राव्यक्तं सरूपं हि तत्र तन्मानमानयेत् ।
सरूपस्यान्यवर्णस्य कृत्वा कृत्यादिना समम् ॥ १३ ॥
राशिं तेन समुत्थाप्य कुर्याद्भूयोऽपरां क्रियाम् ।
सरूपेणान्यवर्णेन कृत्वा पूर्वपदं समम् ॥ १४ ॥

जहां पर एक पक्ष का मूल लेने के बाद दूसरे पक्ष में रूप सहित या रूप रहित अव्यक्त हो वहाँ पर उसका रूप सहित अन्य वर्ण के साथ समीकरण करके अव्यक्त राशि का मान लाना चाहिए।

उदाहरण— यस्त्रिपञ्चगुणो राशिः पृथक् सैकः कृतिर्भवेत् ।
वदेति बीजमध्येऽसि मध्यमाहरणे पटुः ॥ १ ॥

वह कौन राशि है, जिसको दो जगह रख कर क्रम से पाँच और तीन से गुणा कर दोनों जगह में रूप युत करने से वर्ग होता है।

उदाहरण— को राशिस्त्रिभिरभ्यस्तः सरूपो जायते घनः।
घनमूलं कृतीभूतं त्र्यभ्यस्तं कृतिरेकयुक्॥ २॥

वह कौन राशि है, जिसको तीन से गुणकर रूप जोड़ने से घन होता है। उस घनमूल के वर्ग को तीन से गुणकर एक जोड़ने से वर्ग होता है।

उदाहरण— वर्गान्तरं कयोः राश्यो पृथक् द्वित्रिगुणं त्रियुक्।
वर्गौ स्यातां वद क्षिप्रं षट्पञ्चकयोरिव॥ ३॥
क्वचिदादेः क्वचिन्मध्यात् क्वचिदन्त्यात् क्रिया बुधैः।
आरभ्यते यथा लघ्वी निर्वहेच्च यथा तथा॥

पाँच, छै के तुल्य वे दो कौन राशि हैं जिनके वर्गान्तर को दो और तीन से अलग २ गुणकर तीन जोड़ने से वर्ग होते हैं। कहीं प्रश्न के आदि से, कहीं प्रश्न के मध्य से और कहीं अन्त से क्रिया करनी चाहिए, जिस तरह क्रिया थोड़ी हो और आगे चल सके।

सूत्रम्— वर्गादेर्यो हरस्तेन गुणितं यदि जायते।
अव्यक्तं तत्र तन्मानमभिन्नं स्याद्यथा तथा॥ १५॥
कल्प्योऽन्यवर्णवर्गादिस्तुल्यः शेषं यथोक्तवत्।

जहाँ एक पक्ष का मूल ग्रहण करने के बाद अन्यपक्ष में अव्यक्त वर्ग आदि के हर से गुणा हुआ अव्यक्त हो वहाँ सरूप या अरूप अन्यवर्ण वर्गादि की इस तरह कल्पना करनी चाहिए, जिसके साथ उसका समीकरण करने से उस अव्यक्त राशि का मान अभिन्नात्मक मिले।

उदाहरण— को वर्गश्चतुरूनः सन् सप्तभक्तो विशुध्यति।
त्रिंशदूनोऽथवा कः स्याद्यदि वेत्सि वद द्रुतम्॥ १॥

वह कौन सा वर्ग है, जिसमें चार या तीस घटाकर सात का भाग देने से निःशेष होता है।

अथ वाऽन्यवर्णकल्पनायां मन्दावबोधार्थ पूर्वैरुपायः पठितः। तत्र सूत्राणि—

हरभक्ता यस्य कृतिः शुध्यति सोऽपि द्विरूपपदगुणितः।
तेनाहतोऽन्यवर्णो रूपपदेनान्वितः कल्प्यः॥ १६॥
न यदि पदं रूपाणां क्षिपेद्धरं तेषु हारतष्टेषु।
तावद्यावद्वर्गो भवति न चेदेवमपि खिलं तर्हि॥ १७॥
हित्वा क्षिप्त्वा च पदं यत्राद्यस्येह भवति तत्रापि।
आलापित एव हरो रूपाणि तु शोधनादिसिद्धानि॥ १८॥

जिस राशि का वर्ग हर का भाग देने से निःशेष हो उसको दो और रूप के मूल से गुणा कर हर का भाग देने से निःशेष हो तो उससे अन्य वर्ण को गुण कर रूप का मूल जोड़ कर जो हो उसको अन्य पक्ष के मूल स्थान में कल्पना करे। अगर रूप का मूल न मिले तो हर से भक्त रूपों में हर को तब तक

जोड़ते जाय जब तक वर्गात्मक न हो जाय। इस तरह सिद्ध वर्ग का जो मूल मिले उसको रूप पद कल्पना करे। यदि इस तरह से भी रूप का पद न मिलता हो तो उस उदाहरण को दुष्ट समझना चाहिये।

उदाहरण— षड्भिरूनां घनः कस्य पञ्चभक्तो विशुध्यति।
तं वदाशु तवालं चेदभ्यासो घनकुट्टके॥ २॥

वह कौन राशि है, जिसके घन में छै घटा कर पाँच का भाग देने से निःशेष होता है।

उदाहरण— यद्वर्गः पञ्चभिः क्षुण्णस्त्रियुक्तः षोडशोद्धृतः।
शुद्धिमेति तमाचक्ष्व दक्षोऽसि गणिते यदि॥ ३॥

वह कौन राशि है, जिसके वर्ग को पाँच से गुणा कर, गुणनफल में तीन जोड़ कर सोलह का भाग देने से निशेष होता है।

अथ भावितमुच्यते।

तत्र सूत्रम्— मुक्त्वेष्टवर्णं सुधिया परेषां कल्प्यानि मानानि यथेप्सितानि।
तथा भवेद्भावितभङ्ग एवं स्यादाद्यबीजक्रिययेष्टसिद्धिः॥ १॥

अब भावित नामक अध्याय का वर्णन करते हैं।

जिस उदाहरण में दो, तीन आदि वर्णों के घात से भावित उत्पन्न हो वहाँ पर एक इष्ट वर्ण को छोड़कर अन्य वर्णों के ऐसे इष्ट व्यक्त मान कल्पना करे, जिसनें भावित का नाश हो, तथा दोनों पक्षों के वर्णों में इष्ट व्यक्त मान से उत्थापन देकर एकवर्णसमीकरण के प्रकार से अव्यक्त का व्यक्त मान जानना चाहिये।

उदाहरण— चतुस्त्रिगुणयो राश्योः संयुतिर्द्वियुता तयोः।
राशिघातेन तुल्या स्यात् तौ राशी वेत्सि चेद्वद॥ १॥

वे दो कौन राशि हैं, जिनको क्रम से चार और तीन से गुणकर योग करने से जो हो उसमें दो जोड़ने से उनके घात के बराबर होता है।

उदाहरण— चत्वारो राशयः के ते यद्योगो नखसंगुणः।
सर्वराशिहतेस्तुल्यो भावितज्ञ निगद्यताम्॥ २॥

वे चार कौन राशि हैं, जिनके योग को बीस से गुणकर जो हो वह उनके घात के समान होता है।

उदाहरण— यौ राशी किल या च राशिनिहतिर्यौ राशिवर्गौ तथा
तेषामैक्यपदं सराशियुगलं जाता त्रयोविंशतिः।
पञ्चाशत् त्रियुताऽथ वा वद कियत् तद्राशियुग्मं पृथक्
कृत्वाऽभिन्नमवेहि वेत्सि गणकः कस्त्वत्समोऽस्ति क्षितौ॥ ४॥

वे दो कौन राशि हैं, जो दोनों राशि, दोनों का घात, दोनों का वर्ग, इनके योग के मूल में उक्त दोनों राशि जोड़ देने से २३ होते हैं, वा ५३ होते हैं।

अथ तौ यथाल्पायासेन भवतस्तथोच्यते तत्र सूत्रम्—

भावितं पक्षतोऽभीष्टात् त्यक्त्वा वर्णौ सरूपकौ।
अन्यतो भाविताङ्केन ततः पक्षौ विभज्य च॥ २॥
वर्णाङ्काहतिरूपैक्यं भक्त्वेष्टेनेष्टतत्फले।
एताभ्यां संयुतावूनो कर्त्तव्यौ स्वेच्छया च तौ॥ ३॥
वर्णाङ्कौ वर्णयोर्मानि ज्ञातव्ये ते विपर्ययात्।

यहाँ अब थोड़े प्रयास से राशि के ज्ञान के लिये प्रकार कहते हैं।

प्रश्न के अनुसार सिद्ध तुल्य दो पक्षों में से अभीष्ट पक्ष में भावित को घटा देना और अन्य पक्ष में सरूप वर्ण को घटाकर दोनों पक्षों में भाविताङ्क का भाग देना। तथा वर्णाङ्कों के घात, रूप इन दोनों योग में इष्टाङ्क का भाग देना। इष्टाङ्क, इष्ट भक्त फल इन दोनों को दो स्थान में रखकर उनमें क्रम से वर्णांकों को युत, ऊन कर विलोम से वर्णों का मान जानना चाहिये। जैसे जहाँ वर्णांक कालक जोड़ा गया हो वहाँ यावत्तावत् का मान और जहाँ यावत्तावत् जोड़ा गया हो वहाँ कालक मान होगा।

उदाहरण— द्विगुणेनकयोः राश्योर्घातेन सदृशं भवेत्।
दशेन्द्राहतराश्यैकं द्व्यूनषष्टिविवर्जितम्॥ १॥

वे दो कौन राशि हैं, जिनको दस और चौदह से गुणा कर जो हो उसमें ५८ घटाने से द्विगुणित राशिघात के समान होता है।

उदाहरण— त्रिपञ्चगुणराशिभ्यां युतो राश्योर्वधः कयोः।
द्विषष्टिप्रमितो जातो राशि त्वं वेत्सि चेद्वद॥ २॥

वे दो कौन राशि हैं, जिनके घात में तीन और पाँच से गुणित राशि जोड़ने से बासठ के बराबर होता है।

आसीन्महेश्वर इति प्रथितः पृथिव्यामाचार्यवर्यपदवीं विदुषां प्रपन्नः।
लब्ध्वाऽवबोधकलिकां तत एव चक्रे तज्जेन बीजगणितं लघुभास्करेण॥

ब्राह्माह्वयश्रीधरपद्मनाभबीजानि यस्मादतिविस्तृतानि।
आदाय तत्सारमकारि नूनं सद्युक्तियुक्तं लघु शिष्यतुष्टचै॥

अत्रानुप्सहस्रं हि ससूत्रोद्देशके मितिः।
क्वचित् सूत्रार्थविषयं व्याप्ति दर्शयितुं क्वचित्॥

क्वचिच्च कल्पनाभेदं क्वचिद्युक्तिमुदाहृतम्।
न ह्युदाहरणान्तोऽस्ति स्तोकमुक्तमिदं यतः॥

दुस्तरः स्तोकबुद्धीनां शास्त्रविस्तारवारिधिः।
अथवा शास्त्रविस्तृत्या किं कार्यं सुधियामपि॥

उपदेशलवं शास्त्रं कुरुते धीमतो यतः।
तत् तु प्राप्यैव विस्तारं स्वयमेवोपगच्छति॥

यथोक्तं यन्त्राध्याये—

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥

उल्लसदमलमतीनां त्रैराशिकमात्रमेव पाटी बुद्धिरेव बीजम् ।

तथा गोलाध्याये मयोक्तम् ।

अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः ।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते ॥

गणकभणितिरम्यं बाललीलावगम्यं सकलगणितसारं सोपपत्तिप्रकारम् ।
इति बहुगुणयुक्तं सर्वदोषैर्विमुक्तं पठ पठ मतिवृद्धयै लघ्विदं प्रौढिसिद्धयै ॥

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणौ बीजगणिताध्यायः समाप्तः ॥